विविध चिकित्सा-पद्धतियाँ

[मानवशरीर परमात्म प्रभुकी एक सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसे स्वस्थ एवं नीरोग रखना प्रत्येक मनुष्यका प्रथम कर्तव्य एवं धर्म है। वर्तमान समयमें जीवनकी जटिलताएँ इतनी बढ़ती जा रही हैं कि मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे आक्रान्त हो रहा है। जहाँ जनजीवनमें सामान्यत: नये-नये रोग विकसित हो रहे हैं, वहीं चिकित्सा-पद्धतियोंका भी विस्तार हो रहा है। एक रोगका उपचार दूसरे अन्य रोगोंको जन्म दे देता है और ओषधियोंकी संख्या भी बढ़ रही है।

*प्राचीन कालसे भारतमें विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, रोगोंके विस्तार होनेके कारण कुछ नयी पद्धतियाँ भी सामने आ रही हैं तथा सभी चिकित्साशास्त्रोंके पृथक्-पृथक् गुण और दोष भी हैं। कुछ पद्धतियाँ ऐसी हैं, जिनसे रोग तो शीघ्र ठीक हो जाते हैं, परंतु उनमें स्थायित्व नहीं रहता। कुछ ऐसी भी पद्धति है, जिसके उपचारसे निर्दिष्ट रोग तो ठीक हो जाता है, पर दूसरा रोग पनप जाता है, पर इसके साथ ही भारतकी प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियोंमें ऐसे भी उपचार हैं, जो रोगके गुण-दोषोंको साम्यावस्थामें लाकर स्थायी लाभ एवं आरोग्य प्रदान करते हैं। हम यहाँ जन-सामान्यकी जानकारीके लिये चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियोंको प्रस्तुत कर रहे हैं।—**सं०**]*

स्वर-विज्ञान और बिना औषध रोगनाशके उपाय

(परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत्स्वामी निगमानन्दजी सरस्वती)

विश्वपिता विधाताने मनुष्य-जन्मके समयमें ही देहके साथ एक ऐसा आश्चर्यजनक कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय रच दिया है, जिसे जान लेनेपर सांसारिक, वैषयिक किसी भी कार्यमें असफलताका दु:ख नहीं हो सकता। हम इस अपूर्व कौशलको नहीं जानते, इसी कारण हमारा कार्य असफल हो जाता है, आशा भङ्ग हो जाती है, हमें मनस्ताप और रोग भोगना पड़ता है। यह विषय जिस शास्त्रमें है, उसे स्वरोदयशास्त्र कहते हैं। यह शास्त्र जितना दुर्लभ है, उतना ही स्वरके ज्ञाता गुरुका भी अभाव है। यह शास्त्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। मुझे पद-पदपर इसका प्रत्यक्ष फल देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा है। यद्यपि समग्र स्वरोदयशास्त्र ठीक-ठीक लिपिबद्ध करना बिलकुल असम्भव है तथापि मात्र साधकोंके कामकी कुछ बातें यहाँ संक्षेपमें दी जा रही हैं—

स्वरोदयशास्त्र सीखनेके लिये श्वास-प्रश्वासकी गतिके सम्बन्धमें सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस शास्त्रका वचन है—'**कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः।**' यानी 'देहरूपी नगरमें वायु राजाके समान है।' प्राणवायु 'नि:श्वास' और 'प्रश्वास'—इन दो नामोंसे पुकारा जाता है। वायु ग्रहण करनेका नाम 'नि:श्वास' और वायुके परित्याग करनेका नाम 'प्रश्वास' है। जीवके जन्मसे लेकर मृत्युके अन्तिम क्षणतक निरन्तर श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती रहती है। यह नि:श्वास दोनों नासापुटों—नासिकाके दोनों छिद्रोंसे एक ही समय एक साथ समानरूपसे नहीं चला करता, कभी बायें और कभी दायें पुटसे चलता है। कभी-कभी एकाध घड़ीतक एक ही समय दोनों नासापुटोंद्वारा समानभावसे श्वास प्रवाहित होता है।

बायें नासापुटके श्वासको इडामें चलना, दाहिनी नासिकाके श्वासको पिंगलामें चलना और दोनों नासापुटोंसे एक समान चलनेपर उसे सुषुम्णामें चलना कहते हैं। एक नासापुटको दबाकर दूसरेके द्वारा श्वासको बाहर निकालनेपर यह साफ मालूम हो जाता है कि एक नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास-प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासापुट मानो बंद है अर्थात् उससे दूसरी नासिकाकी तरह सरलतापूर्वक श्वास बाहर नहीं निकलता। जिस नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास बाहर निकलता हो, उस समय उसी नासिकाका श्वास कहना चाहिये। किस नासिकासे श्वास बाहर निकल रहा है, इसे पाठक उपर्युक्त प्रकारसे समझ सकते हैं। क्रमश: अभ्यास होनेपर बहुत आसानीसे मालूम होने लगता है कि किस नासिकासे नि:श्वास प्रवाहित होता है। प्रतिदिन प्रात:काल सूर्योदयके समयसे ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। इस

प्रकार रात-दिनमें बारह बार बायीं और बारह बार दायीं नासिकासे क्रमानुसार श्वास चलता है। किस दिन किस नासिकासे पहले श्वास-क्रिया होती है, इसका एक निर्दिष्ट नियम है। यथा—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये॥

(पवनविजयस्वरोदय)

शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे चन्द्र अर्थात् बायीं नासिकासे तथा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे सूर्यनाडी अर्थात् दायीं नासिकासे पहले श्वास प्रवाहित होता है अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा—इन नौ तिथियोंमें प्रात:काल सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छ: तिथियोंमें प्रात:काल पहले दायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और वह ढाई घड़ीतक रहता है। उसके बाद दूसरी नासिकासे श्वास चलना प्रारम्भ होता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावास्या—इन नौ तिथियोंमें सूर्योदयके समय पहले दायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छ: तिथियोंमें सूर्योदयकालमें पहले बायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और ढाई घड़ीके बाद दाहिनी नासिकासे चलने लगता है। इस प्रकार नियमपूर्वक ढाई-ढाई घड़ीतक एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। यही मनुष्य-जीवनमें श्वासकी गतिका स्वाभाविक नियम है।

वहेत् तावद् घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत्।

(स्वरोदयशास्त्र)

प्रतिदिन रात-दिनकी साठ घड़ियोंमें ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे निर्दिष्ट क्रमसे श्वास चलनेके समय क्रमश: पञ्चतत्त्वोंका उदय होता है। इस श्वास-प्रश्वासकी गतिको समझकर कार्य करनेपर शरीर स्वस्थ रहता है और मनुष्य दीर्घजीवी होता है, फलस्वरूप सांसारिक, वैषयिक—सभी कार्योंमें सफलता मिलनेके कारण सुखपूर्वक संसार-यात्रा पूरी होती है।

बायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय इडा नाडीसे अर्थात् बायीं नासिकासे श्वास चलता हो, उस समय स्थिर कर्मोंको करना चाहिये। जैसे—अलंकार-धारण, दूरकी यात्रा, आश्रममें प्रवेश, राजमन्दिर तथा महल बनाना एवं द्रव्यादिका ग्रहण करना। तालाब, कुआँ आदि जलाशय तथा देवस्तम्भ आदिकी प्रतिष्ठा करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नवीन वस्त्रधारण, शान्तिकर्म, पौष्टिक कर्म, दिव्यौषधसेवन, रसायनकार्य, प्रभुदर्शन, मित्रता-स्थापन आदि शुभ कार्य करने चाहिये। बायीं नासिकासे श्वास चलनेके समय शुभ कार्योंमें सिद्धि मिलती है। परंतु वायु, अग्नि और आकाशतत्त्वके उदयके समय उक्त कार्य नहीं करने चाहिये।

दायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय पिंगला नाडी अर्थात् दाहिनी नासिकासे श्वास चलता हो उस समय कठिन कर्म करने चाहिये। जैसे—कठिन क्रूर-विद्याका अध्ययन और अध्यापन, स्त्रीसंसर्ग, नौकादि आरोहण, तान्त्रिकमतानुसार वीरमन्त्रादिसम्मत उपासना, शत्रु-दण्ड, शस्त्राभ्यास, गमन, पशुविक्रय, ईंट, पत्थर, काठ तथा रत्न आदिका घिसना और छीलना, संगीत-अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र बनाना, किले और पहाड़पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदिकी सवारी सीखना, व्यायाम, षट्कर्मसाधन, यक्षिणी, बेताल तथा भूतादिसाधन, औषधसेवन, लिपिलेखन, दान, क्रय-विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन तथा स्नानाहार आदि।

सुषुम्णा नाडीका श्वासफल

दोनों नासापुटोंसे श्वास चलनेके समय किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य नहीं करना चाहिये। उस समय कोई भी काम करनेसे वह निष्फल होगा तथा योगाभ्यास और ध्यान-धारणादिके द्वारा मात्र भगवत्स्मरण करना उचित है। सुषुम्णा नाडीसे श्वास चलनेके समय किसीको भी शाप या वर-प्रदान सफल होता है।

श्वास-प्रश्वासकी गति जानकर, तत्त्वज्ञान और तिथि-नक्षत्रके अनुसार, ठीक-ठीक नियमपूर्वक सब कर्मोंको

करनेपर आशाभङ्गजनित मनस्ताप नहीं भोगना पड़ता।

रोगोत्पत्तिका पूर्ण ज्ञान और उसका प्रतिकार

प्रतिपदा आदि तिथियोंको यदि निश्चित नियमके विरुद्ध श्वास चले तो निःसंदेह कुछ अमङ्गल होगा। जैसे, शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको प्रातः नींद टूटनेपर सूर्योदयके समय पहले यदि दायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे पूर्णिमातकके बीच गर्मीके कारण और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिको सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे अमावास्यातकके भीतर कफ या सर्दीके कारण कोई पीड़ा होगी, इसमें संदेह नहीं।

दो पखवाड़ोंतक इसी प्रकार विपरीत ढंगसे सूर्योदयकालमें निःश्वास चलता रहे तो किसी आत्मीय स्वजनको भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी या और किसी प्रकारकी विपत्ति आयेगी। तीन पखवाड़ोंसे ऊपर लगातार गड़बड़ होनेपर निश्चित रूपसे अपनी मृत्यु हो जायगी।

शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल यदि विपरीत ढंगसे निःश्वास-गतिका पता लग जाय तो उस नासिकाको कई दिनोंतक बंद रखनेसे रोगोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं रहती। उस नासिकाको इस तरह बंद रखना चाहिये जिसमें उससे निःश्वास न चले। इस प्रकार कुछ दिनोंतक दिन-रात निरन्तर (स्नान और भोजनका समय छोड़कर) नाक बंद रखनेसे उक्त तिथियोंके भीतर बिलकुल ही कोई रोग नहीं होगा।

यदि असावधानीवश निःश्वासमें गड़बड़ी होनेसे कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो जबतक रोग दूर न हो जाय, तबतक ऐसा करना चाहिये कि जिससे शुक्लपक्षमें दायीं और कृष्णपक्षमें बायीं नासिकासे श्वास न चले। ऐसा करनेसे रोग शीघ्र दूर हो जायगा। यदि कोई भारी रोग होनेकी सम्भावना होगी तो वह बहुत सामान्य रूपमें होगा और फिर थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जायगा। ऐसा करनेसे न तो रोगजनित कष्ट भोगना पड़ेगा और न चिकित्सकको धन ही देना पड़ेगा।

नासिका बंद करनेका नियम

नाकके छिद्रमें घुस सके, इतनी-सी पुरानी साफ रूई लेकर उसकी गोल पोटली-सी बना ले और उसे साफ बारीक कपड़ेसे लपेटकर सिल ले। फिर इस पोटलीको नाकके छिद्रमें घुसाकर छिद्रको इस प्रकार बंद कर दे, जिसमें उस नाकसे श्वास-प्रश्वास-कार्य बिलकुल ही न हो। जिन लोगोंको कोई सिर-सम्बन्धी रोग है अथवा जिनका मस्तक दुर्बल हो, उन्हें रूईसे नाक बंद न कर मात्र स्वच्छ पतले वस्त्रकी पोटली बनाकर उसीसे नाक बंद करनी चाहिये।

किसी भी कारण, जितने क्षण या जितने दिन नासिका बंद रखनेकी आवश्यकता हो उतने क्षणों या उतने दिनोंतक अधिक परिश्रमका कार्य, धूम्रपान, जोरसे चिल्लाना, दौड़ना आदि नहीं करना चाहिये। जब जिस किसी कारणसे नाक बंद रखनेकी आवश्यकता हो, तभी इन नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये। नयी अथवा बिना साफ की हुई मैली रूई कभी नाकमें नहीं डालनी चाहिये।

निःश्वास बदलनेका तरीका

कार्यभेदसे तथा अन्यान्य अनेक कारणोंसे एक नासिकासे दूसरी नासिकामें वायुकी गति बदलनेकी भी आवश्यकता हुआ करती है। कार्यके अनुकूल नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होनेतक, उसे न करके चुपचाप बैठे रहना किसीके लिये भी सम्भव नहीं। अतएव अपनी इच्छाके अनुसार श्वासकी गति बदलनेकी क्रिया सीख लेना नितान्त आवश्यक है। यह क्रिया अत्यन्त सहज है, सामान्य चेष्टासे ही श्वास-गति बदली जा सकती है।

जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उसके विपरीत दूसरी नासिकाको अँगूठेसे दबा देना चाहिये और जिससे श्वास चलता हो उसके द्वारा वायु खींचना चाहिये। फिर उसे दबाकर दूसरी नासिकासे वायुको निकालना चाहिये। कुछ देरतक इसी तरह एकसे श्वास लेकर दूसरीसे निकालते रहनेसे अवश्य श्वासकी गति बदल जायगी। जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसी करवट सोकर यह क्रिया करनेसे अति शीघ्र श्वासकी गति बदल जाती है और दूसरी नासिकासे श्वास प्रवाहित होने लगता है। इस क्रियाके बिना भी जिस नाकसे श्वास चलता है, केवल उस करवट कुछ समयतक सोये रहनेसे भी श्वासकी गति

बदल जाती है।

इस लेखमें जहाँ-जहाँ नि:श्वास बदलनेकी बात लिखी जायगी, वहाँ-वहाँ पाठकोंको इसी कौशलसे श्वासकी गति बदलनेकी बात समझनी चाहिये। जो अपनी इच्छाके अनुसार वायुको रोक और निकाल सकता है, वही वायुपर विजय प्राप्त कर सकता है।

बिना औषधके रोगनिवारण

अनियमित क्रियाके कारण जिस तरह मानव-देहमें रोग उत्पन्न होते हैं, उसी तरह औषधके बिना ही भीतरी क्रियाओंके द्वारा नीरोग होनेके उपाय भगवान्‌के बनाये हुए हैं। हम लोग उस भगवत्प्रदत्त सहज कौशलको नहीं जानते, इसी कारण दीर्घ कालतक रोगजनित दु:ख भोगते हैं। यहाँ रोगोंके निदानके लिये स्वरोदयशास्त्रोक्त कुछ यौगिक उपायोंका उल्लेख किया जा रहा है, जिनके प्रयोगसे विशेष लाभ हो सकता है—

ज्वर—ज्वरका आक्रमण होनेपर अथवा आक्रमणकी आशङ्का होनेपर जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उस नासिकाको बंद कर देना चाहिये। जबतक ज्वर न उतरे और शरीर स्वस्थ न हो जाय, तबतक उस नासिकाको बंद ही रखना चाहिये। ऐसा करनेसे दस-पंद्रह दिनोंमें उतरनेवाला ज्वर पाँच-सात दिनोंमें अवश्य ही उतर जायगा। ज्वरकालमें मन-ही-मन सदा चाँदीके समान श्वेत वर्णका ध्यान करनेसे अति शीघ्र लाभ होता है।

सिन्दुवारकी जड़ रोगीके हाथमें बाँध देनेसे सब प्रकारके ज्वर निश्चय ही दूर हो जाते हैं।

अँतरिया-ज्वर—श्वेत अपराजिता अथवा पलाशके कुछ पत्तोंको हाथसे मलकर, कपड़ेसे लपेटकर एक पोटली बना लेनी चाहिये और जिस दिन ज्वरकी बारी हो उस दिन सबेरेसे ही उसे सूँघते रहना चाहिये। अँतरिया-ज्वर बंद हो जायगा।

सिरदर्द—सिरदर्द होनेपर दोनों हाथोंकी केहुनीके ऊपर धोतीके किनारे अथवा रस्सीसे खूब कसकर बाँध देना चाहिये। इससे पाँच-सात मिनटमें ही सिरदर्द जाता रहेगा। ऐसा बाँधना चाहिये कि रोगीको हाथमें अत्यन्त दर्द मालूम हो। सिरदर्द अच्छा होते ही बाँहें खोल देनी चाहिये।

सिरदर्द दूसरे प्रकारका एक और होता है, जिसे साधारणत: 'अधकपाली' या 'आधासीसी' कहते हैं। कपालके मध्यसे बायीं या दायीं ओर आधे कपाल और मस्तकमें अत्यन्त पीडा मालूम होती है। प्राय: यह पीडा सूर्योदयके समय आरम्भ होती है और दिन चढ़नेके साथ-साथ यह भी बढ़ती जाती है। दोपहरके बाद घटनी प्रारम्भ होती है और सायंतक प्राय: नहीं ही रहती। इस रोगका आक्रमण होनेपर जिस तरफके कपालमें दर्द हो, ऊपर लिखे अनुसार उसी तरफकी केहुनीके ऊपर जोरसे रस्सी बाँध देनी चाहिये। थोड़ी ही देरमें दर्द शान्त हो जायगा और रोग जाता रहेगा। दूसरे दिन यदि पुन: दर्द शुरू हो और प्रतिदिन एक ही नासिकासे श्वास चलते समय हो तो सिरदर्द मालूम होते ही उस नाकको बंद कर देना चाहिये और हाथको भी बाँध रखना चाहिये। 'अधकपाली' सिरदर्दमें इस क्रियासे होनेवाले आश्चर्यजनक फलको देखकर आप चकित रह जायँगे।

सिरमें पीडा—जिस व्यक्तिके सिरमें पीडा हो उसे प्रात:काल शय्यासे उठते ही नासापुटसे शीतल जल पीना चाहिये। इससे मस्तिष्क शीतल रहेगा, सिर भारी नहीं होगा और सर्दी नहीं लगेगी। यह क्रिया विशेष कठिन भी नहीं है। एक पात्रमें ठंडा जल भरकर उसमें नाक डुबाकर धीरे-धीरे गलेके भीतर जल खींचना चाहिये। यह क्रिया क्रमश: अभ्याससे सहज हो जायगी। सिरमें पीडा होनेपर चिकित्सक रोगीके आरोग्य होनेकी आशा छोड़ देता है, रोगीको भी भीषण कष्ट होता है; परंतु इस उपायसे निश्चय ही आशातीत लाभ पहुँचेगा।

उदरामय, अजीर्ण आदि—भोजन तथा जलपान आदि जो कुछ भी करना हो वह सब दायीं नासिकासे श्वास चलते समय करना चाहिये। प्रतिदिन इस नियमद्वारा आहार करनेसे वह बहुत आसानीसे पच जायगा और कभी अजीर्ण-रोग नहीं होगा। जो लोग इस रोगसे दु:खी हैं, वे भी यदि इस नियमके अनुसार प्रतिदिन भोजन करें तो खायी हुई चीज पच जायगी और धीरे-धीरे उनका रोग दूर हो जायगा। भोजनके बाद थोड़ी देर बायीं करवट सोना चाहिये।

जिन्हें समय न हो उन्हें ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे भोजनके बाद दस-पंद्रह मिनटतक दायीं नासिकासे श्वास चले अर्थात् पूर्वोक्त नियमके अनुसार रूईद्वारा बायीं नासिका बंद कर लेनी चाहिये। गुरुपाक (भारी) भोजन करनेपर भी इस नियमसे वह शीघ्र पच जाता है।

स्थिरताके साथ बैठकर नाभिमण्डलमें अपलक (एकटक) दृष्टि जमाकर नाभिकन्दका ध्यान करनेसे एक सप्ताहमें उदरामय (उदर-सम्बन्धी) रोग दूर हो जाता है।

श्वास रोककर नाभिको खींचकर नाभिकी ग्रन्थिको एक सौ बार मेरुदण्डसे मिलानेपर आमादि उदरामयजनित सब तरहकी पीडाएँ दूर हो जाती हैं और जठराग्नि तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है।

प्लीहा—रातको बिछौनेपर सोकर और प्रात: शय्या-त्यागके समय हाथ और पैरोंको सिकोड़कर छोड़ देना चाहिये। फिर कभी बायीं और कभी दायीं करवट टेढ़ा-मेढ़ा शरीर करके समस्त शरीरको सिकोड़ना और फैलाना चाहिये। प्रतिदिन चार-पाँच मिनट ऐसा करनेसे प्लीहा-यकृत् (तिल्ली, लीवर)-रोग दूर हो जायगा। सर्वदा इसका अभ्यास करनेसे प्लीहा-यकृत्-रोगकी पीडा कभी नहीं भोगनी पड़ेगी अर्थात् निर्मूल हो जायगी।

दन्तरोग—प्रतिदिन जितनी बार मल-मूत्रका त्याग करे, उतनी बार दाँतोंकी दोनों पंक्तियोंको मिलाकर जोरसे दबाये रखे। जबतक मल या मूत्र निकलता रहे, तबतक दाँतोंसे दाँत मिलाकर दबाये रहना चाहिये। दो-चार दिन ऐसा करनेसे कमजोर दाँतोंकी जड़ मजबूत हो जायगी। नियमित अभ्यास करनेसे दन्तमूल दृढ़ हो जाता है और दाँत दीर्घ कालतक काम देते हैं तथा दाँतोंमें किसी प्रकारकी बीमारी होनेका कोई भय नहीं रहता।

स्नायविक वेदना—छाती, पीठ या बगलमें—चाहे जिस स्थानमें स्नायविक या अन्य किसी प्रकारकी वेदना हो तो वेदना प्रतीत होते ही जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसे बंद कर देनेसे दो-चार मिनटके पश्चात् अवश्य ही वेदना शान्त हो जायगी।

दमा या श्वासरोग—जब दमेका जोरका दौरा हो तब जिस नासिकासे नि:श्वास चलता हो, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास चलाना चाहिये। दस-पंद्रह मिनटमें दमेका जोर कम हो जायगा। प्रतिदिन ऐसा करनेसे महीनेभरमें पीडा शान्त हो जायगी। दिनमें जितने ही अधिक समयतक यह क्रिया की जायगी, उतना ही शीघ्र यह रोग दूर होगा। दमाके समान कष्टदायक कोई रोग नहीं, दमाका जोर होनेपर इस क्रियासे बिना किसी दवाके बीमारी चली जाती है।

वात—प्रतिदिन भोजनके बाद कंघीसे सिर झाड़ना चाहिये। कंघी इस प्रकार चलानी चाहिये जिसमें उसके काँटे सिरको स्पर्श करें। उसके बाद वीरासन लगाकर अर्थात् दोनों पैर पीछेकी ओर मोड़कर उनके ऊपर पंद्रह मिनट बैठना चाहिये। प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद इस प्रकार बैठनेसे कितना भी पुराना वात क्यों न हो निश्चय ही अच्छा हो जायगा। यदि स्वस्थ आदमी इस नियमका पालन करे तो उसे वातरोग होनेकी कोई आशङ्का नहीं रहेगी।

नेत्ररोग—प्रतिदिन सबेरे बिछौनेसे उठते ही सबसे पहले मुँहमें जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जलसे आँखोंको बीस बार झपटा मारकर धोना चाहिये।

प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद हाथ-मुँह धोते समय कम-से-कम सात बार आँखोंमें जलका झपटा देना चाहिये।

जितनी बार मुँहमें जल डाले, उतनी बार आँख और मुँहको धोना न भूले।

प्रतिदिन स्नान-कालमें तेल मालिश करते समय पहले दोनों पैरोंके अँगूठोंके नखोंको तेलसे भर देना चाहिये और फिर तेल लगाना चाहिये।

ये नियम नेत्रोंके लिये विशेष लाभदायक हैं। इनसे दृष्टिशक्ति तेज होती है, आँखें स्निग्ध रहती हैं और आँखोंमें कोई बीमारी होनेकी सम्भावना नहीं रहती। नेत्र मनुष्यके परमधन हैं। अतएव प्रतिदिन नियमपालनमें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। (क्रमश:)

'नाना पन्था विद्यते'*

[चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियाँ]

(डॉ० श्रीवत्सराजजी)

रोग होनेपर उपचारकी आवश्यकता होती है और लोग अपनी-अपनी आस्था तथा पसंदके अनुसार विभिन्न उपचार-विधियाँ अपनाते हैं। प्रत्येक उपचार-विधिके निष्णात चिकित्सक हैं, सम्भव है आपकी कोई अपनी विधि हो। घरोंमें तो दादी माँकी विधि चलती है और हर परिवारके पास अनुभूत घरेलू उपचार होते हैं। इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, परिवारजन और अड़ोसी-पड़ोसी भी बिना माँगी सलाह देनेमें चूकते नहीं। हमने बड़े-बड़े प्रबुद्ध घरोंमें झाड़-फूँक होते देखी है। तकलीफ बढ़ी तो वैद्य, हकीम, होमियोपैथ डॉक्टर भी बुलाये जाते हैं। शुरू होता है सिलसिला जाँच-पड़तालका, अस्पतालमें भरती होनेका। परेशान घरवाले ज्योतिषीके यहाँ जाते हैं जन्मपत्री, समयका चौघड़िया दिखाते हैं, प्रश्न-विचारका सहारा लेते हैं। यदि ग्रहदशा बिगड़ी हो तो उसकी शान्ति होती है, पूजा-पाठ, मनौती, चढ़ावा, जप, व्रत, होम आदिका क्रम प्रारम्भ होता है। बात और बिगड़ी तो गीतापाठ, रामायणपाठ आरम्भ होता है और जब आशाकी किरण डूबने लगती है तो 'महामृत्युञ्जय'का जप आरम्भ होता है, कविराज अमोघ 'मकरध्वज' लेकर उपस्थित होते हैं, संत-महात्माकी दुआ माँगी जाती है। गोस्वामीजीने 'हनुमानचालीसा' में लिखा है—*'नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा'॥* बाबा विश्वनाथका चरणामृत और चन्दन, संकठाजीकी रोरीकी सहायता-हेतु आते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक, आधिदैहिक सभी उपायोंका सहारा भी जब काम नहीं आता तो गङ्गाजल और तुलसीका उपचार करते हैं; क्योंकि कहा है—'**औषधिर्जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः**'।

प्राचीन भारतमें उपचारकी बात कही जाती थी— पैथियोंकी चर्चा नहीं थी, पर भला हो पश्चिमी विद्वानोंका कि उन्होंने 'पैथी' का सृजन किया। सच पूछिये तो अठारहवीं सदीतक वहाँ भी 'पैथी' नहीं थी, अनुभूत उपचार थे। यह 'पैथी' शब्द यूनानी भाषाके 'पैथास'— वेदनानुभूतिसे बना है। कालान्तरमें उपचार-विधियाँ 'पैथी' कहलाने लगीं और-तो-और आयुर्वेद, यूनानी, ऐलोपैथी भी 'पैथी' बन गये।

आप पूछेंगे कि क्या ये सब 'पैथी' नहीं हैं? नहीं, ये सभी 'चिकित्सा-शास्त्र' हैं; क्योंकि इनमें निष्णात विद्वान् मात्र उपचारकी बात नहीं सीखते, बल्कि शरीर-रचना, क्रिया, स्वस्थवृत्त, औषधिके गुण-दोष-विज्ञान, विकृति-विज्ञान, जैव रसायन, अगदतन्त्र, काय-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, स्त्रीरोग-चिकित्सा, नेत्र-चिकित्सा, बाल-चिकित्सा, मनोचिकित्सा (मनश्चिकित्सा)-का अध्ययन करते हैं। आयुर्वेदका तो पाठ्यक्रम ही 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' का है। 'पैथियों' के साथ ऐसा नहीं है। वे एक दर्शन या दृष्टिविशेषका आधार लेकर उपचार-विधि विकसित करते हैं।

जैसे संसारमें उपासनाके अनेक सम्प्रदाय हैं, उसी प्रकार उपचारकी भी सैकड़ों पैथियाँ हैं। हम यहाँ आपकी जानकारीके लिये शताधिक पैथियोंकी सूची दे रहे हैं। इन्हें विकल्प-चिकित्सा, समानान्तर-चिकित्सा, परिधि (फिंज)-चिकित्सा आदि अनेक नामोंसे जाना जाता है। इनका विस्तृत परिचय तो एक विशाल ग्रन्थका विषय है, हम तो केवल नाम गिना रहे हैं, एक-दो पंक्तिमें परिचय भी दे रहे हैं। यदि आपकी रुचि हो तो इनके ग्रन्थ मँगा सकते हैं, इन पैथियोंके चिकित्सकोंसे मिल सकते हैं, उपचार करा सकते हैं।

एक बात यह भी जानने योग्य है कि ये सभी देशों—सीमाओंमें बँधी नहीं हैं और विश्वके अनेक देशोंमें इनका प्रचार-प्रसार है। इसके साथ ही एक बात यह भी जान लेने योग्य है कि 'पैथी' का नामकरण कब और कैसे हुआ? एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे डॉ० सैमुअल हैनीमैन (१७५५-१८४३ ई०)। उन्होंने अपनी उपचार-विधिको 'होमियोपैथी' नाम दिया और अन्य उपचार-विधियोंको ऐलोपैथी (विपरीत-चिकित्सा) कहा। इस अर्थमें यूनानी, तिब्बी, आयुर्वेद सभी ऐलोपैथी कहे जा सकते हैं। यूरोपमें उस समय 'गेलन' द्वारा निदेशित पद्धति प्रचलित थी, जिसमें आयुर्वेदकी तरह पञ्चकर्म (प्रस्वेद, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण और वस्ति)-का प्रचलन था। बड़ी मात्रामें काष्ठ-औषधियाँ और रसायनसे बनी औषधियाँ (काढ़ा,

* इस लेखमें १३५ पैथी (चिकित्सा-पद्धति) गिनायी गयी हैं, जो वर्तमान समयमें रोगीके उपचारके लिये उपलब्ध बतायी जाती हैं।

भस्म आदि) दी जाती थीं। संखिया और बार-बार रक्त निकालने (फस्त खोलने)-के उपचारके कारण रोगी मर जाता था। इसका दर्शन था रोगकारकका शमन करनेके लिये विपरीत उपचार। हैनीमैनने इसे समझा और अत्यन्त सूक्ष्म मात्रामें औषधि देनेकी व्यवस्था की तथा एक नयी दृष्टि दी कि जिस पदार्थको लेनेसे जो भी लक्षण पैदा होते हैं, रोगमें वैसे लक्षण पैदा होनेपर उस पदार्थकी सूक्ष्म मात्रा रोगका निवारण करती है। वैज्ञानिक पुनरुत्थानके युगमें गेलनकी ऐलोपैथी शेष हो गयी (यद्यपि नाम चल रहा है) और उसका स्थान आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्साने ले लिया है। 'हिन्दू' धर्मकी भाँति जो भी तर्कसंगत है, विज्ञानसम्मत है, लाभकारी है, इसमें संयुक्त हो सकता है। इतिहासका अवलोकन करें तो एक मजेदार बात ज्ञात होगी कि उन दिनों पैथी नहीं 'नुस्ख़े' की चर्चा होती थी (अभी बीसवीं सदीके उत्तरार्धतक)। ये नुस्ख़े अपने देश या चिकित्सकके नामसे सुख्यात थे और पूरा विश्वास था कि रोग-विशेषमें ये चमत्कारी हैं, पर आज यह बात लुप्तप्राय हो गयी है। आधुनिक चिकित्सकोंके यहाँ डिस्पेंसरी नहीं रही है, वैद्यों या हकीमोंके यहाँ दवा नहीं बनती। बाजारमें सब कुछ मिलता है तो आइये आजकी प्रचलित पैथियोंसे मिलें—

'पैथियाँ' (अकारादि-क्रमसे)

१. अक्यूपंचर और अक्यूप्रेशर—चीनमें विगत चार हजार वर्षोंसे प्रचलित, जिसमें चीनके 'यिंग यांग' दर्शनके आधारपर सुइयाँ (बहुत छोटी) चुभोते या दबाव डालते हैं। इसीके साथ 'मोक्षाबस्टेशन'—मोक्षा बीज जलाकर दागनेकी भी चिकित्सा है।

२. अप्रत्यक्ष उपचार (एबसेन्ट हीलिंग)—रोगीका पत्र पाकर 'चर्च' में उसके आरोग्यकी प्रार्थना की जाती है। इसी प्रकारकी पैथी 'टेली मेडिसीन' या 'टेलीपैथी' भी है।

३. अरोमाथिरैपी (गन्ध-चिकित्सा)—बहुत पुराने समयमें नीमकी धुनी या मिर्चेकी बुकनीकी धुनीका प्रयोग करते थे।

४. आर्गेनोथिरैपी—शरीरके अङ्गोंका दवाके रूपमें उपयोग।

५. आर्गोनथिरैपी—डॉ० विलहेम रीखद्वारा 'आर्गोन' (जीवतत्त्व-चिकित्सा) नामक शक्तिकी खोज और उसके द्वारा चिकित्सा।

६. आचार-चिकित्सा (बिहेवियरलथिरैपी)।

७. ऑटो-सजेशन—मनको विश्वास दिलाना। दर्पणके समक्ष खड़े होकर कहना 'मैं अच्छा हूँ।'

८. आदिम चिकित्सा—विश्वभरके आदिवासी अपनी चिकित्सा-विधिसे उपचार करते हैं।

९. आध्यात्मिक चिकित्सा (स्पिरिचुअल हीलिंग)—सिद्धान्त 'कहो मत उपचार दो।'

१०. ऑस्टियोपैथी—अत्यन्त लोकप्रिय प्रचलित चिकित्सा-विधि। पीठका दर्द दूर करते-करते यह पूर्ण उपचार-विधि बन गयी। हड्डियों, जोड़ों और मांस-पेशियोंके संचालनद्वारा रोगमें आराम पहुँचाना। इनके चिकित्सक अपनेको नसोंके जानकार बताते हैं। मेरुदण्डके आकारपर इनका विशेष जोर है। इसकी शाखाएँ हैं—'क्रेनियल (कपाल) ऑस्टियोपैथी, एप्लायड काइनेसियोलॉजी (प्रयुक्त पेशी संजोयन), काइरोप्रैक्टिक' आदि।

११. ऑटिज्म।

१२. एसेंशल-ऑयलथिरैपी—सुगन्धित तेलोंसे उपचार।

१३. एंथ्रोपोसोफियल-मेडिसिन।

१४. एनकाउण्टर-चिकित्सा।

१५. औषधिविहीन उपचार—कोई औषधि न ले, आरामसे लेट जाय, प्रकृतिको चिकित्सा करने दे।

१६. कलरथिरैपी (क्रोमोपैथी)—रंग और स्वास्थ्यका सम्बन्ध है। उपचारमें रंगीन जल, रंगीन प्रकाश आदिका उपयोग होता है।

१७. कॉपरथिरैपी—ताम्रपात्रमें रखे जलको पीनेसे रोग नष्ट होते हैं।

१८. कॉस्मेटिक थिरैपी—(प्रसाधन-चिकित्सा)।

१९. कपिंग—अत्यन्त प्राचीन विधि। कटोरेमें थोड़ा-सा आसव रखकर जला देते हैं और फिर उसे रुग्णस्थानपर उलटा करके चिपका देते हैं, रिक्तताके कारण कटोरा चिपक जाता है।

२०. कनछेदन—(कर्णवेध, स्टेपल पंचर)।

२१. क्रिश्चियन साईन्स—ईसाई धार्मिक आस्थासे उपचार।

२२. काहूना हीलिंग—पोलीनीशिया द्वीपकी एक समग्र उपचार-विधि।

२३. केशोपैथी—रोगीके सिरका एक केश लेकर उसका उपचार। बिना दवा खिलाये यह उपचार होता है।

२४. कॉटरी—(तप्त किये गये लोहेसे दागकर इलाज करना) गाँवोंमें लोग आज भी बच्चोंकी तिल्ली बढ़नेपर इस विधिसे उपचार करते हैं।

२५. को-काउन्सिलिंग—सलाह-चिकित्सा।

२६. कीचोपैथी—(मडबाथ, मिट्टीस्नान) रूसके काला

सागर क्षेत्रमें प्रचलित चिकित्सा।

२७. क्रिस्टल क्योर।

२८. गर्सन न्यूट्रिशनथिरैपी—एक प्रकारकी पोषण-चिकित्सा।

२९. गिनसिंग—चीनमें पैदा होनेवाली चमत्कारी जड़ी गिनसिंग (जीवनदायिनी मूल)-से उपचार।

३०. ग्राफोलॉजी—हस्तलेख-चिकित्सा।

३१. गर्म जलका उपचार।

३२. ग्रहशान्ति।

३३. गन्ना-रस-चिकित्सा।

३४. गाजर-चिकित्सा।

३५. घास-चिकित्सा।

३६. चुम्बक-चिकित्सा (मैग्नेटोथिरैपी)—आजकल बहुत विज्ञापित है।

३७. जल-चिकित्सा—अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा-विधि है। जलकी रोगहारी शक्तिमें अपार विश्वास। संसार-भरमें झरनों, कूपों, तालाबों, नदीके जलोंकी रोगहारी शक्तिको मान्यता। अनेक उष्ण जलके स्रोतोंमें गन्धक होता है, जो त्वचाके रोगको अच्छा करता है। हमारे यहाँ तो गङ्गाजलको '**औषधिर्जाह्नवीतोयम्**' कहा है। अभिमन्त्रित जलसे मार्जन करनेकी विधि है।

३८. ज्योतिष-चिकित्सा—एस्ट्रोलॉजी मेडिसिन।

३९. ज्वर-चिकित्सा—(पाइरेटोथिरैपी)।

४०. टेली रेडियोलॉजी एण्ड फोटोबायोलॉजी।

४१. टाई-ची-चुआन-विधि—चीनी-चिकित्सा।

४२. टोटको पैथी।

४३. ट्रांस पर्सनल साइकोलॉजी।

४४. डायानेटिक्स।

४५. डू-इन।

४६. टहलनेकी चिकित्सा।

४७. ताओ-ऑफ लविंग—प्रेम-चिकित्सा।

४८. ताजा रस (रॉ जूस)-थिरैपी।

४९. तिब्बी चिकित्सा।

५०. ध्वनि-चिकित्सा—अतिस्वन-ध्वनि (अल्ट्रा साउण्ड)-से दवा। ऐसी ही 'सोनोथिरैपी' है।

५१. ध्यान-चिकित्सा (मेडिटेशन)—ऐसी ही 'विपश्यना-विधि' भी है।

५२. नैचुरोपैथी (प्राकृतिक चिकित्सा) इस पैथीसे पूज्य बापू (महात्मा गाँधी)-का नाम जुड़ा है। इसमें प्राकृतिक ढंग और विधियोंसे उपचार करते हैं—स्नान, गीली पट्टी, मिट्टीका लेप, वस्ति, उपवास, ताजा आहार, हरी शाक-सब्जी, फल, वाष्प-स्नान आदिका उपयोग होता है। प्राकृतिक नियमोंसे रहनेवाला एक सम्प्रदाय भी बन गया है, जिसके उपनिवेश अनेक देशोंमें हैं। ये लोग नग्नावस्थामें बिना किसी प्रकारकी आधुनिक सुविधाका उपयोग किये प्रकृतिके सांनिध्यमें रहते हैं।

५३. निगेटिव आयनथिरैपी—सिल्वर आयोडाइडके आयनोंसे युक्त जलका पान कराते हैं।

५४. नस्य-चिकित्सा—सुँघनी या छिंकनीसे उपचार।

५५. निद्रा-चिकित्सा—प्राचीन युगमें यूनानमें मन्दिरमें शयनकी चिकित्सा प्रचलित थी। देवता स्वप्नमें आकर उपचार कर देते थे।

५६. नृत्य-चिकित्सा—नाचसे भी लाभ होता है। इसके अन्तर्गत बेली, डांसिंग, हूलाहूला नृत्य भी आते हैं।

५७. नोल्स-ब्रीदिंग-ट्रिटमेण्ट—श्वासोपचार।

५८. पुष्प-चिकित्सा (फ्लावर हीलिंग)—पुष्प और स्वास्थ्यका सम्बन्ध है और इस आधारपर विभिन्न पुष्पोंसे उपचार करते हैं।

५९. प्राणिक उपचार—मानव-शरीरके चारों ओर उसकी ऊर्जासे प्रभामण्डल बनता है। इस विधिका मानना है कि रोगके कारण शक्तिका ह्रास हो जाता है या कहीं अधिक शक्ति हो जाती है। वे मानते हैं कि विश्व शक्तिसे भरा है, ब्रह्माण्ड-किरणोंसे शक्ति-वर्षा होती रहती है। उपचारक शरीरकी शक्तिकी ऊर्जा घटा या बढ़ाकर रोगका शमन करता है। इस विधिने तन्त्र और योगका भी सहारा लिया है, वे मानते हैं कि ऊर्जाका नियन्त्रण चक्रोंद्वारा होता है। इसी प्रकार ऊर्जामय बननेके लिये 'ध्यान' (मेडिटेशन)-का महत्त्व माना गया है। विशेष बात यह कि उपचार करते समय रोगीका स्पर्श नहीं करते। इस विधिमें दूरसे चिकित्सा भी सम्भव है। यह विधि अपनेको अन्य उपचार-विधियोंका विरोधी न मानकर पूरक मानती है। इसमें मानसिक और आत्मिक उपचारका भी विधान है।

६०. पिरामिड थिरैपी—मिस्र देशके पिरामिड आश्चर्यके साथ ही रहस्यमय भी रहे हैं। इस विधिके उपचारक मानते हैं कि पिरामिड आकारके कक्ष या तंबूमें रोगी लेटे तो अच्छा हो जाता है।

६१. प्रीनेटल थिरैपी (गर्भावस्थामें उपचार)।

६२. पल्स्ड हाई फ्रिक्वेंसी थिरैपी।

६३. पैटर्न थिरैपी।

६४. फोटोग्राफ-चिकित्सा—उपचारक आपका फोटो ले जाता है और उसका उपचार करता है, रोग आपका अच्छा होता है। इसीका एक रूप है 'इमेजिनियरिंग' अर्थात् 'छबि अभियान्त्रिकी'।

६५. फल-चिकित्सा—फल खाइये (विशेष रोगमें विशेष फल) और स्वास्थ्य-लाभ कीजिये।

६६. फिजियो थिरैपी—शरीरका मालिश, व्यायाम आदिसे उपचार और रोग न होने देनेका उपचार। इसके अन्तर्गत सौर-चिकित्सा, फोटो थिरैपी (प्रकाश-उपचार), ताप-चिकित्सा, वैलनियो थिरैपी (खनिजयुक्त प्राकृतिक जलोंसे), विद्युत्-चिकित्सा सभी शामिल हैं।

६७. बाख रेमेडीज।

६८. बैट्स आई थिरैपी (त्राटक-चिकित्सा)।

६९. बायो एनर्जी।

७०. बायो फीडबैक।

७१. बायो रिद्म।

७२. बीज-चिकित्सा (सीड थिरैपी)।

७३. बायोकेमिक—होमियोपैथी-जैसी लोकप्रिय विधि जो रसायन—यौगिकोंका प्रयोग करती है।

७४. मैक्रोबायटिक्स—एक प्रकारकी आहार-चिकित्सा, जो चीनके यिंग-यांग सिद्धान्तपर आधारित है।

७५. मधुमक्खी डंक-चिकित्सा।

७६. मनोनाट्य उपचार—नाटकद्वारा मानसिक रोगोंकी थिरैपी। इसी प्रकार आर्ट थिरैपी—चित्रकला उपचार भी है।

७७. मैजिक मेडिसिन—जादुई-इलाज।

७८. मेटल थिरैपी—धातु-चिकित्सा।

७९. मोमियाई—एक युगमें मिस्र देशकी 'ममी' का उपचारमें प्रयोग होता था।

८०. मेगाविटामिन थिरैपी।

८१. मकड़ी उपचार (स्पाइडर थिरैपी)।

८२. योगा—वर्तमान युगमें बाजारीकरणके चलते योगमें वर्णित प्राणायाम और आसनका उपचारके लिये उपयोग होने लगा है। यम-नियमविहीन योग 'योगा' बन गया है।

८३. रत्न-चिकित्सा (जेमोपैथी)—रत्न धारण करनेसे रोग दूर हो सकते हैं, इसका अब पूरा शास्त्र बन गया है।

८४. रुद्राक्ष-चिकित्सा।

८५. रोगस्थानान्तरण-चिकित्सा—इस विधिमें लोग विश्वास करते हैं कि रोग दूसरे प्राणीको दिये जा सकते हैं और इस प्रकार रोग दूर होता है। इसमें मेढक, बत्तख आदिको रोग-ट्रान्सफर करते हैं।

८६. रेडियस्थीसिया और रेडियानिक्स—स्पन्दनको पहिचानकर भू-गर्भसे जल, तेल, खजाना खोजनेके माहिरोंके ज्ञानसे इलाज करनेका तरीका भी निकाला है। इसका उपयोग पुरातत्त्वज्ञ भी करते हैं। द्विशाख टहनी, पेण्डुलम आदिका इसमें उपयोग होता है।

८७. रिफ्लेक्सोलॉजी—भारत और चीनकी प्राचीन विद्याओंसे और 'हठयोग' से सम्बन्धित यह विधि दबाव और मालिशद्वारा उपचार करती है।

८८. रीखियन थिरैपी या रेकी—वर्तमान समयमें काफी प्रचलित विधि। शरीरमें हो रहे शक्ति-प्रवाहको स्पर्शद्वारा सन्तुलित करते हैं।

८९. रोल्फिग—आहार-विहार तथा नियमनद्वारा चिकित्सा। इसमें हवाफेर, व्यायाम, निद्रा, गर्म जल-स्नान आदिका तथा छुट्टी, विश्राम और स्थान-परिवर्तन लाभ करते हैं।

९०. लौंग-इलायची-उपचार (कार्डमम थिरैपी)—तथा मसाला-उपचार।

९१. लहसुन-चिकित्सा—अत्यन्त पुरानी विधि।

९२. लेसर थिरैपी—लेसर किरणोंसे उपचार—विशेष रूपसे नेत्ररोगोंमें।

९३. वाइन थिरैपी—आसवसे उपचार।

९४. विश्वासोपचार (फेथ हीलिंग)।

९५. वास्तु-चिकित्सा—रोगीके बदले उसके आवासका इलाज।

९६. शियात्सु मसाज।

९७. शफूफ-चिकित्सा।

९८. शीत-चिकित्सा—(प्रशीतन-विधि), शीतनिद्रा।

९९. शॉक थिरैपी।

१००. शकुन-विचार।

१०१. शब्द-चिकित्सा (वर्ड थिरैपी)—बातचीतसे इलाज।

१०२. स्पाथिरैपी—एक प्रकारकी स्नान-चिकित्सा।

१०३. सेल्फ अवेयरनेस—आत्मबोध-उपचार।

१०४. सिकन्दरी तकनीक (एलेक्जेंडरियन तकनीक)।

१०५. साइबरनेटिक्स।

१०६. साइकोथिरैपी।

१०७. स्नान-चिकित्सा, सौना बाथ।

१०८. सथिया—ग्रामके नेत्र-चिकित्सक (सचल) और कानका मैल निकालनेवाले नाऊ, जो प्राचीन युगमें

चीर-फाड़ करते थे और इसीसे आज भी सर्जनको 'बार्बर सर्जन' कहते हैं।

१०९. सैंड बैगथिरैपी।

११०. साहित्योपचार—गीता, रामचरितमानस, हनुमान-चालीसा तथा सत्साहित्य आदिका पाठ।

१११. संगीत-चिकित्सा—संगीत सुननेसे रोग अच्छे होते हैं।

११२. संशोधन-चिकित्सा—(पञ्चकर्म) सिद्ध-चिकित्सा।

११३. सुरमा-उपचार (अञ्जन-चिकित्सा)।

११४. समग्र चिकित्सा—होलिस्टिक मेडिसिन तथा पोली पैथी अनेक पैथियोंका एक साथ उपयोग।

११५. सूखो पैथी—जलका निषेध।

११६. सौर-चिकित्सा—धूपसे इलाज, हीलियो थिरैपी (रंगीन प्रकारसे 'सोलेरियम' में इलाज करते हैं)।

११७. हैंड हीलिंग (स्पर्श-चिकित्सा)—यह उपचार आदिकालसे प्रचलित है। संत-महात्मा तथा राजपुरुषका स्पर्श होनेसे रोग दूर हो जाते हैं। मिस्र देशके मन्दिरोंमें स्पर्श-पुजारी होते थे। ईसा मसीहद्वारा स्पर्श करके कुष्ठरोग दूर करने, मृतकको जिलानेके चमत्कार लोकविख्यात हैं। इंग्लैण्डमें 'रायल टच' की कथा कही जाती है। भारतके महात्माओंने तो अनेक बार यह चमत्कार किया है। महान् चिकित्सक सुश्रुतने अपनी संहितामें शल्यमें काम आनेवाले उपकरणोंकी सूची दी है और इनमें प्रथम नाम 'हाथ' का है। हाथका कमाल हर जगह दीखता है।

११८. हेल्थ फार्म्स—स्वास्थ्यशालाएँ।

११९. हेल्थ फूड्स—स्वस्थ आहार।

१२०. हेब्रेक नेम चेंजिंग—विश्वव्यापी विश्वास है कि नामपर टोना किया जा सकता है। जहाँ बच्चे जन्मते ही मर जाते हैं, नवजातका नाम गोबर, भोंदू आदि देते हैं। रातमें नाम लेकर नहीं पुकारते। हेब्रू लोग नाम-परिवर्तन करके रोग भगाते थे। हमारे यहाँ भी जन्मपत्रीका गोपन नाम होता है।

१२१. हर्बलिज्म (जड़ी-बूटीसे इलाज)—आजकल हर्बलका फैशन चल रहा है। बाजारमें हर्बलके नामसे साबुन, तेल, सौन्दर्य-प्रसाधन, शैम्पू, लेप और दवाएँ बिक रही हैं। आयुर्वेदमें यह गम्भीर विषय है, वे जड़ीको आमन्त्रित एवं अभिमन्त्रित करते थे, साइत देखकर तोड़ते थे और शास्त्रानुसार उपयोग करते थे।

१२२. हाई वोल्टेज फोटो थिरैपी—आकाशीय विद्युत्‌की चमकने विद्वानोंको आकर्षित किया। हाई वोल्टेजके उपचारमूलक प्रभावका प्रयोग किया गया है। 'किर्लियन फोटोग्राफ' प्रभामण्डल दिखाते हैं।

१२३. होमियोपैथी—समानसे समानका उपचार, एक मान्यता कि जितना अधिक डाईल्यूशन होगा, औषधिकी शक्ति उतनी बढ़ेगी। रोगके सूक्ष्मतम लक्षणोंको नोट करनेकी परम्परा इस विधिमें चली। इस विधिके अन्वेषक हैनीमैनको आधुनिक चिकित्सा-जगत्‌में 'फार्मोकोलॉजीके जनक' का विरुद प्राप्त है। इसीकी शाखा 'इलेक्ट्रो होमियोपैथी' है।

१२४. हिप्नोटिज्म और मेसमेरिज्म।

१२५. हस्तयोग।

१२६. हाईकोलोनिक लवाज।

१२७. हाईब्रिडोमा।

१२८. हील (रीकास्ट) फुटवियर (पादत्राण) थिरैपी।

१२९. हास-चिकित्सा (लाफ्टर मेडिसिन)।

१३०. शिवाम्बु-चिकित्सा—स्वमूत्रपान-चिकित्सा।

१३१. स्वेंडिश मसाज।

१३२. वेगन उपचार—विशुद्ध शाकाहार—दूध, घी भी वर्जित।

१३३. शाकाहार—साग-भाजी-चिकित्सा।

१३४. सायोनिक मेडिसिन—समग्र मानवकी जीवन्त शक्तियोंके नियमनद्वारा उपचार।

१३५. सायनिक सर्जरी (मनःशल्य)—बिना चीर-फाड़के मानसिक शक्तिद्वारा शल्य-क्रिया करनेकी विधि।

इसके अलावा भी उपचारकी अनेक विधियाँ हैं, जो हमारे अज्ञानवश इस सूचीमें नहीं हैं। कुछका तो नाम ही नहीं है, जैसे एक केन्द्रिय स्वास्थ्य-मन्त्रीने चार मास प्रशिक्षण और दवाकी एक पेटी देकर गाँवोंमें चिकित्सा करनेके लिये, चीनकी एक योजनाकी नकलमें चिकित्सक बनानेका उपक्रम किया था। यह 'चौमासा पैथी' चली नहीं। पुनः अनेक लोग स्वयम्भू चिकित्सक होते हैं। बाकी आप बीमार पड़े तो रिश्तेदार, मित्र, पड़ोसी सभी अनुभूत चिकित्सा और नेक सलाह देनेसे नहीं चूकते।

कहा है '**विश्वासः फलदायकः**' सो अपना उपचार स्वयं चुनें। बाकी तो वैद्य नारायण हरि हैं ही, जो भवरोगसे मुक्ति प्रदान करते हैं। उनकी कृपासे 'पन्थ' सुगम हो जाते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिका विकास-क्रम

(डॉ० श्री के० त्रिपाठी, एम्० बी० बी० एस्०, एम्० डी०, डी० एम्०)

आधुनिक चिकित्साके लिये प्रचलित अंग्रेजी शब्द 'एलोपैथी' चिकित्सा-शास्त्रकी दृष्टिसे एक अवैज्ञानिक शब्द है और वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें चिकित्सा-साहित्यमें इसका कहीं भी प्रयोग नहीं होता। वस्तुतः साहित्य, कला, संस्कृति और मौलिक विज्ञानका क्रमिक विकास ही आधुनिक चिकित्साकी आधारशिला है, जिसका भौतिक, रसायन, गणित एवं प्रायोगिक मानदण्डोंपर निरन्तर परिमार्जन होता रहा है तथा इसी परिमार्जनको कुछ और परिष्कृत करनेकी निरन्तरता ही इसे सार्वभौमिक एवं लोकोपयोगी बनाये हुए है।

पुरातनकालीन भित्तिका-चित्रों और गुफाओंकी अनुकृतियोंके आधारपर इस बातकी पुष्टि होती है कि उस समय मनुष्यको शरीर-रचना और विकृत अङ्गोंका पूरा ज्ञान था। पशुओं और मनुष्योंके प्रजननसम्बन्धी रोगोंके चित्र भी इन गुफाओंके चित्रोंमें मिलते हैं। काशीक्षेत्रके पास मिर्जापुर किलेके लिखुनिया स्थित प्रपातके भित्ति-चित्रोंमें इस तरहके अनेक चित्र मिलते हैं, जो इसके प्रमाण हैं कि भारतके इस क्षेत्रमें मनुष्य संसारके अन्य भागसे अधिक विकसित थे।

यह ज्ञात होता है, ईसाके ९००० वर्षपूर्व मनुष्यने कुछ शल्य-क्रियाकी विधियोंका प्रयोग भी किया। ऐसी विधियाँ मस्तिष्कके अंदर प्रविष्ट हुईं दुष्ट आत्माओंको बाहर निकालनेके लिये सम्भवतः प्रयोग की जाती थीं, जिसमें कपालकी हड्डीमें छेद करके मस्तिष्कका तनाव कम कर दिया जाता था। ग्रीकके इतिहासमें एक ही रोगीके ऊपर इस तरह कई बार की गयी शल्य-क्रियाके प्रमाण मिलते हैं। आज भी इस शल्य-क्रियाको आधुनिक तन्त्रिकाशल्यक मस्तिष्कमें ट्यूमरके बायप्सीके लिये प्रयोग करते हैं। इस ऑपरेशनका एक दूसरा भी पक्ष है और वह यह कि कुछ स्थानोंमें इस ट्रिफाइन-विधिद्वारा निकाली गयी हड्डी गलेमें बाँधकर लटकायी जाती थी, ताकि दुष्ट आत्माओंकी प्रतिच्छाया उसपर न पड़ सके।

मिस्रमें चिकित्सा-शास्त्रका विकास

मिस्रमें चिकित्सा-शास्त्रका विकास नील नदीकी संस्कृतिके उत्थान और पतनके साथ-साथ ही हुआ। भित्ति-चित्रोंसे लेखनकलाके विकासमें सम्भवतः हजारों वर्ष लगे होंगे और सुमेरियन और बेबिलोनियाके निवासियोंने इस कलाको पत्थरोंपर उत्कीर्ण करके चित्रात्मक शब्दावली तैयार की। कागजके आविष्कारके पूर्व भारतमें भोजपत्रोंपर लिखनेकी कलाका ज्ञान था। मिस्रकी आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रमें सबसे बड़ी देन है शरीर-रचनाका प्रामाणिक अध्ययन। मिस्रमें पिरामिडके अंदर मृत-शरीरको रखनेकी कला ईसाके ३५०० वर्षपूर्व ही प्रचलित हो चुकी थी। इस कलामें पारंगत लोगोंको शरीर-रचनाके बारेमें ज्ञान था और अधिकांशतः शरीरकी विकृतिके आधारपर रचनागत दोषोंका ज्ञान भी इसी आधारपर हुआ। जैसे लकवा (फालिज)-के रोगमें मस्तिष्कके विशेष भागमें दोषका होना। मिस्रकी चिकित्सा-पद्धतिकी विशिष्टता थी उसमें धर्मका समायोजन। इस परम्परामें अनेक देवताओंका आवाहन करके चिकित्सा की जाती थी, प्रमुख देवताओंमें थोभ, हरमिस, आइसिस और उसका पुत्र होरस था। मिस्रकी सभ्यतामें विद्वान् इमहोतेप (२६०० वर्ष ई०पूर्व) हुए, जिन्हें चिकित्सा-शास्त्रका पूरा ज्ञान था। चिकित्सा-विज्ञानके विकासमें दुष्ट आत्माओंद्वारा रोग फैलानेकी धारणाका एक विशेष महत्त्व है, इन दुष्ट आत्माओंसे मुक्तिके लिये रोगीको अखाद्य वस्तुएँ दी जाती थीं अथवा कटु, तिक्त, कषाय गुणवाले पदार्थोंको पीनेको दिया जाता था, ताकि रोगीके शरीरसे वमन या विरेचन हो सके। इस प्रकार रोग, कारण और औषधिके सम्बन्धकी परम्पराका विकास हुआ और भूमिके अंदर पाये जानेवाले खनिज लवण, गंधक, ताम्र और पारेका प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

शल्यक्रियाका विकास भी सम्भवतः ग्रीक चिकित्सामें खतनेकी प्रक्रियासे हुआ होगा। घावको चीरने एवं कटे अङ्गोंको सीनेकी पद्धतिका विकास भी यहींसे हुआ तथापि मस्तिष्कमें छेद करनेकी कला एवं अङ्गोंको काटनेकी कलाका विकास अबतक यहाँ नहीं हुआ था। मेसोपोटामियामें सुमेरियन कालमें लेखनकलाका विकास हुआ और राजा

अषुरबनिपालके यहाँ स्लेटोंपर उत्कीर्ण पुस्तकालयके आधारपर (७०० ईसापूर्व) प्रमाण मिलते हैं कि ग्रीक और मेसोपोटामियन-चिकित्सामें काफी समानता थी।

ईसाके पूर्व २००० वर्षोंतक राजा हम्मूरबीद्वारा निर्धारित नियमोंके अन्तर्गत हर चिकित्सकको चिकित्सा करनी होती थी और उसका पालन न करनेपर कठोर राजदण्ड भुगतना पड़ता था। बेबिलोनियामें इस कालतक चिकित्सकोंके पास कम-से-कम २५० पौधे, १२० खनिज-लवणोंका ज्ञान हो चुका था। आसीरियामें रहनेवालोंको गंधकका भी प्रयोग करना आता था, जो कि आजतक औषधिके रूपमें प्रयुक्त होता है।

ग्रीसमें चिकित्सा-पद्धतिके विकासका सारा श्रेय हिप्पोक्रेट्स, अरस्तू और गैलेनको जाता है, जिन्होंने लक्षणोंके आधारपर रोग, कारण और औषधिकी व्याख्या की। ईसाके १४०० वर्षपूर्व एशिया और यूरोपके मध्यभागमें हेलेनिक और माइ-सीनियनकी संस्कृतिके विलयके कारण एक विशिष्ट प्रकारकी जातिका उदय हुआ। इसमें एसकुलेपियसका प्रमुख स्थान है, जिन्हें देवताके तुल्य माना गया है और आजतक उनके हाथमें लिये गये सर्पसे लिपटे दंडको विश्वमें चिकित्साके चिह्नकी मान्यता प्राप्त है। चिकित्साशास्त्रके पितामह माने जानेवाले हिप्पोक्रेट्सने प्रामाणिक तौरपर उस समयकी प्रचलित सभी चिकित्सा-पद्धतियोंको एक सूत्रमें पिरोकर आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रकी नींव डाली। यहाँ यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि तबतक भारतमें सुश्रुतद्वारा विकसित की गयी चिकित्सा-पद्धति अपने चरम उत्कर्षपर थी और हिप्पोक्रेट्सके लेखोंमें उसका पूरा प्रभाव है।

ग्रीस चिकित्सा-पद्धतिमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी उपजका सारा श्रेय आयोनियन और इटैलियन-ग्रीक दार्शनिकोंको जाता है, जिनका उद्भव ईसाके पूर्व छठी शताब्दीमें हुआ था। ग्रीक चिकित्सामें भिषक्-कर्मका कार्य प्रमुखतया मन्दिरोंमें रहनेवाले पुरोहितोंद्वारा किया जाता रहा।

रोग, कारण और निदानके त्रिकोण और चिकित्सा-शास्त्रमें लक्षण और कारकका विश्लेषण करनेकी परम्पराके जन्मदाता हिप्पोक्रेट्सने तार्किक दृष्टिसे इनकी अलग व्याख्या की और क्रेते नामक द्वीपमें उत्पन्न हुए इस महापुरुषने समकालीन मान्यताओं और तथ्योंके आधारपर जो चिकित्साकी परम्परा चलायी, वह आजतक यथावत् बनी हुई है, मात्र उसमें समय-समयपर वैज्ञानिक शोधोंके आधारपर थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुए हैं। आजतकके विकसित चिकित्सा-विज्ञानका शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जहाँ हिप्पोक्रेट्सकी दृष्टि न गयी हो। यहाँतक कि रोमकी संस्कृति नष्ट होनेके बाद जब यूरोपमें कला, विज्ञान और संस्कृतिका पुनरुत्थान हुआ, तब हिप्पोक्रेट्सके सिद्धान्तोंको ही पुनः स्थापित किया गया।

अरस्तूके पिता मैसिडोनियाके रहनेवाले चिकित्सक थे। अरस्तू (३८४-३२२ ईसापूर्व)-ने १७ वर्षकी आयुमें एथेन्समें प्लेटोका शिष्यत्व प्राप्त किया। प्लेटोकी मृत्युके बाद वे फिलिपके पुत्र अलेक्जेंडरके शिक्षक बने और तबतक वहाँ रहे, जबतक कि अलेक्जेंडर एशियामें युद्धके लिये नहीं चले गये। अरस्तू वापस एथेन्समें आकर पुनः चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाने लगे और ३२२ ई०पूर्वमें उनकी मृत्यु हो गयी। अरस्तू मूलतः प्रकृति-प्रेमी थे और जीवके विकासक्रमके आधारपर उन्होंने तुलनात्मक शरीररचनाके वैज्ञानिक अध्ययनका विकास किया। चित्रोंके आधारपर उन्होंने भ्रूणविज्ञान और मानवके विकासका वर्णन किया। उनके द्वारा प्रस्तुत अंडेसे जीवका विकसित होना एवं भ्रूणके विकासका क्रम तथा मानव-शरीरसे उसका तुलनात्मक अध्ययन आगे चलकर जन्मजात रोगोंको समझनेके लिये एक प्रमुख प्रायोगिक माध्यम बना। इसी कालमें अरस्तूने मन, शरीर और हृदयके भी भेदको समझाया और मन तथा हृदयके दार्शनिक पक्षको भी जोड़ा। आयुर्वेदशास्त्रमें पञ्चतत्त्वके सिद्धान्तकी तरह उसने पित्त, अग्नि, जल, रक्त और पृथ्वीके संयोगसे मानव-शरीरके रचनाकी परिकल्पना की। भारतमें यह वही काल था जब सुश्रुतकी शल्य-शास्त्रकी चिकित्सा शीर्षपर पहुँच चुकी थी।

रोममें चिकित्सा-शास्त्रका विकास ग्रीक लोगोंके प्रभावके पूर्व स्थानीय आसीरियोंकी मान्यताओं और परम्पराओंपर आधारित था और उसमें तर्क और विज्ञानका नितान्त अभाव था।

ईसाकी पहली शताब्दीके प्रारम्भकालमें सेल्सस नामक वैज्ञानिकने रोगसे विकृत अङ्गोंके अध्ययनकी परम्परा डाली। सेल्सस, एस्क्यूलेपियसकी परम्पराके शिष्य थे और उन्होंने आन्तरिक-बाह्य लक्षणोंपर सर्वाधिक शोध किये। इस कालमें रोमके नाविकोंने समुद्री यात्राएँ प्रारम्भ कर दी थीं, अत: लम्बी यात्रामें होनेवाले रोगोंके कारण निदानका भी समावेश किया गया। शल्यक्रियामें प्रयुक्त यन्त्रोंका और परिमार्जन हुआ तथा उन कई शल्य-क्रियाओंका उल्लेख मिलता है, जो कि सुश्रुतद्वारा प्रतिपादित थीं। ईसाके १७२ वर्षोंके बाद ही शल्य-क्रियाद्वारा प्रसवकी परम्परा डाली गयी और जूलियसका जन्म हुआ, जिसे जूलियस सीजर कहा गया। सीजरके कालमें रोममें चिकित्सा-कलाका पूरा विकास हुआ। अन्य देशोंके विद्वान् चिकित्सकोंको सीजरने बसाया तथा चिकित्सा-विद्यालयोंकी स्थापना की।

प्रथम शताब्दीके प्रारम्भमें पेरागमोंन नामक स्थानमें प्रख्यात यायावर चिकित्सा-वैज्ञानिक गैलनका उदय हुआ। उन्होंने स्मिरनामें शरीर-रचनाकी शिक्षा प्राप्त की और एशियामें दूर-दूरतक यात्राएँ कीं। अन्तत: एलेक्जोन्ड्रियामें आकर यन्त्रोंका विकास किया। गैलेन मूलत: यथार्थ शरीर-रचनाके वैज्ञानिक थे और उन्होंने स्तनपायी जीवों और मनुष्योंके अंदर तुलनात्मक शरीर-रचनाशास्त्र और क्रियाकी व्याख्या की और प्रचलित मान्यताओंको वैज्ञानिक दृष्टि देकर उनका निरूपण किया। इसमें प्रमुख था हृदयकी रचना, मस्तिष्क और यकृत्‌का कार्य एवं श्वसन-क्रिया। गैलेनने मात्र औषधियोंका उद्धरण दिया, वे निदान और रोगकी चिकित्साके बारेमें बहुत कम ही लिख पाये।

मध्यकालमें चिकित्साका विकास (२०० से १५०० ई० तक)

रोमसाम्राज्यके उत्थान और पतनके साथ-साथ आधुनिक चिकित्साकी परम्परा लम्बे समयतक चर्च और पादरियोंके अधिकारमें चली गयी। निराश्रित पीडित लोग भारी संख्यामें आकर चर्चमें पादरियोंके यहाँ आश्रय पाते थे और रोगमुक्तिके लिये विश्राम करते थे। चिकित्सा-क्रिया जाननेवाले संतोंमें प्रमुख थे—सेंट ल्यूक, सेंट कासमस और डामियन।

सातवीं शताब्दीमें इस्लामिक संस्कृतिका उदय हुआ और तत्काल ही पूरे मध्य एशियामें ग्रीक एवं लैटिन-चिकित्सा-पुस्तकोंका अनुवाद अरबी भाषामें होने लगा। इस कालमें तेहरान, परसियाका निवासी रहेजस (९२३ ई०) और फराज-बिन-सलीमकी लिखी हुई किताब अल-हवाई प्रमुख है जो ग्रीक-अरब-चिकित्सा-पद्धतिका विश्वकोष मानी जाती है। एविसेना और आइसक ज्यूडियसने इस मिली-जुली संस्कृतिमें वैज्ञानिक चिकित्सा-शिक्षाको पुस्तकके रूपमें लिखकर प्रसारित किया।

आइबोरीयन उपमहाद्वीपमें थोड़े समय बाद ही इस्लाम-धर्मका प्रभाव समाप्त होने लगा और आठवीं शताब्दीके बाद ही लैटिनकी उपभाषा स्पेनिश विकसित हुई। इन अनुवादों और पुस्तकोंका प्रभाव यूरोपमें तत्कालीन १२वीं-१३वीं शताब्दीपर पड़ा। समूची चिकित्सा-पद्धतिका अध्ययन मात्र पुस्तकोंपर आधारित रहा और प्रायोगिक शिक्षाकी कोई भी व्यवस्था न बन पायी। इटलीके बोलोनामें ११५६ ई०में विश्वविद्यालय-स्तरपर चिकित्सा-शिक्षामें वनस्पतिशास्त्र और भौतिकशास्त्रका समावेश नहीं हुआ था। फिर भी शरीर-रचना और शरीर-क्रियाके अध्ययनके लिये शवच्छेदनकी प्रक्रिया आवश्यक थी। इस प्रकार बोलोनामें शल्य-शिक्षा व्यवस्थित ढंगसे प्रारम्भ हुई। इस कालमें सैलीसीटोंके विलियम, सर्वियाके विशप थिओजोरिक और फ्लोरेसके थेडियस थे, जिन्होंने शल्यकी तकनीकोंका विकास किया, मवादके बाहर निकालनेके बारेमें लिखा। १३वीं शताब्दीके प्रारम्भमें बोलोनामें फ्रांससे हेनरी-डी-मॉडे विक्लेका आगमन हुआ, जिसने बोलोनाके चिकित्सा-पुस्तकोंका अनुवाद फ्रेंचभाषामें किया, इस प्रकार फ्रांसीसी लोग रोमसे शल्य-चिकित्साको लानेवाले पहले लोग हुए।

१४वीं शताब्दीसे चिकित्सा-शास्त्रमें वैज्ञानिक मूल्योंको पुन:स्थापित करनेका सारा श्रेय उन वैज्ञानिकोंको जाता है, जो वैज्ञानिकके साथ-साथ चित्रकार, साहित्यकार एवं विचारक थे। इस परम्परामें सबसे पहले लियोनाडौन्दाविर्चीने गैलेनकी मान्यताओंको पुन: परखा और भिन्न-भिन्न जीवोंपर इसके प्रयोग किये। उन्होंने फेफड़े और हृदयकी रक्तशिराओं और धमनियोंका नामकरण किया। चित्रोंको

प्रदर्शित करके उन्होंने इस क्रियाको समझाया और हृदयके कपाटोंकी रचनाका रहस्य खोला। 'फेफड़े और हृदय मिलकर मस्तिष्कमें हवा भरते हैं' गैलेनने इस मान्यताको समाप्त किया और हृदयसे अलग मस्तिष्कको जानेवाली रक्तवाहिनियोंको चित्रद्वारा प्रदर्शित किया। ब्रूसल्सके वेसेलियस (१५१४—१५६४ ई०)-ने चिकित्सा और कलामें सृजनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए मांसपेशियोंकी क्रिया, मस्तिष्कके अंदरकी बनावट, तन्त्रिकाओं और रक्तवाहिनियोंके अलग-अलग भागोंको चित्रद्वारा बनाकर समझानेका प्रयास किया। अपने अथक परिश्रम और प्रतिभाके बलपर बेसेलियस पादुआमें शरीर-रचना और शल्य-क्रियाके प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसी कालमें यूरोपमें प्लास्टिक सर्जरी विकसित हुई, जो कि हजार वर्षपूर्व भारतमें पूर्ण विकसित हो चुकी थी।

फिलिप बाम्बस्ट वाल हैनहीम जिनका जन्म स्विट्जरलैण्डमें हुआ (१४९३—१५४१ ई०), वे ही आगे चलकर थियोफ्रास्टस पैरासेलसके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे बासल (स्विट्जरलैण्ड)-में चिकित्साशास्त्रके प्रोफेसर नियुक्त हुए। पैरासेलसने ही सर्वप्रथम (सल्फर) गंधक और पारेका प्रयोग औषधिके रूपमें किया। इस कालमें ग्रीकसाहित्यका प्रचुर मात्रामें लैटिनमें अनुवाद हुआ और १६वीं सदीके प्रारम्भ (१५१८ ई०)-में थॉमस लिनाकरेद्वारा रायल कॉलेज ऑफ फिजिशियनकी स्थापना लन्दनमें की गयी।

रोगोंके संक्रमण और संक्रामक रोगोंका सर्वप्रथम विचार इसी कालमें फ्रैकास्टोरोद्वारा प्रतिपादित किया गया। १५४६ ई०में फ्रैकास्टोरोने संक्रामक रोग और संक्रमणके बारेमें तार्किक पक्ष प्रस्तुत किये और सूक्ष्म जीवोंकी सम्भावनाओंकी व्याख्या की, जो एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिके शरीरमें स्पर्श या वायुद्वारा फैल सकते हैं। फ्रेंच वैज्ञानिक गिलाम-डी-बैलो (१५३८—१६१६ ई०) द्वारा हिप्पोक्रेटिक विचारधारावाले संक्रामक रोगोंकी संक्रामकताकी चेतनाका इसी कालमें उदय हुआ और खुजलीवाले कीड़ोंद्वारा टाइफस रोगके संक्रमणके बारेमें भी तथ्य इकट्ठे किये गये। डी-बैलोंने इसी कालमें काली खाँसी, गठिया एवं जोड़ोंके दर्दका अन्तर बताया, जो कि इसके पूर्व हिप्पोक्रेट्सके द्वारा स्थापित किया जा चुका था। रोगके लक्षणोंके आधारपर उसके अतिप्रभावकी वैज्ञानिक विवेचना सर्वप्रथम लन्दनमें थॉमस साइडैन हैम (१६२४—१६८९ ई०)-ने की। अपने परीक्षण और विश्लेषणकी कलाके कारण ही उन्हें उस कालमें 'अंग्रेजोंका हिप्पोक्रेट्स' कहा गया।

भौतिक और रासायनिक विज्ञानके आधारपर रोगोंके समझनेकी प्रक्रियामें जियोरडानो, ब्रूनो, कूपरनिकस, गिलबर्ट केपलर और गैलिलियो प्रमुख हैं, जिन्होंने १७वीं शताब्दीमें जीवविज्ञान और भौतिकशास्त्रको एक सूत्रमें पिरोकर एक सार्वभौमिक शोधकी परम्पराका सूत्रपात किया। गैलिलियोके प्रकाश और लेन्सके समायोजनकी कलाने माइक्रोस्कोपके अन्वेषणकी नींव डाली। १६३६ ई०में सैनटोहियोंने रक्तवाहिनियोंको नाडीके रूपमें परिभाषित करके उसे रेखाङ्कित करनेके यन्त्रका आविष्कार किया। गैलिलियोद्वारा अध्ययन किये गये पारेके गुणको सैक्टोरियसने नैदानकीय थर्मामीटरमें बदलकर तापक्रमको नापनेका कार्य भी प्रारम्भ किया। श्वसन और इसके अन्तर्गत होनेवाले ऊर्जाके क्षयका भी अध्ययन सैक्टोरियसने अपने-आपको एक डिब्बेमें बंद करके ऊर्जाके क्षरण और उत्पन्न होनेकी विधिका अध्ययन किया। इससे आधुनिक चयापचय (मेटाबालिज्म)-की नींव पड़ी।

१७वीं शताब्दीमें ही अंग्रेज वैज्ञानिक विलियम हार्वे (१५७८—१६५७ ई०)-ने आधुनिक हृदयपर व्याख्या की। माइक्रोस्कोपका प्रयोग भ्रूणविज्ञान और जीवनके विकासमें भी किया गया तथा रक्तमें श्वेत एवं लाल रुधिरकणिकाओंके बारेमें भी ल्यूवेन हॉकने माइक्रोस्कोपके आधारपर चित्र बनाकर दर्शाया। प्रत्येक अङ्गोंके सूक्ष्म विवेचनसे वैज्ञानिकोंकी ढेर सारी भ्रान्तियाँ जाती रहीं। १७वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें अंग्रेज वैज्ञानिक राबर्ट ब्वायल (१६२६—१६९१ ई०)-ने वायुका जीवके श्वसनकी आवश्यकताके रूपमें आविष्कार किया और जॉन मेयोके माध्यमसे श्वसनमें ऑक्सीजनकी सम्भावनाओंपर विचार किया। जासेफ ब्लैक (१७२८—१७९९ ई०)-ने आगे चलकर जल, पानी और ऑक्सीजनके वर्तमान रासायनिक सूत्रोंकी व्याख्या की और प्रीस्टलेने इसी बीच (१७३३—१८०४ ई०)-में वायुकी प्रकृतिको

समझकर हाइड्रोजन गैसोंका भी आविष्कार किया।

१७वीं शताब्दीके मध्यमें स्टीफेन होल्स (१६७७—१७६१ ई०) जब रक्तकी श्यामताका अध्ययन करते समय घोड़ेके गलेकी रक्तवाहिनीका अध्ययन कर रहे थे, तब रक्तके प्रवाहसे चमत्कृत होकर उन्होंने रक्तचाप नापनेका यन्त्र बनाया, जो आगे चलकर पारेके तुलनात्मक रूपमें मापा जाने लगा। बोलोनामें गुली गैलवानी (१७३६—१७९८ ई०)-ने मेंढककी तन्त्रिकामें प्रवाहित होनेवाली विद्युत्-तरङ्गोंका पता लगाया और तन्त्रिकाओंको उद्दीप्त करके मांसपेशियोंमें गति स्थापित करनेकी विधिका आविष्कार किया।

फ्रेंच रसायनज्ञ लैवाइजर (१७४३—१७९४ ई०) इस समय गैसोंके प्रभावका दहनकी प्रक्रियाके लिये प्रयोग कर रहे थे और प्रीस्टले तथा लैवाइजरने संयुक्तरूपमें श्वसनक्रियामें प्रयुक्त होनेवाली विशिष्ट गैस ऑक्सीजनका नामकरण किया। इस कालमें शवच्छेदनकी परम्पराकी पुनःस्थापना हुई और रोग एवं उससे होनेवाली विकृतियोंका भलीभाँति अध्ययन किया गया। मारगैगनी (१६८२—१७७१ ई०)-ने सूक्ष्म यन्त्रोंके माध्यमसे विकृति विज्ञानकी आधारशिला रखी। नाडीको देखनेकी कला, अङ्गोंको स्पर्श करके सम्भावित विकृत अङ्गोंकी पहचान, हृदय एवं छातीके रोगोंमें ठोक करके पानीके इकट्ठे होनेकी सम्भावना एवं श्वास तथा हृदयकी ध्वनियोंको सुनकर रोगको पहचाननेकी कलाका विकास इसी कालमें हुआ। इसी कालमें लैनेक (१८१९ई०)-ने कागजको लपेटकर ध्वनिको केन्द्रित करके श्वसन और हृदयकी धड़कनको सुनकर रोगके निदानकी परम्परा डाली और बादमें चलकर इसका रूप लकड़ी तथा रबरकी ट्यूबने ले लिया। श्रवणकी विधिमें प्रयोग होनेवाले रोगोंके आधारपर नामकरण लैनेकने ही किये हैं। १७ वीं शताब्दीके मध्यमें फ्रांसमें चिकित्सकोंने प्रसव-क्रियामें योगदान करना प्रारम्भ किया।

विलियम स्मेलीने लन्दनमें प्रसव-सम्बन्धी यन्त्रोंका इस प्रकार परिमार्जन किया कि माता एवं शिशु दोनोंकी रक्षा की जा सके। स्मेलीके शिष्य विलियम हंटर (१७१८—८३ ई०) और उनके भाई जॉन हंटरने शरीर-रचनाके साथ-साथ प्रसूति-विज्ञानमें उल्लेखनीय कार्य किया। जॉन हंटरने शरीर-रचनाके शिक्षा-कालमें शल्य-क्रिया भी की और विकृत अङ्गोंको संकलित करके विशाल संग्रहालयकी भी स्थापना की। यह आज भी लन्दनके रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन्सके यहाँ सुरक्षित है। अपने कौशल, पुरुषार्थ और ज्ञानकी क्षमतापर उन्हें इतना गर्व था कि उन्होंने अपनी बीमारीके समय एक बार मुस्कराकर कहा कि 'अब आप आसानीसे दूसरा जॉन हंटर नहीं पायेंगे।' इसी कालमें ब्रिटिश सर्जन परसीवल पॉट (१७१४—८८ई०)-का अभ्युदय हुआ, जिन्होंने हड्डीके टूटनेकी चिकित्सा, रीढ़की हड्डीकी टी०बी० एवं हार्निया तथा कैंसर-रोगकी शल्य-चिकित्साका विवरण दिया।

इस कालमें पूरे यूरोपमें औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी। संक्रामक रोगोंको नियन्त्रित करनेके नियम बने। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सूक्ष्मदर्शी यन्त्रोंकी उपलब्धताने सूक्ष्म जीवों एवं बैक्टीरिया तथा एक कोशीय जीव (प्रोटोजोआ)-को स्थापित कर लिया। पास्चर (१८२२—१८९५ ई०)-ने रोग एवं वनस्पतिविज्ञानसे सूक्ष्म जीवोंका सम्बन्ध स्थापित किया। इसी कालमें फ्रेंच वैज्ञानिक क्लाडे बर्नाड (१८१३—१८७८ ई०)-ने जीवकी कोशिकाओंमें शर्कराकी उपयोगिता, लीवरमें शर्कराको संग्रहीत करनेकी क्रिया और उसे पुनः शर्करामें बदलनेकी क्रियाको खोज निकाला। १८५७ ई०में अन्तः-वातावरण और बाह्य वातावरणका सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जो आजतक अकाट्य है। जर्मन वैज्ञानिक कार्ल फ्रिडरिख विल्हेल्म लुडविग (१८१६—१८९५ ई०)-ने लारग्रन्थियोंके महत्त्वको बताया तथा पाचन-क्रियामें इनका योगदान निर्धारित किया। रूसके वैज्ञानिक पैवलॉव (१८४८—१९३६ ई०)-ने पेटके स्रावका सम्बन्ध दृष्टि, घ्राण एवं श्रवणसे स्थापित किया, जो बादमें चलकर नोबल पुरस्कारसे सम्मानित हुए।

इस समय यद्यपि शल्य-क्रियाकी महत्ता चिकित्साक्षेत्रमें पर्याप्त फैल चुकी थी, परंतु अधिकांशतः शल्य-क्रिया पीडा एवं चीत्कारमें होती थी। निःसंज्ञकरणका ज्ञान उन दिनों केवल अङ्गोंमें रक्तप्रवाहको रोकनेतक ही सीमित था, जो कि कुछ ही अङ्गोंमें प्रयुक्त होता था। सम्मोहन क्रियाद्वारा शल्य-कर्म सर्वप्रथम भारतमें जेम्स एस्डेलने किया, जो (१८०८-१८५९ ई० तक) भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके

चिकित्सकके रूपमें रहे। सर हम्फ्री डेवीने नाइट्रस ऑक्साइडको सूँघनेके बाद यह विचार बनाया कि यह हँसनेवाली गैस शल्य-क्रियामें दर्दको भुला सकती है। इसका प्रचलन ब्रिटेन और अमेरिकामें सल्फ्यूरिक ईथरके साथ होने लगा था, परंतु इसका सर्वप्रथम प्रयोग वेल्स (१८१५-१८४८ ई०)-ने दाँतको उखाड़नेके लिये किया। वेल्सने इसका सार्वजनिक प्रदर्शन १८४५ ई० में अमेरिकाके मासाचुसेटस चिकित्सालयमें किया, जहाँ दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति इस प्रक्रियामें चीख पड़ा। वेल्सके ही एक शिष्य मार्टनने १८४६ ई० में ईथरके प्रयोगसे इस सफलताको प्राप्त कर लिया। इसके उपरान्त लिस्टरमें (१७९४-१८७० ई०) प्रसवमें ईथरका प्रयोग हुआ। सिम्पसनने ही क्लोरोफार्मका उपयोग १८४७ ई० में किया। यद्यपि इसकी खोज १८३१ ई० में पेरिसमें इयूजीन सुवेरियन, अमेरिकामें सैमुएल गूथरी और लिबिग १९३४ ई० में कर चुके थे। अबतक पम्पके माध्यमसे क्लोरोफार्म, ईथर और नाइट्रस ऑक्साइडके मिश्रण और अलग-अलग प्रयोगकी विधिके यन्त्रोंका विकास हो चुका था और दर्दनाशक शल्य-क्रियाके कारण शल्य-क्रियाका विकास बड़े ही त्वराके साथ हुआ। १८८५ ई० में जेम्स कार्निग स्टुअर्ड हाल्स्टेडने कोकेनको सूईके द्वारा नसोंमें लगाकर संज्ञा-शून्यताको पैदा किया और १८७४ ई० में क्लोरल हाइड्रेटको नसोंमें लगाकर सूईद्वारा निश्चेतना पैदा करनेकी विधि निकाली गयी, जो कि १९०३ ई० के बाद बिचुरटेसकी खोजके बाद और प्रभावी हो गयी। लॉर्ड लिस्टर (१८२७-१९१२ ई०)-ने यद्यपि अपने जीवनका प्रारम्भ एक शल्य-चिकित्सकके रूपमें किया, तथापि उनकी प्रसिद्धि एण्टीसेप्टिककी खोजके कारण हुई।

लिस्टरने अबतक माइक्रोस्कोपसे घाव बनानेवाले विषाणुओंका अध्ययन कर लिया था। उन्होंने विषाणुओंसे मुक्ति पानेके लिये कार्बोलिक एसिडसे घाव धोनेकी परम्परा शुरू की तथा चिकित्साके पूर्व यन्त्रोंको भी इससे धोया जाने लगा। कार्बोलिक एसिडसे अङ्गोंमें कई बार घाव हो जाते थे, अत: हाथोंमें रबड़के दस्ताने पहननेकी भी कला इसी कालमें प्रचलित हुई। लिस्टरके पूर्व ही सोमेविलिस (१८१८-१८६५ ई०) कार्बोलिक एसिडका प्रयोग कर चुके थे, परंतु दुर्भाग्यवश उनके कार्यको बहुत ख्याति न मिल सकी और उनकी मृत्यु विक्षिप्त-अवस्थामें हंगरीके पागलखानेमें हो गयी।

एटिसोप्सिस, निश्चेतनाकी कला और विषाणुओं (बैक्टीरिया और वायरस)-के ज्ञानने शल्य-चिकित्साको सहज बना दिया और १९वीं शताब्दीके उत्तरार्ध कालमें प्रत्येक चिकित्साके लिये शल्यके प्रयोग किये गये। इसमें अमेरिकामें केन्टुकी नामक स्थानपर सफलतापूर्वक चिकित्सा करनेवाले मैकडावैल (१७७१-१८३० ई०) हुए। जेम्स सिम्स (१८१३-१८८३ ई०) जिन्होंने न्यूयार्कमें स्त्रियोंके मूत्र-जननेन्द्रिय मार्गकी कठिन शल्य-चिकित्सा की। लन्दनमें सार थॉमस स्पेन्सर हुए। स्पेन्सरने शल्य-चिकित्साके साथ-साथ शल्य-यन्त्रोंका भी विकास किया। कैंसररोगमें शल्य-चिकित्सा ही उस समय सबसे उपयोगी चिकित्सा थी, क्योंकि इस समय अन्य किसी भी कैंसरकी औषधिका विकास नहीं हुआ था। इसमें सर्वाधिक ख्याति क्रिश्चियन एलबर्ट लियोडन बिलरॉय (१८२९-१८९४ ई०)-की हुई, जिन्होंने सभी अङ्गोंके कैंसरके लिये शल्य-चिकित्साकी तकनीकका विकास किया। सर विलियम मैक्सीवनने (१८२४-१९२४ ई०) हड्डी एवं अन्य अङ्गोंके प्रत्यारोपणकी शल्य-चिकित्सा प्रारम्भ की और तन्त्रिका तथा मस्तिष्ककी शल्य-क्रियाका अलगसे विकास किया। वे लिस्टरके शिष्य थे और ग्लासगोमें लिस्टरके बाद उसी पदपर ३५ वर्षोंतक अध्यापक रहे। उन्होंने मस्तिष्कमें शल्य-क्रिया करके जमे हुए रक्तको निकालनेकी तकनीकका विकास किया। रीढ़की हड्डीमें स्थित ट्यूमर एवं मस्तिष्क और सुषुम्णा नाडीके मवादको शल्य-क्रियासे भी निकालनेकी क्रिया उन्हींके द्वारा प्रारम्भ की गयी।

नैदानिक चिकित्साका विकास और एक्स-रे

रॉन्टजनने १८९५ ई० में वैक्यूम ट्यूब्ससे निकली अज्ञात किरणोंको एक्स किरणोंका नाम दिया और निदानकी एक विशिष्ट दिशा दी। ६ जनवरी १९१९ ई० को लन्दनमें विद्युत् विभागके एक इंजीनियरने इसका उपयोग टूटी हड्डीका पता लगानेके लिये किया और १८९७ ई० में डब्ल्यू०बी० कैननने बेरियम घोलके ऊपर इसकी

अपारदर्शिताकी पुष्टि की, जिसके कारण आँतके रोगोंमें इसके उपयोगकी पुष्टि हुई।

मैडम क्यूरी और उनके पति पियरे क्यूरीने संयुक्त रेडियमकी रेडियोधर्मिताके आधारपर कैंसरकी चिकित्सा शुरू की और शीघ्र ही रेडियोधर्मी तत्त्वोंकी गणनाके आधारपर अन्य रोगोंके निदान और उपचारपर अनेक शोध-पत्र प्रकाशित हुए। २०वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें जीव-वैज्ञानिकोंद्वारा जीवाणुओंका विशद अध्ययन, रसायनज्ञोंद्वारा औषधियोंका निर्माण एवं आसवनकी विधि तथा प्रतिरोधक क्षमताके आधारपर रोग-निरोधक विधियोंके अध्ययनने आधुनिक चिकित्साको बहु-आयामी बना दिया। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धमें सैनिकोंकी रक्षाके लिये शासनकी ओरसे चिकित्सकीय शोधकार्योंको अधिक महत्त्व दिया गया, जिसमें ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी और पूर्व यूरोपीय देशोंकी प्रमुखता रही। जीवाणुओंको शरीरमें नष्ट करनेकी नयी परम्परा भी इन्हीं मौलिक वैज्ञानिकोंसे शुरू हुई और अलेक्जेण्डर फ्लेमिंगने १९२८ ई० में फफूँदके जीवाणुओंको नष्ट करनेकी विधिका विकास किया तथा पेनिसिलीनका विकास हुआ, जो कि फफूँदद्वारा विकसित की गयी। १९३५ ई०तक सल्कोनामाइडका विकास हो गया। १९४०-४१ ई०में ऑक्सफोर्डके चेन और फ्लोरेने पेनिसिलीनके लिये शुद्धीकरणकी व्यवस्था की। १९५२ ई०तक आते-आते वाक्समैनने स्ट्रेपटोमाइसीनको स्थापित कर दिया।

इस तरह आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान निरन्तर देश-काल और समयके सापेक्ष प्रयोगोंपर हर बार परखा जाता रहा और तब कहीं जाकर '**सर्वे सन्तु निरामयाः**' के उद्देश्यकी पूर्ति कर पाया। यह सारे देशोंकी धरोहर है, समूची मानवताका इसमें सम्यक् योगदान है और सबने इसको अपने-अपने ज्ञानसे सींचकर वैश्वीकरणके इस शीर्षपर लाकर खड़ा किया है।

एलोपैथी चिकित्साके मूल सिद्धान्त—गुण-दोष

[ऐतिहासिक दृष्टि]

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

चलती को गाड़ी कहें, जले दूध को खोया।
रंगी को नारंगी कहें, देख कबीरा रोया॥

इस संसारका यही चलन है, जो नाम दे दिया, वही चल गया। 'एटम' का अर्थ होता है 'अखण्ड' और आज खण्ड-खण्ड हो गये परमाणुको 'एटम' ही कहते हैं। हिंदी देशके सभी वासियोंको हिंदू न कहकर, जो मुसलमान, सिख या ईसाई नहीं हैं, वे सब हिंदू कहलाते हैं और सनातन धर्मको बड़े-बड़े विद्वान् 'हिंदू-धर्म' की संज्ञा देते हैं। राजधर्म, व्यक्तिधर्म आदि होते हुए भी हमारा देश 'धर्मनिरपेक्ष' है। कुछ ऐसी ही स्थिति एलोपैथीकी है। इसका अर्थ है **विपरीत-चिकित्सा**। एलोपैथी कभी कोई चिकित्साशास्त्र रही हो, ऐसा आपको ढूँढ़े नहीं मिलेगा। फिर भी आजकी 'आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति' को हमारे देशमें सर्वत्र (सरकारद्वारा भी) 'एलोपैथी' कहा जाता है।

इस नामकी कथा समझनेके लिये दो सौ वर्ष पीछे जाना होगा। सन् १७५५ ई० में जर्मनीमें सैमुअल फ्रेडरिख क्रिस्टियान हैनीमैनका जन्म हुआ। वह लीपजिग विश्वविद्यालयमें अध्ययन करके डॉक्टर बन गया। वियनामें कार्य करनेके बाद वह पुनः लीपजिग आया और कलेनकी 'मैटीरिया मेडिका' का अनुवाद करने लगा। वह 'कुनैन' के बारेमें पढ़ रहा था, तभी उसे एक नयी दृष्टि मिली। कुनैन खानेसे जाड़ा देकर बुखार आता है और यही जड़ैया बुखार अच्छा भी करती है। उसने सिद्धान्त स्थापित किया कि 'बड़ी मात्रामें रोग-जैसे लक्षण पैदा करनेवाली औषधि, अल्पमात्रामें उस रोगको दूर करती है।' सन् १८११ ई० में उसने 'आर्गेनन' लिखा। उसने अपनी पद्धतिका नाम दिया '**होमियोपैथी**'। इस पद्धतिमें उसने यह भी स्थापित किया कि 'औषधिकी मात्रा घोलमें ज्यों-ज्यों कम होती है, त्यों-

त्यों उसकी रोगहारी शक्ति बढ़ती जाती है।' उसने कहा कि तीन प्रकारके रोग होते हैं—सोरा, सिफलिस, साईकोसिस। हैनीमैनने अपनी पद्धतिसे अलग जो पद्धतियाँ थीं, उन्हें '**एलोपैथी**' कहा। हैनीमैनने दो उपकार किये—एक तो उसने औषधि-विज्ञानके गहन अध्ययनपर बल दिया, अत: उसे '**फादर ऑफ माडर्न फार्मोकोलॉजी**' का विरुद प्राप्त है, दूसरे उस युगके चिकित्सक वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, कपिंग, दहनके साथ ही बड़ी मात्रामें और कई औषधियाँ मिलाकर काढ़ा तथा गोलियाँ खिलाते थे। जो रोगी प्रकृतिकी सहायतासे अच्छे भी हो सकते थे, वे इस बर्बर-चिकित्साके कारण मर जाते थे। सूक्ष्म मात्रामें औषधि देकर हैनीमैनने इनकी रक्षा की। तत्कालीन '**एलोपैथी**' को समझनेके लिये हमें विश्व आयुर्विज्ञानका संक्षिप्त सिंहावलोकन करना होगा।

आदिकालमें सर्वत्र मानव मानता था कि रोग देव-प्रकोप, भूत-प्रेत, जादू आदिसे होते हैं और वैसी ही चिकित्सा भी करते रहे हैं। धर्मने पापको रोगका मूल कारण बताया, अत: व्रत, पूजा, प्रायश्चित्त चिकित्साका चलन हुआ। ग्रहोंकी दशा दूर की गयी। जंतर-मंतर, ताबीज, टोना, टोटका और जादुई इलाज उपलब्ध हुए। सारे विश्वमें इनमें एकरूपता है। हाँ, ये लोग तर्कसंगत ढंगसे घावकी मरहम-पट्टी करते थे—टूटी हड्डी जोड़ते थे।

आगे सभ्यताओंका जन्म हुआ—भारत, चीन, मेसोपोटेमिया (वर्तमान ईराक, प्राचीन सुमेर, बाबुल, असुर), मिस्र, यूनान और अमेरिकाके देश। बाबुलसे कीलाक्षर लिपिमें लिखी ईंटें मिली हैं, मिस्रसे पेपिरस (भोजपत्र पोथियाँ) मिले हैं। ये सब ६००० वर्षकी कथाएँ हैं। चीनने अपना दर्शन तैयार किया था और उस आधारपर चिकित्सा-पद्धति भी चलायी थी, साथ ही उसके पास समृद्ध औषधि-भण्डार भी था। भारतने वैदिक युगमें ही उपचारके अनेक तरीके ढूँढ़े—जल, अग्नि, मन्त्र और औषधियाँ। आगे सांख्यदर्शनके साथ त्रिदोष-सिद्धान्त स्थापित हुआ। सप्त मूलधातु, पचीस तत्त्व, मर्मस्थान ढूँढ़े गये, रोग पहिचाने गये, उनके निदानमें पाँचों इन्द्रियोंके उपयोगका उल्लेख हुआ। चरक और सुश्रुत-जैसे महान् चिकित्सकोंने समृद्ध चिकित्सा-शास्त्र दिये। सुश्रुत तो विश्वके पहले प्लास्टिक सर्जन माने गये। आहारसे उपचार, जादुई और धार्मिक उपचार, ज्योतिष और प्रेतबाधाके उपचार, पञ्चकर्म उपलब्ध हुए। आयुर्वेदके पास शानदार औषधि-भण्डार था, जिसमें वनस्पति, प्राणिज और खनिज औषधियाँ थीं। स्वच्छतापर भी विशेष बल था। मुख-हस्त-प्रच्छालन, मालिश, स्नानसे शरीरको स्वस्थ रखना और आहारमें विविधताका उपयोग। शल्य-क्रियाके उत्तम औजार उपलब्ध थे। सच पूछिये तो आयुर्वेद कोई चिकित्सा-पद्धति-मात्र नहीं था, प्रत्युत समग्र जीवन जीनेका तरीका था, स्वस्थवृत्त था।

यूनानको ज्ञानोदयका देश माना जाता था, जो अब गलत सिद्ध हो चुका है। फिर भी ईसापूर्व यूनानमें महान् विचारक और विद्वान् पैदा हुए, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ईसासे १२०० वर्षपूर्व एस्क्लीपियसको चमत्कारी उपचारका यश मिला था और रोगी मन्दिरमें शयन करके रोगमुक्त होते थे। उन दिनों आहार, स्नान, व्यायामका चिकित्सामें समावेश था। जिन दिनों भारतमें महावीर और बुद्धका आगमन हुआ, उस युगमें—ईसापूर्व ४६०में हिपोक्रेटिजका जन्म हुआ, जिसे आधुनिक चिकित्साका जन्मदाता कहते हैं। इसने निदान, इलाज और फलश्रुतिकी बात कही, रोगको सहज प्राकृतिक कारणोंसे होना बताया और कहा हर रोगका अपना स्थान और स्वभाव होता है। रुग्णतापर आहार-विहार-वृत्तिका प्रभाव होता है। उसने प्राकृतिक चिकित्सापर बल दिया। ठीकसे रोगीका विवरण लिखनेकी प्रथा चलायी और उसकी लिखी शपथ आज भी चिकित्सा-विज्ञानके स्नातक लेते हैं।

इससे रोचक बात यह है कि यूनानमें चिकित्साशास्त्रपर भारतका प्रबल प्रभाव पड़ा, साथ ही उसने बाबुल, चीन और मिस्रसे भी बहुत-सा ज्ञान लिया। पाइथागोरसने अङ्कशास्त्र दिया तो इम्पोडिकिलीजने त्रिदोषको चार दोष बना दिया—कफ, पित्त, वायुके स्थानपर अग्नि, वायु, पीला पित्त और काला पित्त (अवसाद) बना दिया।

यूनानमें तीन बड़े दार्शनिक वैज्ञानिक हुए हैं—

सुकरात, अफलातून (प्लेटो) और अरस्तू। अरस्तू सिकंदरका गुरु था और सिकंदर जब भारत आया तो यहाँसे बहुत-से विद्वान् ले गया। आज भी इन विद्वानोंके दर्शनका अध्ययन होता है। यह नहीं कि विरोधी नहीं थे, एसक्लीपियाड्सने कहा—प्रकृति कोई उपचार नहीं करती, चिकित्सकको ही त्वरासे, सुरक्षित ढंगसे और ठीकसे उपचार करना चाहिये। उसने दोष-सिद्धान्त (सांख्य)-को नकार दिया और कण-सिद्धान्त (कणाद) चलाया। उसके अनुसार ठोस कण स्पन्दन करते हैं, इनका संकोच और विस्फार रोग करता है, उपचार माने इनका संतुलन। उसका इलाज था मालिश, पुल्टिस, टॉनिक, शुद्ध वायु, उत्तम आहार और मानसिकतापर विशेष ध्यान।

ईसाके युगमें यूनानका प्रभाव अस्त हुआ और ज्ञानका केन्द्र रोम बना। यूनानी डॉक्टर रोममें जमा हुए, पर सैनिक जगत्में उनकी चली नहीं। सन् १६१ ई० में गालेन नामक चिकित्सक पैदा हुआ। वह अपनेको हिपोक्रेटीजका अनुयायी बताता था, पर उसके सिद्धान्तोंका (जिनमें अनेक भ्रमपूर्ण थे) रुतबा पंद्रहवीं सदीतक छाया रहा। तिसपरसे चर्चने उसके सिद्धान्तोंको धर्मसे जोड़ दिया। गालेनके विरुद्ध बोलना माने प्राण देना। सर्वीटसने कहा—रक्त फेफड़ेमें जाकर शुद्ध होता है तो उसे जिंदा जला दिया गया। शरीर-रचनाके महान् आचार्य वेजेलियसको देश छोड़कर भागना पड़ा। सैनिक-शासित रोममें व्यायामशालाएँ, स्नानागार, स्वच्छताका बोलबाला था। चर्चने अपने धार्मिक उन्मादके बीच अच्छी बात यह की कि उसने यूनानी ग्रन्थोंका संग्रह किया, उनका अनुवाद कराया, नहीं तो वही दशा होती कि यवनोंने सिकंदरियामें महान् ग्रन्थ-भरे पुस्तकालयको जलाकर भस्म कर दिया था।

फिर योरपपर इस्लामी देशोंका कब्जा हुआ। इनकी चिकित्सामें अच्छी पैठ थी। फारसके रजीने 'किताब अलहावी' लिखी, जिसमें समग्र चिकित्सा-ज्ञान था। फिर अबूसिनाने '**अलकानून**' लिखी, जो तिब्बीका पाठ्यग्रन्थ था और सारे योरपके चिकित्सा-विद्यालयोंमें पढ़ाया जाता था। इसीके चिकित्सकोंको 'हकीम' कहते हैं। अरब देशने रसायन, कीमियाईपर बहुत काम किया और रसायनकी बहुत-सी तरकीबें—आसवन, सबलिमेशन आदि ईजाद की। बारहवीं सदीमें स्पेनके कार्डोवामें एक यहूदी चिकित्सक हुआ, जो बादमें काहिरा चला गया, उसका '**कोड ऑफ मैमुद्दीन**' बहुत प्रसिद्ध हुआ।

चौदहवीं-पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीको रेनेसां (पुनर्जागरण)-का युग कहते हैं। सोलहवीं सदीमें लियोनार्दो द विंची, विजेलियस (१५४३ ई०) और अम्ब्रोसियो पारेने पुरानी मान्यताएँ तोड़ीं। इसी युगमें एक सिद्ध पारासेल्सस हुआ, जिसने देशी भाषामें चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना शुरू किया और विद्यालयके प्राङ्गणमें 'गालेन' और 'कानून'-जैसे ग्रन्थ जला डाले। सत्रहवीं सदीमें विलियम हार्वेने रक्त-संचार सिद्धकर हमेशाके लिये गालेनका साम्राज्य ध्वंस कर दिया। अब बात थी 'देखो, खोज करो', केवल '**बाबावाक्यं प्रमाणम्**' मत मानो। अनेक विद्वान् वाद लेकर आये, रिचर्ड वाइजमैनने कहा—चार्ल्स द्वितीय (राजा)-के स्पर्शसे रोगी अच्छे हो जाते हैं, थामस ब्राउनने कहा—रोग चुड़ैलें पैदा करती हैं, रेनेडेकार्टेसने मानव-शरीरको मशीन-जैसा माना। ल्युवेनहाकने माइक्रोस्कोपका आविष्कार किया, लेनेकने स्टेथेस्कोप बनाया तो आवबर्गरने पर्कशन (ठोक-बजाकर) रोग-निदानकी तरकीबें निकालीं। मेस्मर प्राणीमें चुम्बक-शक्ति देखते थे तो गॉल कपालकी बनावटसे रोग पहिचानते थे। 'बहुतै जोगी मठ उजाड़' की स्थिति थी। जैसा पहले कहा—पञ्चकर्म और विशेष रूपसे खून निकालनेके कारण अपार नुकसान हो रहा था। संखिया, अंजन-जैसे विष प्रयुक्त होते थे। जेनरने शीतलाका टीका निकाल दिया था और नाविकोंमें स्कर्वी नामक रोग नीबू खानेसे ठीक हो जाता है, ये लिंडकी खोज थी।

उन्नीसवीं सदी—इधर प्रयोगशालामें प्रयोग-प्रक्रिया ही चल रही थी, मोरगैग्नीने रोगोंको अङ्गोंके विकारके रूपमें देखा, आगे इन्हें तन्तु-विकारके रूपमें देखा गया। फिर फिर्खोने कहा—रोगका मूल 'कोष' का विकार है। उधर पास्चरने जीवाणुकी खोज की तो कॉखने जर्मथ्योरी स्थापित की। प्रयोगका महत्त्व बढ़ा। एक्स-रे और रेडियम आये। अनेक रोगोंका रहस्य खुला।

हमने इतिहासकी हलचलसे आपको अवगत कराया। भारतमें भी मुस्लिम-शासनमें हकीमीको प्रोत्साहन मिला। यूनानसे विद्वान् फारस आये, यह तिब्बीका विस्तार हुआ—त्रिदोष अब चार दोष बन गये—कफ, पित्त, वायु तथा खून और इनके सूखे-गीले, गरम-ठंडे होनेकी चर्चा हुई, जो आज भी लोकमें व्याप्त है। औषधियोंका लेन-देन हुआ। इस्लामके बाद अंग्रेज आये और योरपकी चिकित्सा ले आये। वे इस विद्याको देना नहीं चाहते थे, पर केवल सहायक बनाना चाहते थे, परंतु चतुर भारतीयोंने विद्या हथिया ली और विश्वके श्रेष्ठ चिकित्सकोंके स्थानपर बैठ गये।

अब यहाँ दो बातें समझ लें। हैनीमैनसे पूर्व संसारमें पद्धतियाँ तो बहुत थीं, पर सभी उपचार कहलाती थीं, नुस्खोंका बोलबाला था। पुराने चिकित्सकोंकी डायरियाँ देखें तो लिखा मिलेगा—'यह नुस्खा मुझे मिस्री-चिकित्सकसे मिला, बहुत कारगर है।' हैनीमैनने पैथीका श्रीगणेश किया और आज सैकड़ों पैथियाँ बन गयी हैं। दूसरी बात यह कि चिकित्सा-विज्ञान या शास्त्र केवल उपचार नहीं है, उसमें बहुत-से विषयोंका अध्ययन करना होता है। ज्यादातर पैथियाँ एक दृष्टि-विशेषके आधारपर उपचार करती हैं, जबकि केवल कुछ ही पद्धतियाँ 'शास्त्र' कहला सकती हैं। आयुर्वेद एक शास्त्र है, उसे **अष्टाङ्ग-आयुर्वेद** कहा गया। यूनानी और तिब्बी भी शास्त्र हैं और उसी प्रकार आधुनिक चिकित्सा भी शास्त्र है, इसमें शरीर-रचना, शरीर-क्रिया, जीव-रसायन, औषधि-शास्त्र, विकृति-विज्ञान, स्वास्थिकी, अगद-तन्त्र, काय-चिकित्सा, शल्य, नेत्र-चिकित्सा, स्त्री-रोग तथा मातृत्व, बच्चोंकी बीमारियाँ, वृद्धोंकी बीमारियाँ और मनोचिकित्सा शामिल है। सच पूछिये तो उपचार-विद्या इस विशाल शास्त्रका छोटा-सा अंश है और इन विषयोंका ज्ञान इतना बढ़ गया है कि एक व्यक्ति समग्र चिकित्सक नहीं हो सकता। अस्तु, विशेषज्ञताकी प्रथा चली, जो अब अपनी चरम अवस्थाको पहुँच गयी है।

दूसरे महायुद्धके बाद अनुसंधानकी गति इतनी तीव्र हो गयी है कि सभी प्रगतियोंका लेखा-जोखा पेश करना भी कठिन है। भारतीय चिन्तन संश्लेषणात्मक है, जब कि आधुनिक विज्ञान विश्लेषणात्मक है अर्थात् सूक्ष्मसे सूक्ष्मतरकी यात्रा चल रही है। फिर्खोंने रोगका केन्द्र कोषमें देखा तो दूसरेने कुछ रोगोंको दो कोषोंके बीचमें स्थित स्थानपर रख दिया। फिर कोषके अंदर देखा गया। उसके केन्द्रको परखा गया। केन्द्रमें गुण-सूत्र दिखे और गुण-सूत्रपर स्थित गुणाणु मिले और इस प्रकार चमत्कारी '**जीन थिरैपी**' मिल गयी।

आम आदमी आधुनिक-चिकित्साके बारेमें बहुत कम जानता है, इस कारण बहुत-से प्रवाद फैले हैं, जैसे लोग कहते हैं कि एलोपैथीमें सभी रोगोंका कारण जर्म होते हैं। क्या वास्तवमें ऐसा है? आइये, आधुनिक चिकित्सामें रोगके कारण क्या बताये गये हैं, यह देखें—

(१) बाह्य भौतिक कारणोंसे रुग्णता—दुर्घटना, मारपीट, गोली लगना, जलना, डूबना, दम घुटना, विद्युत्-स्पर्शाघात, लू लगना, समुद्री यात्रा, वायुयान-यात्राकी बीमारी, पहाड़की बीमारी, गहरे समुद्रमें जानेसे उत्पन्न रोग (केसियन डिजीज), फ्रास्ट बाइट (बर्फसे जलना), प्रदूषणजन्य रोग।

(२) विष—पारा, सीसा, संखिया, शराब, कोयलेकी गैस, जहरीली गैस, नींदकी दवा, भाँग, गाँजा, चरस, अफीम, कोकेन, विषाक्त आहार, सर्पदंश, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीवोंका काटना, नशीली दवाएँ (जो आज अभिशाप बन गयी हैं)।

(३) परजीवी कृमि-रोग—केंचुआ, फीताकृमि, अंकुश-कृमि, चून्ना, फाइलेरिया आदि।

आज इन जीवोंके जीवनवृत्त समझे जा चुके हैं और इनसे बचनेके सरल उपाय भी उपलब्ध हैं—जैसे साग-सब्जी धोकर खाना, जूते पहनकर चलना, शौचालयका उपयोग आदि।

(४) चयापचयके रोग (मेटाबोलिक)—भोजनका पचना, रस बनना, उससे नया तन्तु बनना, उच्छिष्टके विसर्जन आदिमें गड़बड़ी होना। इसमें अम्लता, क्षारता, गाउट, (गठिया), मोटापा आदि रोग हैं।

(५) प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंके विकार—शरीरमें अनेक प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ हैं, जिनके स्रावसे शरीरका काम चलता है। इन ग्रन्थियोंमें—

(**क**) **पिट्यूइटरी**—जिसके विकारसे आदमी फैलकर '**जायन्ट**' हो जाता है या फिर बालरूप बना रहता है। डायबिटीज इनसिपिडस (जलीय मूत्र भारी मात्रामें होना)-जैसे रोग इसी विकारके कारण उत्पन्न होते हैं। यह ग्रन्थि सभी ग्रन्थियोंका नियन्त्रण करती है।

(ख) थायरायड अधिक होना घेघा, मिक्सीडिमा आदिका कारण है।

(ग) पैराथायरायड—कैलशियमके चयापचयमें गड़बड़ी, टिनैनी, हड्डियोंका अकारण टूटना आदि।

(घ) सुप्रारीनल—एडीसन रोग, सफेद दाग आदि।

(ङ) थाइमस—गलेका रोग—स्टेटसथाइमेटिक्स।

(च) स्त्री-पुरुषकी प्रजनन-ग्रन्थियाँ—अनेक उपद्रव।

(छ) पैंक्रियाज—मधुमेह।

(ज) पीनियल बाडी।

(६) हीनताजनक रोग—

(क) विटामिनोंकी कमी—स्कर्वी, बेरी-बेरी, रिकेट्स, रतौंधी, पेलाग्रा।

(ख) खनिजकी कमी—लोहा, कैलशियम, जिंक आदि सूक्ष्म मात्रामें आवश्यक तत्त्वोंकी कमी।

(ग) आहार-तत्त्वोंका असंतुलन—प्रोटीनकी कमी, वसाकी कमी, खुज्जाकी कमी, जलकी कमी, शर्कराकी कमी।

(७) अस्थि और मांसपेशियोंके रोग तथा अस्थि-संधि-रोग—इसके अन्तर्गत वह खतरनाक रोग भी है, जिसमें थोड़ा-सा काम करनेपर मांसपेशियाँ थक जाती हैं। कारण अज्ञात है। वृद्धावस्थामें जोड़ सूख जाते हैं, रीढ़की हड्डीके रोग, जिनमें आजकल 'स्पांडिलाइटिस' प्रसिद्ध है। इस शीर्षकके अन्तर्गत और बहुत-से रोग हैं।

(८) विघटनके रोग (डीजनरेशन)—क्लाउडी, फैटी, अमीलायड आदि अनेक रोग हैं, जिनमें तन्तु विघटित हो जाते हैं। कारण अल्प ज्ञात हैं।

(९) रक्त-प्रणालीके रोग—हृदय-रोग—रक्तकी कमी, वार्धक्य, रक्तस्राव, रक्तहीनता, ल्यूकीमिया, हाजकिंस (तिल्ली)-के रोग, परपूरा, हिमोफीलिया, साइनोसिस आदि। हृदयके रोगमें रक्तवाहिनीमें बाधा, तन्त्रिका-विद्युत्-संचारमें बाधा आदि हैं। हार्ट-अटैक आजके युगकी प्रमुख बीमारी है। रक्तचाप बढ़ना भी आजकी बीमारी है।

(१०) मूत्र-प्रणालीके रोग—पथरी, प्रॉस्टेटकी वृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, गुर्देका अभाव।

(११) तन्त्रिका-रोग (नर्वस-सिस्टम)—छोटे-बड़े मस्तिष्क, सुषुम्णा (स्पाइनल कार्ड) और तन्त्रिकाओंके रोग आदि।

(१२) श्वास-प्रणालीके रोग—अनेक।

(१३) आन्त्र-प्रणालीके रोग—मुख, लारग्रन्थि, ग्रसनी, आमाशय, छोटी-बड़ी आँतके रोग। पित्त थैली—पथरी। आँतकी रक्त-प्रणाली और लसिका ग्रन्थिके रोग, जिनमें बवासीर (पाइल्स) रोग भी है।

(१४) अर्बुद—कैंसर, सार्कोमा आदि दुष्टवृद्धियाँ आजके प्रमुख रोग हैं। साधु वृद्धि या ट्यूमर भी होते हैं।

(१५) शरीर-रक्षा-प्रणाली (इम्यून सिस्टम)—आज जिस एड्स रोगकी अति चर्चा है, उसमें एड्सका विषाणु इसी प्रणालीको ठप कर देता है और रोगसे लड़नेकी शक्ति क्षीण या बंद हो जाती है।

(१६) अतिचेतना—एलर्जीकी भी आजके युगमें बहुत चर्चा है। कोई भी गन्ध, खाद्य, दृश्य, औषधि शरीरको नापसंद हो तो एलर्जी (जलपित्ती-जैसी) उभर आती है।

(१७) सूक्ष्म जीवाणुजन्य रोग—उपर्युक्त सभी कारणोंमें कोई भी 'जर्म' का कारण नहीं होता। संसारमें सूक्ष्म और सूक्ष्मतर जीव हैं, जिनमें अनेक हितकारी और कुछ रोगकारक हैं। क्रमसे देखें तो—

(१) एककोषीय जीव—(क) अमीबा—अमीबिक डिसेन्ट्री, सच पूछिये तो यह सबसे बड़ा रोग है, अत्यन्त व्यापक है। अच्छा तो होता है, पर दूषित जल और वातावरणसे पुनः हो जाता है। बड़ी आँतमें घर बनाकर बैठे अमीबापर औषधिका असर भी नहीं होता।

(ख) मलेरिया—इसके उपद्रवसे सभी परिचित हैं।

(ग) अन्य **एक कोषीय** जीव भी सताते हैं।

(२) फफूँदी—शरीरमें भी भुखड़ी लग सकती है। कण्ठ, कान तथा पैरमें इसका उपद्रव बहुत होता है, दाद-खाजसे कौन परिचित नहीं है?

(३) जीवाणु (बैक्टीरिया)—नाना प्रकारके सूक्ष्म जीवोंने मानव-जीवनमें बहुत उपद्रव किया है। इनके कारण महामारियाँ फैली हैं। प्लेग, हैजा, डिफ्थीरिया, मियादी बुखार, पेचिशसे तो सभी परिचित हैं। ये शरीरके जिस भी अङ्गपर आक्रमण करते हैं और शरीर लड़ नहीं पाता तो बीमार हो जाता है—मेनिनजाइटिस, आँख-आना, कानका बहना, टांसिल बढ़ना, कण्ठके रोग, फेफड़े, जो विशेष रूपसे क्षयरोग-ग्रस्त होते हैं, आँतकी सूजन, अपेंडिसाटिस, पेरिटोनायटिस, हिपेटाइटिस आदि, हड्डी-जोड़ भी इनसे आक्रान्त होते हैं और मांसपेशियाँ भी। त्वचा और तन्त्रिकाके रोग भी ये पैदा करते हैं। जहाँ भी इनका आक्रमण होगा वहाँ सूजन, लाली तथा दर्द होगा। फोड़े और फुंसीकी जड़में ये ही हैं। सिफलिस, गनोरियामी इन्हींकी देन है।

(४) रिकेट्सिया—यह तथा अन्य सूक्ष्म जीव—टाइफस-जैसे रोग पैदा करते हैं।

(५) विषाणु—पुराने जमानेमें चेचक, जलातंक, मम्स, कमल-जैसे रोग होते थे, पर कारण नहीं मिलता था; क्योंकि ये इतने छोटे जीव हैं कि अत्यन्त सूक्ष्म छन्ने भी इन्हें नहीं रोक पाते थे और माइक्रोस्कोपमें ये दीखते नहीं थे। अब इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप आया तो ये दृष्ट हो गये। पहले अज्ञात कारण, मौसमी ज्वर, बाल लकवा (पोलियो), मस्तिष्कार्ति, गैस्ट्रो, कँवल, जुकाम, नेत्र-रोग, वाइरल, निमोनिया-जैसे अनेक रोग, विस्फोटक रोग—चेचक, छोटी माता, दुलारी, एकलंगी माता, मम्स आदिके कारक यही हैं।

विषाणु रोगकी चिकित्सा अभी भी आसान नहीं है, पर जीवाणुजन्य रोगोंपर काफी सफलता प्राप्त की जा चुकी है। आधुनिक जीवावसादक और जीवाणुमारक औषधि तथा प्रतिबन्ध चिकित्साके बलपर महामारियाँ समाप्त की गयी हैं। मानवताके घोर शत्रु क्षय और कुष्ठसे भी अच्छी लड़ाई चल रही है।

(१८) गर्भावस्थाके रोग—गर्भमें स्थित भ्रूणको रोग हो सकते हैं। इन्हें **कांजेनिटल रोग** कहते हैं। मातासे शिशुको रोग लग सकते हैं। रक्तके वर्गमें अन्तर हो तो शिशुके प्राणोंपर आ बीतती है। बनावटमें गड़बड़ी हो सकती है—कटे-फटे होंठ, अङ्गविशेष न होना, बड़ा सिर, जुड़वाँ-जुड़े हुए, विरूप शिशु।

(१९) पैतृक रोग—पिता-माताके गुणाणुमें दोष हो तो बच्चेमें रोग हो सकता है—रंगान्धता, हीमोफीलिया ऐसे ही रोग हैं।

हमने यथाशक्ति रोगकारण गिनाये, अभी और भी बहुत-से कारण हैं। आज एक बड़ा कारण जो पूरे विज्ञानको बदनाम कर रहा है, वह है—

(२०) इयात्रोजेनिक रोग—यह औषधिजन्य रोग है। इसका कारण आदमी और उसका विज्ञान है।

(२१) रेडियेशन रोग—यह नया कारण हिरोशिमापर एटम बम फूटनेपर प्रसिद्ध हुआ। चेर्नोबिल दुर्घटनामें भी विकिरणसे लोग मर गये। यह आधुनिक विज्ञानप्रदत्त एक अभिशाप है।

अन्तिम कारण और रोग इस प्रकार हैं—

(२२) मानसिक रोग—यह भी निम्न अवस्थाओंमें मिलता है—

(क) साधारण—इसमें रोगी चिन्ताग्रस्त रहता है।

(ख) हिस्टिरिया—आतंक, तनावग्रस्त।

(ग) उन्माद—इसमें रोगी असाधारण आचरण करता है, लोग उसे 'पागल' कहते हैं। इसके अनेक प्रकार हैं और आज अनेक मानसिक रोग अच्छे किये जा रहे हैं।

अन्तिम है—

(२३) जीर्णता—वृद्धावस्थाके रोगोंकी अब अलग श्रेणी बन गयी है। वृद्धोंकी संख्या बढ़ी है, अतः समस्या विकट हुई है।

अब हम आधुनिक विज्ञानके निदान-उपचारकी बात अत्यन्त संक्षेपमें कहेंगे। रोग-निदानकी अनेक विधियाँ विकसित हो गयी हैं, जैसे—ई०सी०जी०, ई०ई०जी०, अल्ट्रा साउण्ड, स्कैन तथा पैथोलॉजी प्रयोगशालाओंमें सैकड़ों परीक्षण। जीवाणु और विषाणु पहिचाने ही नहीं

जाते, उनका संवर्धन करके उनपर किसी औषधिका क्या प्रभाव होगा, यह भी जाना जा सकता है। ऑपरेशनसे निकले तन्तुका परीक्षण रोगकी सही पहिचान कराता है।

इलाजकी दृष्टिसे विगत पचास वर्षोंमें अपार प्रगति हुई है। पहले डॉक्टर डिस्पेंसरीमें मिक्सचर, पाउडर, गोली बनाते थे, मरहम-पट्टी करते थे, अब डिस्पेंसरी बंद हो गयी है। बाजारमें सब दवाएँ उपलब्ध हैं। एक भ्रम कि डॉक्टर हर रोगमें इंजेक्शन लगाते हैं, यह भी गलत है और अकारण इंजेक्शन लगाना अपराध है। ऑपरेशन या शल्य-क्रिया अब बहुत आगे बढ़ गयी है, अब बिना चीरा लगाये भी ऑपरेशन हो सकता है।

बहुत-से रोगोंका इलाज खान-पान (जैसे अंकुरित चना, ताजे फल, हरी सब्जियाँ, चिकने मसालेदार भोजनपर रोक) विश्राम, व्यायाम (टहलना), विशेष व्यायाम जैसे ट्रैक्शन आदि, वायु-परिवर्तन आदिसे हो जाता है।

कहते हैं आधुनिक चिकित्सा महँगी है और उससे फायदा होता ही नहीं, नुकसान ही होता है। यह भी कि इससे रोग दब जाता है, जड़से आराम नहीं होता। शायद ये आरोप ठीक हों—डॉक्टर अपने शास्त्रज्ञानके अनुसार इलाज न करें, धन कमाने बैठें तो ऐसे आरोप लगेंगे ही। दवाओंके दाम तो व्यापारी वर्ग और सरकारके हाथ है। सन् बीस-तीसमें डॉक्टरकी फीस पाँच रुपये, सिविल सर्जनकी सोलह रुपये थी—आज जब रुपयेकी कीमत एक पैसा हो गयी है तो फीस पाँच सौ रुपये होनी चाहिये, जो नहीं है। सच तो यह है कि लूट मचानेवाला डॉक्टर भी आज मध्य-वर्गका सदस्य है, जबकि अतीतमें वह उच्च-वर्गमें था। फायदेकी बात तो अस्पतालों, दवाखानोंमें भीड़ देखें, क्यों वे सस्ती, कारगर चिकित्साके पास नहीं जाते?

आधुनिक चिकित्सा विश्वव्यापी है, विश्व स्वास्थ्य-संघद्वारा निर्देशित है। विज्ञानने आज अनेक रोगोंका समूल नाश—उन्मूलन कर दिया है*, लोगोंको दीर्घ जीवन दिया है। जहाँ स्वतन्त्रतासे पूर्व हजारों बच्चों (नवजात)-में तीन सौसे पाँच सौतक मर जाते थे, वह संख्या हमारे देशमें सौ-से कम हो गयी है, उन्नत देशोंमें तो यह आठ-दस मात्र है। प्रसवमें माताकी मृत्यु विज्ञान अपने लिये कलंक मानता है। रोग-उन्मूलन और सफल उपचारका दुष्परिणाम हुआ है—जनसंख्याकी वृद्धि। आज विज्ञान तुला बैठा है कि किसीको मरने नहीं देंगे—ठीक है, पर जीवनका मूल्य नहीं बढ़ पाया है, जीवन सुखी नहीं है, मन अशान्त है। यह भीड़ कैसे घटे? एक सुझाव यह है कि आधुनिक चिकित्सापर समग्र रोक लगा दी जाय। अन्य उपचार-विधियाँ सस्ती हैं, जड़से रोग दूर कर सकती हैं, उन्हें मौका दिया जाय। पाँच वर्ष बाद आधुनिक चिकित्सा चमत्कारी परिणाम देखकर स्वयं परिवर्तन कर लेगी।

आधुनिक विज्ञानकी चिकित्सा और प्राचीन आयुर्वेदकी एक बात नोट करने लायक है और वह यह कि चिकित्सा-शास्त्री कभी अपनेको सर्वज्ञ नहीं कहते थे। वे मानते थे कि अनेक रोगोंके कारण अज्ञात हैं, अनेक रोगोंका इलाज हमें ज्ञात नहीं है। आजका चिकित्सक जब कहता है कि 'आपके रोगका कारण मुझे ज्ञात नहीं', तब वह सच बोलता है, भले इसे उसका अज्ञान और उसके शास्त्रको निरर्थक कहा जाय।

अन्तमें एक ही बात कहनी है 'हिंदू-धर्म' एक सागर है, उसमें नास्तिकसे लेकर बहुदेव-पूजकतक सब समा जाते हैं और कोई मजहब इतने सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करेगा। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान भी ऐसा ही है, इसमें सब समा सकते हैं, किसीसे विरोध नहीं। आपकी औषधि या विधि यदि कारगर है तो स्वीकार्य है। क्यों कारगर है, इसकी बहस नहीं। यह काम शोधकर्ताओंका है। हमारा तो एक ही फर्ज है—रोगीको पीड़ासे मुक्ति मिले, रोग दूर हो और वह सार्थक, सफल तथा सुखी जीवन जी सके।

हमारी प्रार्थना है—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'

* चिकित्सा-शास्त्रका बड़ा अङ्ग है—'प्रिवेण्टिव मेडिसिन' और इसके अधिकारी 'हेल्थ अफसर' कहलाते हैं। ये व्यक्तिकी ही नहीं पूरे समाज, नगर, राष्ट्रके स्वास्थ्यकी चिन्ता करते हैं और विश्वको रोग-मुक्त करनेके उपाय ढूँढ़नेमें लगे हैं।

एलोपैथी चिकित्सासे लाभ तथा हानि

(श्रीमती उषाकिरणजी अग्रवाल)

एलोपैथी चिकित्सा इस समय सारे संसारमें तेजीसे फैल रही है। उसके अनुसंधान भी सभी क्षेत्रोंमें हो रहे हैं, परंतु जिन परिणामोंकी इस विज्ञानको आशा थी, वे नहीं मिल पा रहे हैं।

एलोपैथीसे लाभ—एलोपैथी चिकित्सासे कुछ लाभ होना निर्विवाद है, जैसे यह मनुष्यको तुरंत राहत दिला देती है। मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कष्टोंसे शीघ्र-से-शीघ्र राहत मिल सके। एलोपैथी चिकित्सा उसमें सफल रही है। दूसरा निर्विवाद लाभ सफल शल्यचिकित्सा है। एलोपैथीने शल्यचिकित्सामें वास्तवमें आशातीत सफलता प्राप्त की है। पहले तो परम्परागत औजारोंद्वारा शल्यचिकित्सा की जाती थी, परंतु विज्ञानके बढ़ते चरणोंने इन औजारोंका स्थान विज्ञानकी नयी तकनीकोंको दे दिया है। इसमें लेज़रका प्रयोग उल्लेखनीय है। अणु तकनीकने भी इस चिकित्सा-पद्धतिमें बहुत सहायता की है। अब तो विज्ञान निरन्तर इस ओर प्रयत्नशील है कि जहाँतक हो, शल्यचिकित्सामें चीर-फाड़ कम-से-कम करना पड़े।

एलोपैथी चिकित्सा विज्ञानके स्थापित सिद्धान्तोंपर आधारित है। इसमें नित्य नया प्रयोग होता रहता है, जो इस चिकित्सा-पद्धतिको प्रगतिकी ओर ही ले जा रहा है, परंतु इन सबके होते हुए भी इसको अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। इस पद्धतिमें 'इंजेक्शन' एक ऐसी ही प्रक्रिया है, जिसके परिणाम शीघ्र ही सामने आ जाते हैं और इसके द्वारा मनुष्यको तत्काल राहत मिलती है। इस प्रक्रियासे कई कठिन रोगोंपर अंकुश लगानेमें सहायता मिली है। वैज्ञानिक पद्धतिपर चलते हुए इस चिकित्सा-पद्धतिमें विभिन्न परीक्षणोंका विशेष महत्त्व है। यदि परीक्षणोंमें रोगके लक्षण नहीं आते तो डॉक्टर यह मानकर चलता है कि रोगीको कोई रोग नहीं है, परंतु वास्तविकता यह नहीं होती। परीक्षणोंमें कहीं-न-कहीं कुछ कमियाँ रह ही जाती हैं, जिनके लिये वे और परीक्षण करना चाहते हैं। नये-नये यन्त्र निकाले जा रहे हैं, नयी-नयी तकनीक विकसित की जा रही है, जिससे परीक्षण पूर्ण हो सके, परंतु यह कितना सफल हुआ है, यह तो भविष्य ही बता पायेगा।

एलोपैथीसे हानियाँ—एलोपैथीसे लाभ तो जो हैं, वे प्रत्यक्ष ही हैं, पर इस पद्धतिमें जो सबसे बड़ा दोष है, वह है दवाइयोंका प्रतिकूल प्रभाव (साइड इफ़ेक्ट)। एक तो दवाइयाँ रोगको दबा देती हैं, इससे रोग निर्मूल नहीं हो पाता, साथ ही वह किसी अन्य रोगको जन्म भी दे देता है। यह इस पैथीके मौलिक सिद्धान्तकी ही न्यूनता है। दूसरी बात है अधिकतर रोग डॉक्टरोंके अनुसार असाध्य भी हैं। जैसे हृदयरोग, कैंसर, एड्स, दमा, मधुमेह आदि। यहाँतक कि साधारणसे लगनेवाले रोग जुकामका भी एलोपैथीमें कोई उपचार नहीं। पेटसे सम्बन्धित जितने भी रोग हैं, वे तो अधिक डॉक्टरोंके समझमें कम ही आते हैं। उदररोगोंका परीक्षण भी कठिन होता है तथा उसके सकारात्मक परिणाम भी नहीं मिल पाते। उदररोगोंका जितना सटीक एवं सफल उपचार आयुर्वेदमें है, उतना और दूसरी चिकित्सा-पद्धतिमें देखनेमें नहीं आता। अधिकतर रोग उदरसे प्रारम्भ होते हैं, अतः यदि वहाँपर अंकुश लगाया जा सके तो कई रोगोंका निदान स्वतः हो सकता है। मनुष्य अधिकतर स्वस्थ और नीरोग रह सकता है। डॉक्टरोंके पास एक ही अस्त्र है कि वे 'एन्टीबाईटिक' दवाई देते हैं, जो लाभ कम और हानि अधिक करती है। इन दवाइयोंका उदरपर सीधा दुष्प्रभाव पड़ता है और व्यक्तिकी पाचनक्रिया उलट-पलट हो जाती है। यदि वह उस दवाईको शीघ्र ही बंद न कर दे तो दूसरी व्याधियाँ उग्र रूप ले लेती हैं। इस चिकित्सा-पद्धतिमें औषधिसे अधिक शल्यचिकित्सा सफल हो पायी है। यहाँतक कि जिन कई रोगोंका आयुर्वेद अथवा यूनानी या होम्योपैथिक चिकित्सामें औषधियोंसे उपचार हो जाता है, वहाँ भी एलोपैथी शल्यचिकित्साका सहारा लेती है। दूसरे शब्दोंमें यह पद्धति शल्यचिकित्सापर अधिक आधारित होती जा रही है। इससे यह चिकित्सा अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे महँगी भी होती

जा रही है और साधारण व्यक्तिकी पहुँचसे बाहर होती जा रही है। एलोपैथीमें यह भी देखनेमें आया है कि कई ऐसे रोग हैं, जिनका कोई कारण डॉक्टरोंकी समझमें नहीं आता। वे उसका नाम 'एलर्जी' दे देते हैं, इसका उनके पास कोई उपचार नहीं है। डॉक्टर लोग इस 'एलर्जी'के उपचारके विषयमें सतत प्रयत्नशील हैं, परंतु अभीतक उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल पायी है। इस कथित रोगके विशेषज्ञ भी हो गये हैं, परंतु परिणाम कोई विशेष नहीं मिल पाया है।

यह कहा जा सकता है कि एलोपैथिक चिकित्सासे लाभ सीमित हैं, परंतु इससे हानियाँ अधिक हैं। इसलिये आज संसारके जिन देशोंमें केवल इसी चिकित्सा-पद्धतिका अनुसरण हो रहा है, वे भी दूसरी चिकित्सा-पद्धतियोंकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। यूरोपके कुछ देश होम्योपैथिक अथवा प्राकृतिक चिकित्साकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। जब कि अमरीकाके लोग अब आयुर्वेदकी ओर विशेष आकर्षित हो रहे हैं। वहाँ उस विषयमें अनुसंधान भी तेजीसे किये जा रहे हैं, इसके उदाहरण हैं कि कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ अमरीकासे भारत आ रही हैं और वे सफलतापूर्वक प्रयोगमें लायी जा रही हैं।

यह तथ्य तो सही है कि एलोपैथिक चिकित्सा वैज्ञानिक कसौटीपर खरी है। इसलिये इसका प्रचार-प्रसार भी अधिक हो सका, परंतु मेरे विचारसे यह चिकित्सा-पद्धति अपने-आपमें पूर्ण नहीं है। आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति अपने-आपमें पूर्ण है, परंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाया। इसमें हमारी मानसिकता—विदेशी पद्धति श्रेष्ठ है—भी एक मुख्य हेतु है। आयुर्वेदिक चिकित्सामें विश्वास बढ़ाना हम सबका कर्तव्य होना चाहिये; क्योंकि यह श्रेष्ठ, सफल एवं पूर्ण चिकित्सा-पद्धति है।

होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान

(डॉ० श्रीशिवकुमारजी जोशी होमियोपैथ)

आज चिकित्सा-विज्ञानमें जैसे एलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी आदि चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उसी प्रकार होमियोपैथी भी एक अद्भुत चिकित्सा-प्रणालीके रूपमें प्रचलित है। होमियोपैथीकी दवा साबूदाने-जैसी मीठी-मीठी गोलियोंके नामसे जानी जाती है।

होमियोपैथीके प्रणेता डॉ० हैनीमैन (१७५५-१८४३ ई०) थे, जो जर्मनीके निवासी थे। डॉ० हैनीमैन ऐलोपैथीमें एम्०डी० उपाधिप्राप्त चिकित्सक थे। उन्होंने दस वर्षोंतक एलोपैथीकी चिकित्साके दौरान यह अनुभव किया कि इस पद्धतिमें रोगको तेज दवाओंसे दबा दिया जाता है, जो आगे चलकर घातक दुष्परिणामोंके रूपमें उभरता ही रहता है। एक बीमारी हटती है तो दूसरी उठ खड़ी होती है, फिर तीसरी और अन्तमें ऐसी जटिल बीमारी हो जाती है कि वह असाध्य रोगकी श्रेणीमें आ जाती है। इन घटनाओंसे डॉ० हैनीमैनके अन्तर्मनमें नफ़रत पैदा होते ही उन्होंने ऐलोपैथीकी चिकित्साको हमेशाके लिये छोड़ दिया और सन् १७९० ई० से दिन-रात एक करके एक निर्दोष एवं सार्थक चिकित्सा-प्रणालीकी खोजमें अपना पूरा जीवन खपा दिया, अन्तमें इन महापुरुष डॉ० हैनीमैनने पीडित मानवताकी सेवाके लिये होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान-जैसी संजीवनी विद्या खोज ही निकाली।

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीके मुख्य सिद्धान्त

(१) मानवका जो स्थूल शरीर हमें दीखता है, वह अति सूक्ष्म तत्त्वोंसे बना है। रोगका प्रारम्भ स्थूल शरीरमें नहीं होता, पहले रोग सूक्ष्म शरीरमें आता है। यदि सूक्ष्म शरीर (जीवनी शक्ति—वाइटल फोर्स) स्वस्थ है, सबल है, रेजिस्टेन्स पावर (रोगप्रतिरोधक शक्ति) मजबूत है तो रोगका आक्रमण सूक्ष्म शरीरपर नहीं हो सकता और स्थूल शरीर स्वस्थ बना रहता है। किंतु यदि हमारी जीवनी शक्ति (सूक्ष्म शरीर—आन्तरिक शक्ति) अस्वस्थ है, निर्बल है तो रोग पहले भीतरी शक्तिपर आक्रमण कर उसे और निर्बल कर देता है, फिर स्थूल शरीरपर विभिन्न अङ्गोंमें रोगोंके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जैसे—सिर-दर्द, पेट-दर्द, सर्दी-जुकाम, खाँसी, कै-दस्त, बुखार इत्यादि।

यदि उपचारसे इस सूक्ष्म शरीर (जीवनी शक्ति)-को

रोगमुक्त कर लिया जाता है तो स्थूल शरीर अपने-आप रोगमुक्त हो जाता है।

होमियोपैथीकी शक्तीकृत दवा सूक्ष्म रूपमें ही होती है। अत: सूक्ष्म तत्त्वपर सूक्ष्म तत्त्वका ही स्थायी प्रभाव पड़ता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

(२) स्वस्थ शरीरमें जो औषधि रोगके जिन लक्षणोंको उत्पन्न करती है, यदि रोगीमें वैसे ही लक्षण पाये जाते हैं तो वही औषधि होमियोपैथीके शक्तीकृत रूपमें (सूक्ष्म रूपमें) उन लक्षणोंको ठीक कर देगी, बीमारीका नाम चाहे कुछ भी क्यों न हो। इस सिद्धान्तको एक उदाहरणद्वारा नीचे स्पष्ट किया जा रहा है—

जैसे स्वस्थ शरीरमें संखिया (आर्सेनिक) बेचैनी पैदा करता है, शरीरमें जलन उत्पन्न करता है, बार-बार प्यास लगती है, इस तरहके अनेक लक्षण पैदा करता है। होमियोपैथीके सिद्धान्तके अनुरूप यदि वैसे ही लक्षण किसी रोगीमें पाये जाते हैं तो इन लक्षणोंको होमियोपैथीकी आर्सेनिक नामक शक्तीकृत दवा दूर कर देगी। उपर्युक्त लक्षण चाहे हैजेमें हों, सर्दी-जुकाम-बुखारमें हों, पेटके अल्सरमें हों, सिरदर्दमें हों या कैंसरमें हों। बीमारीके नामसे कोई मतलब नहीं—बीमारीका नाम चाहे जो हो—रोगीके ये लक्षण आर्सेनिक नामकी होमियोपैथीकी दवासे ठीक हो जायँगे और रोगी रोगमुक्त होगा।

(३) होमियोपैथीमें रोगका नहीं, रोगीका इलाज होता है। रोगीके लक्षणोंको प्रधानता दी जाती है, बीमारीके नामको नहीं।

(४) होमियोपैथीके उपचारका आधार खासतौरसे पुराने-जीर्ण (क्रानिक) तथा असाध्य कहे जानेवाले रोगोंके लिये रोगीकी केस हिस्ट्री लेते समय उनके लक्षणोंकी प्राथमिकताका क्रम इस प्रकार रहता है—

(अ) मानसिक लक्षण।

(ब) सर्वाङ्गीण लक्षण यानी व्यापक लक्षण, जो पूरे शरीरकी पीडाका बोध कराता हो।

(स) अङ्ग-विशेषके लक्षण।

(द) कोई असाधारण या विलक्षण लक्षण।

(इ) रोगीकी प्रकृति।

नये रोगियोंमें अथवा अबोध बच्चों तथा आकस्मिक असामान्य स्थितिमें मौजूदा रोगीकी स्थिति एवं मौसमके अनुरूप रोगीको तात्कालिक लाभ देने-हेतु सामयिक चिकित्सा-व्यवस्था की जाती है, ताकि रोगीको शीघ्र लाभ हो सके।

होमियोपैथिक दवाका शक्तीकरण (Potentialisation)—सभी पैथियोंमें औषधियाँ मूलत: सब वही होती हैं, भेद केवल इनके निर्माण एवं प्रयोगमें होता है।

होमियोपैथिक दवा बनानेकी विधि बड़ी ही विचित्र है। इस विधिमें औषधिके स्थूल रूपको इतने सूक्ष्मतम रूपमें परिवर्तित कर दिया जाता है कि दवाकी तीसरी शक्तीकृत दवामें दवाका स्थूल अंश तो क्या, दवाके सूक्ष्म अंशका भी पता नहीं चलता।

होमियोपैथीकी किसी भी शक्तीकृत दवामें ६ शक्तिके बाद दवाके अणु-परमाणु भी नहीं देखे जा सकते, दवाकी आन्तरिक अदृश्य शक्ति जाग्रत् हो जाती है और इस तरह दवाकी आन्तरिक जीवनी शक्ति रोगीको ठीक करती है।

होमियोपैथीकी शक्तीकृत दवा ६ शक्तिके बाद ३०, २००, १०००, १०,०००, ५०,००० तथा १ लाख पावर (पोटेन्सी)-वाली होती है। इन उच्चतर शक्तीकृत दवाओंमें दवाका नामोनिशान ही नहीं रहता, जबकि ये सूक्ष्मतम अदृश्य शक्तिरूपा होमियोपैथिक दवाइयाँ पुराने, जटिल तथा असाध्य कहे जानेवाले रोगोंको जड़मूलसे स्थायी रूपसे नष्ट कर देनेका सामर्थ्य रखती हैं तथा उस रोगजन्य अन्तरङ्गको Regenerate करनेकी क्षमता भी रखती हैं।

होमियोपैथिक दवाओंका परीक्षण (Proving of Drugs)—कौन-सी औषधि स्वस्थ व्यक्तिमें क्या लक्षण पैदा करती है, डॉ० हैनीमैनने ही इसका आविष्कार किया।

होमियोपैथीकी अधिकांश दवाका डॉ० हैनीमैनने स्वयं तथा अपने कई स्वस्थ सहयोगियोंपर परीक्षण किया—उनमें जो-जो शारीरिक तथा मानसिक लक्षण उत्पन्न हुए, उनका सम्पूर्ण रेकार्ड किया गया। इस प्रकार परीक्षित होमियोपैथिक शक्तीकृत दवाओंका जो सजीव चित्रण संकलित किया गया, उस ग्रन्थका नाम **होमियोपैथिक मैटेरिया-मेडिका** रखा गया। चूँकि होमियोपैथिक दवाओंके परीक्षणका आधार स्वस्थ मानव-शरीर रहा है। अत:

जबतक मानव पृथ्वीपर है, होमियोपैथीकी वे ही दवाइयाँ सदियोंतक चलती रहेंगी।

ऐलोपैथी दवा बार-बार इसलिये नयी-नयी बदलती रहती है कि उसके परीक्षणका आधार चूहे, बंदर, गिनीपीग-जैसे जानवर तथा रोगी होते हैं।

होमियोपैथी दवाके चयनका सिद्धान्त—सिद्धान्तरूपसे होमियोपैथका काम ऐसी औषधिका निर्वाचन करना है, जिसके लक्षण हूबहू रोगीके लक्षणोंसे मिलते हों। जब रोगीके लक्षणों और औषधिके लक्षणोंमें अधिक-से-अधिक साम्यता, समानता, एकरूपता पायी जाती है तो वही औषधि रोगको दूर करेगी।

औषधि और रोगीका वैयक्तिकीकरण (Individualisation) करना होमियोपैथीका सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तके आधारपर होमियोपैथ रोगीद्वारा बताये गये सम्पूर्ण लक्षणोंको ध्यानमें रखकर ही उपयुक्त औषधि एवं दवाकी पोटेन्सी (पावर)-का चयन करता है। यह चयन-प्रक्रिया होमियोपैथके अध्ययन और अनुभवपर आधारित रहती है।

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीके बारेमें कुछ व्यावहारिक जानकारी

(१) होमियोपैथिक दवाकी कोई एक्सपायरी डेट नहीं होती है। (यदि दवाको धूप, धूल, धुँआ, तेज गन्ध तथा केमिकल्ससे बचाकर रखा जाय तो यह दवा कई वर्षोंतक चलती रहेगी।)

(२) इस दवाके कोई साइड इफ़ेक्ट (दुष्प्रभाव) नहीं होते हैं।

(३) इस दवामें कोई विशेष परहेज नहीं होता है। केवल तेज गन्धवाली वस्तुओंसे परहेज करना है।

(४) दवाको हाथ नहीं लगाना चाहिये, शीशीके ढक्कनसे या सफेद कागजके टुकड़ेपर लेकर सीधे मुँहमें डालकर चूस लेना चाहिये। साधारणतः बड़ोंको चार गोली तथा बच्चोंको २ गोली।

(५) दवा लेनेके १५-२० मिनिट पहले तथा दवा लेनेके १५-२० मिनिट बादतक मुँहमें कुछ भी नहीं डालना चाहिये। भोजनमें ३०-३० मिनिटका पहले और बादमें समयका ध्यान रखना है।

(६) चाय-काफी-तंबाकू-पान-प्याज-लहसुन—इनपर कोई बंदिश नहीं है, परंतु ध्यान रखें दवा लेनेके आधा घंटा पहले तथा दवा लेनेके आधा घंटा बादतक इनका उपयोग नहीं करें, अन्यथा तेज गन्ध दवाके पावरको कम कर सकती है।

(७) किसी भी कारणसे आवश्यकता पड़नेपर यदि कोई अन्य पद्धतिकी दवाका प्रयोग करना पड़े तो उस समयतकके लिये होमियोपैथिक दवा बंद कर देनी चाहिये। उसके बाद दूसरे दिनसे पुनः यथावत् चालू कर सकते हैं।

(८) होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीमें रोगीके लक्षणोंके आधारपर ही उपचार किया जाता है। लक्षणोंद्वारा ही अङ्ग-विशेषके रोगग्रस्त होनेकी जानकारी हो जाती है। इसी कारण साधारणतः अकारण रोगीकी भारी-भरकम खर्चीली जाँचें नहीं करायी जाती हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति सरल है, सस्ती है और पुराने रोगोंमें स्थायी लाभ देनेका सामर्थ्य रखती है।

(९) होमियोपैथी चिकित्साके बारेमें आवश्यक जानकारीके अभावमें कुछ लोगोंमें भ्रम, भ्रान्तियाँ तथा गलत धारणाएँ फैली हुई हैं, जिसकी वजहसे वे होमियोपैथी चिकित्सा करानेमें हिचकिचाते हैं, उनके द्वारा अक्सर ऐसा कहा जाता है कि—

(अ) होमियोपैथी दवा देरसे असर करती है।

(ब) होमियोपैथीमें पहले रोगको बढ़ाया जाता है।

(स) होमियोपैथिक दवासे तात्कालिक लाभ नहीं होता है तथा दवा काफी लंबे समयतक लेनी पड़ती है।

(द) होमियोपैथी दवा समयपर बार-बार दिनमें कई बार लेनी पड़ती है।

(इ) कुछ लोगोंका यह भी मानना है कि इतने बड़े शरीरमें ४-५ साबूदाने-जैसी गोली क्या असर करेगी?

ऐसी कई भ्रान्तियों एवं गलत धारणाओंके कारण होमियोपैथीकी सही जानकारीके अभावमें रोगी तात्कालिक एवं क्षणिक लाभके लिये इधर-उधर भटकनेके उपरान्त अन्तमें स्थायी लाभके लिये होमियोपैथी चिकित्साके लिये आते हैं और जब वे इस संजीवनी चिकित्सा-विद्यासे लाभान्वित होते हैं तो फिर इसे छोड़कर दूसरी चिकित्सा-पद्धति नहीं अपनाते।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धति और असाध्य रोग

(डॉ० श्रीसोमनाथजी मुखर्जी एम० बी० एच० एस०, एम० बी० एच० सी०)

चिकित्सा एक साधना है, सेवा-भावसे चिकित्सा करनेपर पूर्णरूपसे सफलता मिलती है। प्रत्येक चिकित्सा-पद्धतियोंका अपना अलग-अलग महत्त्व है। कुछ रोग जैसे डिप्थीरिया, टिटनेस, एड्स तथा कुष्ठरोगके लिये ऐलोपैथीको उत्कृष्ट समझा जाता है। वातरोग, पक्षाघात आदिमें आयुर्वेदका महत्त्व है। इसी प्रकार जटिल एवं पुराने रोगोंमें होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धतिका महत्त्व ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुआ है। सभी पैथियोंमें रोगीके प्रति सहानुभूति नितान्त आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्दजीने कहा था कि जीवको शिव समझकर चिकित्सा करना ही जीवका वास्तविक धर्म है।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धतिकी विशेषतापर मैं एक-दो उदाहरण आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। होमियोपैथिक औषधिके चयनमें रोगीके शारीरिक एवं मानसिक लक्षणोंपर विचार किया जाता है, इसमें पुराने इतिहासका विशेष प्रयोजन होता है, यथा—

(१) अड़सठ वर्षके एक रोगीको पूरी तरहसे स्वर-भङ्ग हो गया था। जसलोक अस्पताल (मुम्बई)-ने टंग-पैरालाइज्ड कहकर वापस भेज दिया था, उस रोगीके पुराने इतिहाससे पता चला कि उक्त रोगीको चार वर्षकी उम्रमें चेचक निकली थी जो कि उस समय उसके शरीरमें पूर्ण-रूपसे विकसित नहीं हुई थी, आज उसीके फलस्वरूप ऐसी स्थिति आयी है। होमियोपैथिक औषधि केवल दो खुराक देनेसे कुछ दिनों पश्चात् स्वर-भङ्ग ठीक हो गया और पुराना स्वर वापस आ गया।

(२) एक रोगीको अकेलेपनमें गश (मूर्च्छा) आती थी, उसका इलाज भेल्लौरसे करानेपर भी सफलता न मिलनेपर रोगीको होमियोपैथिक इलाजके लिये सलाह दी गयी। पुराने इतिहाससे पता चला कि उसका पालन-पोषण बड़े परिवारमें—शोरगुलमें हुआ था, परंतु विवाहके उपरान्त उसे अकेलेपनमें रहना पड़ा; क्योंकि उसका पति अपने कार्यपर चला जाता था। उसीके परिणामस्वरूप उसके मनमें भयसे यह रोग उत्पन्न हो गया और वह बेहोशीमें परिवर्तित हो गया। इसमें होमियोपैथिक इलाजसे ही सफलता प्राप्त हुई।

(३) एक चौदह सालकी लड़कीको जुविनाइल डाइबिटिज था, काफी चिकित्सा करानेके पश्चात् वे लोग होमियोपैथीकी शरणमें आये। रोगीके इतिहाससे ज्ञात हुआ कि जब वह माँके गर्भमें थी, तब उसकी माँका मानसिक संतुलन खराब था। फलस्वरूप पैदा होते ही बच्चीमें इस रोगकी उत्पत्ति हुई, अत: इसी आधारपर इस रोगकी चिकित्सा करनेपर रोग समाप्त हो गया।

अत: होमियोपैथिक भाइयोंसे हमारा निवेदन है कि प्रत्येक मरीजका पूर्वका इतिहास लेकर ही उसकी चिकित्सा करें, तभी रोगोंमें पूर्णरूपसे सफलता मिलेगी।

होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिद्वारा शारीरिक एवं मानसिक व्याधियोंका निवारण

(डॉ० श्रीरफीक अहमद एम्०ए०, पी-एच्०डी०(होमियोपैथ))

मानव एक प्राणी होनेके कारण व्याधियोंसे ग्रस्त होता रहा है। यह रुग्णता मुख्यत: दो प्रकारकी है—शारीरिक एवं मानसिक। इसके उपचार-हेतु वह आदिकालसे ही सतत प्रयत्नशील रहा है और उसका प्रयत्न निरन्तर विकासोन्मुख रहा है। यदि आज उन चिकित्सा-प्रयासोंकी ओर दृष्टिपात करें तो मुख्यत: एलोपैथिक चिकित्सा अग्रगण्य है। समस्त विश्वके राष्ट्रोंमें इसका वर्चस्व व्याप्त है। आयुर्वेदिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति गौण है। आयुर्वेदिक चिकित्साका श्रीगणेश, अनुसंधान एवं विकास भारतभूमिपर हुआ है, जिसमें ऋषियों-योगियोंकी अहम् भूमिका रही है। इसका भूतपूर्व इतिहास अत्यन्त गौरवमय एवं वैभवशाली रहा है। धन्वन्तरि तथा चरक-जैसे महा मनीषियोंने इसे

पुष्पित एवं पल्लवित किया है। यह पद्धति आज भी जीवित है। यूनानी अर्थात् तिबिया प्रणालियोंका प्रादुर्भाव यूनानसे हुआ है। इसलामी शासनमें लुकमान-जैसे हकीमोंने इसे पराकाष्ठापर पहुँचाया। होमियोपैथिक चिकित्सा जर्मनके एक ख्यातिप्राप्त एलोपैथिक चिकित्सक सेम्युअल हैनीमैनद्वारा आविष्कृत होनेके कारण इसका नाम होमियोपैथिक पड़ा है। यद्यपि इसका इतिहास पुराना नहीं है, फिर भी यह लोकप्रियताकी ओर अग्रसर है। इसका मुख्य सिद्धान्त स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर है। किसी ओषधिके सेवनसे जो लक्षण प्रकट हो यदि वही लक्षण किसी रोगीमें दिखायी पड़े तो उसी ओषधिका सूक्ष्मांश देनेसे लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार क्विनाइयनके सेवनसे कम्प-ज्वर पैदा होता है, तो यदि किसीको कम्प-ज्वर अर्थात् मलेरियाके लक्षण दिखायी पड़ें तो उसीका सूक्ष्मांश अर्थात् चायना-शक्तीकृत ओषधि उसे रोगमुक्त करनेमें सक्षम है। यहाँ यह प्रासंगिक होगा कि कुछ अन्य आधुनिक पद्धतियोंपर भी दृष्टिपात कर लिया जाय। जैसे चीनद्वारा प्रतिपादित एक्यूपंक्चर-पद्धति। जिसमें रोग-विशेषको निर्धारित चिह्नोंद्वारा चिह्नाङ्कित करके उसमें अतिरिक्त ऊर्जाद्वारा स्नायुमण्डलको गति प्रदान करते हुए रोगोंके निवारणकी व्यवस्था है। चुम्बक-चिकित्साके माध्यमसे भी उसमें ऋण तथा धन चुम्बकीय क्षेत्रोंको स्पर्श कराते हुए दर्दोंके निवारण तथा पक्षाघात एवं स्नायु-दौर्बल्यमें इसका प्रयोग किया जाता है। मेज्मेरिज्म अर्थात् प्रयोगकर्ताद्वारा अपनी मानसिक शक्तियोंको केन्द्रित करके भुक्तभोगीपर डालकर कुछ मनोरोग—जैसे अनिद्रा, चिन्ता, भय, शोक तथा आत्महीनतामें इस पद्धतिका प्रयोग किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त बिना किसी ओषधिके प्राकृतिक चिकित्साका भी कुछ व्याधियोंमें प्रयोग किया जा रहा है, जिसमें प्रकृतिके महाभूत, जैसे—जल, अग्नि, मिट्टी तथा वायुद्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है, जो जनसाधारणके लिये दुस्तर तथा कठिन तो अवश्य है, परंतु पथ्य, परहेजद्वारा सहज प्राकृत जीवन व्यतीतकर गम्भीर रोगोंसे मुक्ति पायी जा सकती है। रोग-निवारणमें गोमूत्र एवं स्वमूत्र-प्रयोगद्वारा भी सहायता प्राप्त होती है।

इन सभी चिकित्सा-प्रणालियोंमें होमियोपैथी सहज-सुलभ, प्राकृत तथा सस्ती एवं दीर्घ लाभके लिये अपनी आभा विश्वमें विकीर्ण कर रही है। इस विज्ञानके आधारपर हमारे शरीरमें रोग होनेके कारण तीन महाविष हैं। जिस प्रकार आयुर्वेदमें कफ-पित्त और वायु है, उसी प्रकार होमियोपैथीमें सोरा, सिफलिश और सायकोसिस है। नब्बे प्रतिशत रोगोंका मूल शरीरमें 'सोरा' दोषका आविर्भाव है। इसने मानवजातिका सबसे बड़ा अहित किया है। इसी दोषकी सक्रियताके कारण शरीरमें मानसिक चञ्चलता, कामुकता, एक्जिमा, खाज, खुजली, सोरायसिस, कुष्ठ, चर्मरोग तथा उदर एवं स्नायुरोग पैदा हो जाते हैं। सायकोसिस विषके सक्रिय होनेके कारण शरीरमें अतिरिक्त वृद्धि जैसे रसौली, मस्से, गाँठ, गुठलियाँ, कैंसर तथा अस्थिवृद्धि आदि हो जाती हैं और सिफलिश विषके कारण उपदंश, यौन-रोग, एड्स, जनेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग होते हैं। श्लैष्मिक झिल्ली, आन्त्रव्रण (अल्सर) आदि इसीके अन्तर्गत हैं। सोरादोषको निष्क्रिय करनेके लिये सल्फर तथा सिफलिशके लिये मर्कसाल और सायकोसिसके लिये थूजाका विधान है। ये तीनों मुख्य औषधियाँ इस त्रिविषके लिये मोटेरूपमें गिनायी जा सकती हैं। इसके पश्चात् रोगीके स्थूल, तथा दुर्बल जीवनी-शक्तिका परीक्षण किया जाता है। उसकी मानसिक स्थितिको व्यापकरूपसे ध्यानमें रखा जाता है। उसकी इच्छाओं, अनिच्छाओं तथा रोगकी समय-विशेषमें ह्रास एवं वृद्धि, रोगग्रस्त अङ्गके लक्षण, शीतल तथा गर्मका भी वर्गीकरण करनेमें ध्यान देना आवश्यक है। साथ-साथ रोगीके भूतपूर्व रोगोंका इतिहास, वंश-परम्परासे चली आयी व्याधियाँ जैसे दमा, कैंसर आदि-आदि तथा जलवायु, मौसमविशेष और वेश आदिको भी निरखा-परखा जाना आवश्यक होता है।

रोग-विशेषमें मुख्यरूपसे प्रयुक्त होनेवाली कुछ ओषधियोंकी एक संक्षिप्त सारणी यहाँ दी जा रही है—

एकोनाइट—रोगके आरम्भमें सभी रोगोंकी उग्रता, तीव्र ज्वर, हृदयरोग, ज्वर, घबड़ाहट, बेचैनी आदिकी प्रारम्भ-अवस्थामें सेवनीय है।

आस एल्बम—इसको संखिया-विषसे शक्तीकृत करके ३ लक्षणोंपर मुख्यतासे प्रयोग किया जाता है। यह दवा

पसीना, घबड़ाहट, बेचैनी, प्यास-जैसे रोगोंकी पुरानी अवस्थामें प्रयुक्त की जाती है। दमा, श्वास, कास, पुराने चर्मरोग आदिमें सेवनीय है।

एंटिमटार्ट—यह मुख्यतः बच्चोंकी दवा है। सर्दी, खाँसी, निमोनिया, छातीमें बलगमकी गड़गड़ाहट आदि इसके मुख्य लक्षण हैं।

एसिड फॉस—यह धातुरोग तथा मानसिक दुर्बलताकी प्रमुख ओषधि है।

एल्युमिना—यह वृद्धोंके कब्जमें विशेष उपयोगी है।

एनाकाडियम—यह स्मृतिहीनता तथा मानसिक भ्रम आदिमें उपयोगी है।

बेलाडोना—यह मुख्यतः बच्चोंकी ओषधि है। चेहरेका लाल हो जाना, काल्पनिक मूर्ति देखना तथा चौंकना आदि भाव दीखनेपर उपयोगी है।

ब्रायोनिया—यह ज्वर तथा वातकी मुख्य ओषधि है।

कल्कैरिया कार्ब—यह बच्चोंकी ओषधि है। मोटे, थुलथुले, पसीनेदार, मिट्टी तथा खड़िया खानेवाले बच्चों तथा पित्त पथरी, वृक्क पथरीमें—जिसमें दर्दके समय पसीना हो, तो यह उसके लिये एक महान् उपकारी ओषधि है।

कास्टिकम—दाहिनी ओर पक्षाघातमें इस दवाकी उच्च शक्तिसे निश्चित लाभ होता है तथा गलनलीके रोग जैसे स्वरभंग, लकवा आदिमें इसका विधान है।

कैन्थरिस—जलनके साथ मूत्रमें बूँद-बूँद आनेमें यह निश्चित लाभकारी है।

कार्वोवेग—यह दिमागी अवस्था और उदर-रोगमें वायुसे पेट फूलनेमें लाभकर है।

चेली डोनियम—यह दाहिने स्कन्धास्थिमें दर्द होनेमें और यकृत् तथा कब्जमें उपयोगी है।

सीना—यह कृमि-रोगकी महोषधि है।

क्युव्रममेट—यह मानसिक मृगी—जिसमें ऐंठन होकर मुट्ठी हो जाय तथा चेहरा नीला हो जाय—की अचूक ओषधि है।

ग्रैफाइटिस—यह मोटी, गोरी, थुलथुली महिलाओंमें क़ब्ज़ तथा मासिक धर्मकी गड़बड़ीमें लाभकारी है।

हीपर सल्फर—यह एक कीटाणुनाशक ओषधि है। जिस व्रणमें गाढ़ा मवाद आता हो, उसे सुखानेके लिये यह अति उत्तम है।

हायोसियामस—यह पागलपन दूर करनेकी अचूक दवा है, इसका लक्षण वीभत्स प्रदर्शन करना होता है।

इग्नेशिया—यह मानसिक रोगोंमें, हिस्टीरिया आदिमें—जिसके मूलमें हर्ष, शोक, चिन्ता तथा प्रेमसे निराशाका इतिहास हो, उसमें उपयोगी है।

इपीकाकुआना—यह मिचली तथा वमन-रोगमें प्रथम सेवनीय है।

कालीफास—यह मानसिक दुर्बलता एवं स्नायु-दौर्बल्यमें—विचूर्ण ६ एक्स, १२ एक्स, ३० एक्स आदि—लाभकारी है।

लैकेसिस—यह सर्वविषकी ओषधि है, जो शरीरके वामभागके पक्षाघात, गाँठ, रसौली तथा कांबमल-जैसे कुसाध्य रोगमें रामबाण है।

लाइकोपोडियम—इसका प्रयोग विशेष रूपसे दुबले-पतले, यकृत्-रोगी, मूत्रावरोध, नपुंसकता, निचले उदरके दाहिनी ओरमें फूलने आदिमें किया जाता है।

मर्कसाल—यह पारद-निर्मित है। पेचिशी आँव, मुँह आना, तथा चर्मरोगमें इसका सफलतापूर्वक व्यवहार किया जाता है।

नक्सवोमिका—यह होमियोपैथी-विज्ञानकी मुख्य ओषधि है। आधुनिक जगत्की व्यस्त बाधाओंकी यह एक आदर्श ओषधि है। उदररोग, मानसिक भ्रान्ति, क्रोध, क़ब्ज़ आदिमें यह एक मान्यताप्राप्त ओषधि है।

नैट्रमसल्फ—यह दमाके रोगी बच्चोंकी महत्त्वपूर्ण औषधि है।

पल्सेटिला—यदि नक्स पुरुषोंकी ओषधि है तो पल्सका स्त्री-जगत्में आदरणीय स्थान है। रोनेवाली महिलाओंके लिये तथा मानसिक रोगग्रस्त, मासिक दोषयुक्त तथा गैस, तेजाब आदिमें इसके उपकारको भुलाया नहीं जा सकता।

रसटॉक्स—भीगकर तथा ठंडसे बढ़नेवाले चर्मरोग और वातके लिये यह उपयोगी है।

सल्फर—यह सोरानाशक है तथा चर्मरोगोंको बाह्य पटलपर लानेमें अव्यर्थ भूमिका निभाती है।

ट्युबरकुलीनम—इसके उच्च शक्तिका प्रयोग क्षयरोगों तथा इसके विषको दूर करनेके लिये किया जाता है।

जिंक्ममेट—यह स्नायु टॉनिक पैरोंके हिलने, कम्पन तथा दुर्बलता आदिमें उपकारी है।

यद्यपि यह विज्ञान विशाल एवं विस्तृत है, फिर भी जनसाधारणके लाभके लिये होमियोपैथिक पद्धतिद्वारा स्वास्थ्यलाभका संक्षिप्तमें विवरण प्रस्तुत किया गया है। सत्परामर्श करके इनसे लाभ उठाना चाहिये।

बायोकैमिक चिकित्सा-प्रणाली

(डॉ० श्रीविष्णुप्रकाशजी शर्मा)

डॉ० सेम्युअल हैनीमैनद्वारा होम्योपैथीके सिद्धान्तकी प्रतिष्ठाके बाद चिकित्साक्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान जर्मन विद्वान् डॉ० डब्ल्यू० एच० शुस्लरका रहा, जिन्होंने सन् १८७३ ई० में जैव रसायनप्रणाली (बायोकैमिक चिकित्सा-प्रणाली)-का प्रतिपादन किया। रोगियोंकी जाँचके बाद डॉ० शुस्लरने पाया कि शारीरिक संरचनामें बारह अकार्बनिक टिस्यू लवण महत्त्वपूर्ण हैं और शरीर-निर्माणके भौतिक आधार हैं। जब जीवित कोषोंमें इन लवणोंके कणोंकी गतिविधियोंमें कोई अन्तर आता है और इनका संतुलन बिगड़ जाता है तब रोग पैदा होता है। आवश्यक लवणकी कमीको औषधि-रूपमें देनेसे रोग दूर किया जा सकता है। सामान्यरूपसे यही बायोकैमिक चिकित्सा है।

बायोकैमिक औषधियाँ होम्योपैथिक औषधियाँ ही हैं, जो डॉ० शुस्लरके जैव रसायनसिद्धान्तसे पहले भी प्रयोग होती थीं, तथापि जैव रसायन-चिकित्सा होम्योपैथिक चिकित्सासे भिन्न है। होम्योपैथीका तत्त्व है काँटेसे काँटा निकालना अर्थात् जो दवा स्वस्थ आदमीमें अधिक मात्रामें देनेपर बुरे लक्षण उत्पन्न करती है, वही दवा कम मात्रामें देनेपर वैसे ही बुरे लक्षणवाले रोगोंको दूर करती है। जब कि जैव रसायन-चिकित्सामें जिन लवणोंकी कमीसे रोग उत्पन्न हुआ है, उन्हें देनेसे रोग अच्छा हो जाता है। होम्योपैथीमें बहुत दवाएँ प्रयोग की जाती हैं, जब कि जैव रसायनमें मात्र बारह। होम्योपैथीमें विभिन्न लक्षणोंके लिये एक दवा चुनना कठिन तथा अनिश्चित है, पर बायोकैमिकमें दवा चुनना आसान और सुनिश्चित है। ये बारह लवण निम्न हैं—

१. कैलकेरिया क्लोरिका, २. कैलकेरिया फास्फोरिका, ३. कैलकेरिया सल्फूरिका, ४. फैरम फास्फोरिकम्, ५. काली म्यूरिएटिकम्, ६. काली फास्फोरिकम्, ७. काली सल्फ्यूरिकम्, ८. मैग्नेशिया फास्फोरिकम्, ९. नेट्रम म्यूरिएटिकम्, १०. नेट्रम फास्फोरिकम्, ११. नेट्रम सल्फ्यूरिकम् और १२. साइलेशिया।

रोगीको दिया जानेवाला लवण इतना सूक्ष्म होना चाहिये कि वह शीघ्र शरीरके रेशोंमें मिल जाय। इसलिये लवणका अंश घटाकर उसे अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। ये दवाएँ जीभपर रखकर चूसकर प्रयोगमें लायी जाती हैं। बायोकैमिक औषधियाँ आयोलाइज़ेशनके सिद्धान्तपर कार्य करती हैं, अत: गर्म पानीमें घोलकर जीभपर एक-एक चम्मच प्रयोग करनेसे अधिक प्रभावशाली होती हैं। जहाँतक सम्भव हो ये दवाएँ खाली पेट प्रयोगमें लायी जानी चाहिये। औषध किसी साफ-सुथरे कागजपर बनानी चाहिये। टिकियाका प्रयोग भी कागजपर रखकर ही करना चाहिये, हाथसे नहीं। एक खुराकमें आयुके अनुसार एकसे चार टिकिया लेनी चाहिये। पानीके साथ लेनेके लिये १/४ टिकिया १० चम्मच गर्म पानीमें घोले तथा एक खुराकमें दो चम्मच ले। रोगीकी तीव्रताके अनुसार दिनमें चार खुराकसे लेकर पाँच मिनट या उससे कम समयमें दो-दो चम्मच दवाई दी जा सकती है।

इन दवाइयोंका एक और खास गुण है कि दूसरी प्रणालीकी दवाइयोंके चलते, इनका प्रयोग रोगीको कुछ भी हानि नहीं करता। ये दवाइयाँ पूर्णरूपसे हानिरहित हैं

और एक दिनके बच्चे, गर्भवती स्त्री तथा वृद्ध रोगीको बिना किसी डरके दी जा सकती हैं। ये दूसरी दवाइयोंके मुकाबले सस्ती भी हैं और बहुत कम मात्रामें प्रयोग की जाती हैं। साथ ही स्वादिष्ठ होनेसे बच्चे भी आसानीसे खा सकते हैं।

कुछ नुस्ख़े घरेलू प्रयोगके लिये दिये जा रहे हैं, जो आपातकालीन स्थितिमें बड़े ही लाभप्रद रहेंगे—

१. चोट लगनेपर जब खून बह रहा हो—फैरम फास० १२× का पाउडर चोटपर डाले, साथ ही टिकिया जीभपर रखे, तुरंत आराम मिलेगा।

२. बर्रे, ततैया, भौंरा आदि कीड़ोंके काटनेपर—नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३× की एक टिकिया पीसकर पानीमें पतला पेस्ट बनाकर, काटनेके स्थानपर लगाये। साथ ही टिकिया जीभपर रखे। तुरंत लाभ होगा।

३. रह-रहकर होनेवाले सिरदर्द, पेटदर्द या पेटमें मरोड़ होनेपर—मैग्नेशिया फास० ३× खूब गर्म पानीमें घोलकर दो-दो चम्मच ले।

४. साधारण बुखारमें—फैरम फास० १२×, काली म्यूरि० ३× तथा नेट्रम सल्फ० ३× मिलाकर ले।

५. दिलका दौरा पड़नेपर या लो ब्लडप्रेशर होनेपर—कैलकेरिया फास० १२×, काली फास० ३× और नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३×का मिश्रण गर्म पानीमें घोलकर दो-दो चम्मच ले, शीघ्र ही आराम हो जायगा।

६. आँखकी लालीमें—फैरम फास० १२× की टिकिया पीसकर डिस्टिल्ड वाटरमें घोलकर आँखमें डाले। टिकिया भी ले।

७. मुँहमें तथा जीभपर—छाले होनेपर काली म्यूरि-एटिकम् ३× और काली फास० ३× का पाउडर छालोंपर लगाये तथा इसीसे कुल्ला करे।

८. सिगरेटकी आदत छुड़ानेके लिये—कैलकेरिया फास० ३× और नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३× के मिश्रणको गर्म पानीमें घोल कर ले।

प्राचीन 'रोम' की चिकित्सा-पद्धति—'हिलियोथेरपी' एवं 'क्रोमोपैथी'

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम०डी०)

इटलीकी राजधानी 'रोम' अति प्राचीन नगर माना गया है। उसकी नींव 'पेलेटाईन' नामक पहाड़ीपर रहनेवाले एक देवता 'रोमुलस' ने डाली थी। उनके नामके आधे आदि शब्द 'रोमु' को लेकर इस शहरका नाम 'रोम' पड़ा।

रोमके सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० टिलनिका मानना है कि प्राचीन रोममें प्राय: ६०० वर्षतक कोई वैद्य ही नहीं था, वैद्यकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी; क्योंकि रोमन लोग सूर्यकिरणों, विविध रंगों तथा जल, वायु और मिट्टी एवं व्यायाम इत्यादिके सही उपयोगोंद्वारा अपना उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखते थे। उन दिनों रोमन-साम्राज्य विश्वमें महान् शक्तिसम्पन्न माना जाता था।

प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० रेम्सन कहते हैं कि 'अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखनेके लिये और दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये हमें प्रकृतिदेवीने असंख्य अमूल्य उपाय प्रदान किये हैं। फिर भी हम उनका सदुपयोग न कर विष-जैसी ओषधियोंका सेवन करते रहते हैं, विपुल धनराशि व्यय करते हैं और बदलेमें हानि ही प्राप्त करते हैं। क्या हमारे लिये यह शोचनीय बात नहीं है?'

रोमन भाषामें 'हिलियो' का अर्थ है 'सूर्य' और 'थेरपी' का अर्थ है 'चिकित्सा-पद्धति'। प्राचीन रोममें यह 'हिलियोथेरपी' अर्थात् सूर्य-चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय थी। इसी प्रकार सूर्य-किरणों एवं रंगोंद्वारा विविध प्रकारके रोगोंका निवारण करनेकी एक अनोखी पद्धति भी थी, जिसको क्रोमोपैथी (CHROMOPATHY) कहा गया है। 'क्रोमो' से तात्पर्य रंगसे है और 'पैथी' का तात्पर्य चिकित्सासे है।

पृथ्वीके सभी पदार्थोंमें रंग विद्यमान है। आकाशीय पदार्थ भी पृथ्वीपर रंगीन किरणें फेंकते हैं। जंगली पशु-पक्षी आदि जब बीमार पड़ जाते हैं, तब स्वास्थ्यकी प्राप्ति-हेतु वे अपने बीमार देहपर प्रात:कालके सूर्यकी किरणें पड़ने देते हैं। इस प्रकार सूर्यस्नान (SUN-BATH) करनेसे

वे बिना दवाइयोंके ही पुनः स्वास्थ्य-लाभ कर लेते हैं। दु:खकी बात है कि मनुष्य इस सूर्य-चिकित्सा-पद्धति (हिलियोथेरपी)-की उपेक्षा करते हैं।

विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ वेदमें सूर्यके विषयमें अनेकों ऋचाएँ (मन्त्र) विद्यमान हैं। सूर्योपासना तो प्राचीन भारतकी धरोहर ही है। वेदोंमें निहित गायत्री-मन्त्र सूर्यप्रार्थनापरक ही है, जिसमें साधक—उपासक सवितादेवसे '**धी**' (प्रज्ञा)-प्राप्तिकी महती इच्छा करता है। सविता या सावित्री तो सूर्यके ही सृजनकर्ता-रूपके शक्तिरूप हैं।

ऋग्वेद (६। ५१। २)-में कहा है कि—

'ऋजु मर्तेषु दृजिना च पश्यन्॥'

अर्थात् 'सूर्य मनुष्योंके अच्छे-बुरे कृत्योंको देखते हैं।' प्राचीन कालमें सूर्यके प्रकाशमें शपथ—कसम-(OATH) ली जाती थी और लोग पाप करनेसे डरते थे।

सूर्यको वेदमें स्थावर तथा जंगम-सृष्टिका आत्मा कहा है—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'। ऋग्वेद (७। ६३। ४)-में कहा है कि '**नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।**' अर्थात् 'सभीको निद्रासे जाग्रत् करनेवाले सूर्य ही हैं, उनकी प्रेरणासे लोग अपने-अपने विविध कार्योंमें लग जाते हैं।' ऋग्वेद (१। १६४। १०)-में कहा है कि 'सृष्टिके सभी प्राणियोंका जीवन सूर्यपर अवलम्बित है, सूर्य मनुष्योंकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक व्याधियाँ दूर करते हैं, सुस्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करते हैं। विशेषतः हृदयरोग, आँखका पीलियारोग, कुष्ठरोग, महारोग, बुद्धिमन्दता इत्यादि मिटाते हैं।'

अथर्ववेद (१३। ३। १०)-में सूर्यके सात नाम आये हैं, जो सूर्यकी सात रश्मियोंके द्योतक हैं। वेदमें सूर्यका एक नाम सप्तरश्मि भी है। वेदकालीन प्राचीन ऋषियोंने उत्कट तपस्याद्वारा सूर्यके विषयमें अन्वेषणकर विश्वके समक्ष यह सत्य प्रस्तुत किया है कि सूर्यमें सात रंग हैं।

विज्ञानी न्यूटनने सात रंगके चक्र (Wheel of seven colours)-का जो सिद्धान्त विश्वके समक्ष प्रस्तुत किया है, वह वास्तवमें वैदिक ऋषियोंका 'सप्तरश्मि' या 'सप्ताश्व-गवेषणा' ही है। विज्ञान कहता है कि सात रंगों—V I B G Y O R (वायोलेट, इंडिगो, ब्राउन, ग्रीन, यलो, ऑरेंज और रेड)-को एक चक्रपर अङ्कित कर उस चक्रको शीघ्रतासे घुमानेसे चक्रका रंग श्वेत (White) दिखायी पड़ता है। इसी कारण हमें सूर्य शुभ्र दीखता है।

सूर्यके ये सातों रंग हमारे स्वास्थ्यके लिये बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि हम प्रात:काल स्नान करनेके पश्चात् नित्य संध्या-वन्दन और सूर्य-स्नान करें तो प्रात:कालीन सूर्यकी रश्मियाँ हमें शारीरिक रोग-निवारक तथा बुद्धि-बलवर्धक प्रतीत होंगी।

सूर्यकिरण-चिकित्सा (हिलियोथेरपी)-से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

१-जहाँ-जहाँ सूर्यका प्रकाश पड़ता है, वहाँ-वहाँसे रोगकी निवृत्ति होती है।

२-सूर्य-किरणें निःशुल्क प्राप्त होती हैं।

३-सूर्य-किरणें आधुनिक ओषधियों-जैसी दुष्प्रभावी तथा दुर्गन्ध-भरी नहीं होतीं, प्रत्युत उनके सेवनसे शरीरमें स्फूर्ति तथा चैतन्यता आती है और आनन्दकी अनुभूति होती है। उनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

सूर्य-स्नान—सूर्य-किरणोंके सेवनसे हमारे देहके कौन-कौन, कैसे-कैसे रोगोंका निवारण होता है और अन्य क्या-क्या लाभ मिलते हैं, उसके विषयमें कहा गया है कि—

सूर्यतापः स्वेदवहः सर्वरोगविनाशकः।
मेदच्छेदकरश्चैव बलोत्साहविवर्धनः॥
दद्रुविस्फोटकुष्ठघ्नः कामलाशोथनाशकः।
ज्वरातिसारशूलानां हारको नात्र संशयः॥
कफपित्तोद्भवान् रोगान् वातरोगांस्तथैव च।
तत्सेवनान्नरो जित्वा जीवेच्च शरदां शतम्॥

अर्थात् सूर्यका ताप स्वेदको बढ़ानेवाला और सभी प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाला, मेदका छेदन करनेवाला, बल तथा उत्साहको बढ़ानेवाला है। यह दद्रु, विस्फोट, कुष्ठ, कामला, शोथ, ज्वर, अतिसार, शूल तथा कफ एवं वात और पित्त—इन त्रिदोषोंसे उत्पन्न रोगोंको दूर करनेवाला है। इसके सेवनसे मनुष्य रोगोंपर विजय प्राप्त करके दीर्घायु प्राप्त करता है।

सारांश यह है कि सभी प्रकारके रोगोंका निवारण सूर्य-किरणोंके सेवनसे होता है। शक्ति एवं उत्साहमें वृद्धि

होती है और शतायुकी प्राप्ति होती है।

सूर्यके प्रकाशसे हमें प्राण-तत्त्व तथा उष्णता—ये दोनों प्राप्त होते हैं, जो हमारे जीवनको स्वस्थ तथा दीर्घजीवी बनाते हैं। सूर्यकिरणद्वारा 'ओजोन वायु' उत्पन्न होती है, जो हमें और हमारी पृथ्वीको सुरक्षित रखती है। यह 'ओजोन' हमारी शक्तिको बढ़ाती है तथा रक्तको विशुद्ध करती है, हृदयको शक्तिशाली बनाती है और हड्डी तथा नाडी इत्यादिको सक्षम बनाती है।

प्राचीन रोम शहरमें कई स्थानोंपर Solarium (सोलेरियम)—सूर्य-उपचारगृह थे, जहाँ जाकर रोगी नि:शुल्क रोग-निवारण करवाते थे।

रोम शहरमें 'क्रोमो-हाईड्रोपैथी' के चिकित्सालय भी थे, जहाँपर रंगचिकित्साद्वारा रोगोंको दूर किया जाता था। यह पद्धति इस प्रकार है—

वर्षाका जल अथवा कूप-तडाग-निर्झरका विशुद्ध जल लाकर सप्तरंग (V I B G Y O R) -मेंसे भिन्न-भिन्न रंगकी बोतलोंमें भरे और बोतलका मुख बंद करके उसके ऊपर चिकनी मिट्टी लगा दे। इसके बाद उन रंगीन बोतलोंको 'सोलेरिया' (गच्ची)-में, सूर्य-किरणें जहाँ पड़ती हैं, वहाँपर रखे। इस प्रकार दो-चार दिनतक रखनेपर सूर्य-किरणोंके प्रभावसे रंगीन बोतलोंका जल जीवन-जल बन जाता है, उसमें रोगके निवारणकी शक्ति (Healing properties) आ जाती है। रोगीको ऐसा जल थोड़ा-थोड़ा पिलानेपर वह रोगमुक्त हो जाता है।

'क्रोमो-हाइड्रोपैथी' के निष्णात डॉ० लेविटका अभिमत है कि लाल (Red) रंगकी बोतलका जल शक्तिदायक (Tonic) है। ऐसा जल त्वचाके रोगोंको नष्ट करनेकी क्षमता रखता है। पीले (Yellow) रंगकी बोतलका जल बदहजमी (Constipation), पेशाबके दर्द इत्यादिको मिटाता है। नीले (Blue) रंगकी बोतलका जल असाध्य चर्मरोगका निवारण करता है, यह 'पोटाश परमैंगेनेट' से भी अच्छा काम देता है। संतरा-जैसे (Orange) रंगकी बोतलका जल भूखमें वृद्धि करता है तथा संधिवात दूर करता है। हरा (Green) रंगकी बोतलका जल आँखोंके रोग, इन्फ्लुएन्जा (शीतज्वर), सिफिलिस मिटाता है। जामुनी (Purple) रंगकी बोतलका जल रक्तकी शुद्धि करता है, रक्तके रोगोंका निवारण करता है, लीवर-पित्ताशयके रोग मिटाता है। वायोलेट पुष्पके (Violet) रंगकी बोतलका जल नाडियोंके रोगको मिटाता है।

रंगद्वारा रोग-निवारण-पद्धति (Colour-Theraphy)-के विषयमें कतिपय निष्णात डॉक्टरोंका स्वानुभव इस प्रकार है—१-डॉ० फिन्सेन (कोपेनहेगन) कहते हैं कि चेचक-शीतला (Smallpox)-के मरीजको लाल रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेपर तथा लाल रंगके कमरेमें रखनेपर कुछ ही दिनोंमें वह अच्छा हो जाता है।

२-डॉ० बेविट (लंडन) कहते हैं कि पक्षाघात (पैरेलिसिस)-के मरीजको लाल रंगका जल पिलाकर और लाल रंगसे रँगे कमरेमें रखकर रोगमुक्त किया था।'

३-डॉ० लूडविकका मानना है कि तीव्र ज्वरग्रस्त मरीज (हायफिवर)-को और मन्दबुद्धिके व्यक्तिको कभी भी लाल रंगके कमरेमें नहीं रखना चाहिये। मरीज अधिक बीमार हो जायगा।

४-डॉ० हेनरी (अमेरिका)-का कहना है कि 'सर्दी-जुकामसे ग्रस्त मरीजको, लीवरके रोगीको बदहजमी (कोन्स्टीपेशन)-के मरीजको, जोंडिक्स, किडनी, ब्रेन ट्रवल, ब्रोंकाईटिस, न्यूमोनिया, आँतके रोगी आदिको पीले रंग (Yellow-colour)-की बोतलका सूर्यकिरणवाला जल पिलानेपर तथा पीले रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर मरीज रोगमुक्त हो जाते हैं।'

५-डॉ० ई०ए० वोनकोटका कहना है कि चित्तभ्रम हुए (ब्रेन रिटार्टेड) मरीजको नीले (Blue) रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेसे और नीले रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर वह कुछ ही दिनोंमें अच्छा हो जाता है।

६-चक्षु-विशेषज्ञ डॉ० मूर (लंडन)-का कहना है 'हरे रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेसे आँखोंके मरीज और ज्ञानतन्तुके कमजोर पड़नेवाले मरीज अच्छे हो जाते हैं। हरे रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर ऐसे रोगोंके मरीज शीघ्र रोग-मुक्त हो जाते हैं।'

क्रोमोपैथी अर्थात् रंग-किरण-चिकित्सा

(डॉ० श्री डी० ए० जगताप)

'क्रोमो' का अर्थ है रंग और 'पैथी'का उपचार-पद्धति। क्रोमोपैथी-पद्धतिद्वारा कई प्रकारके रंगोंसे तरह-तरहके पुराने और नये रोगोंको ठीक किया जा सकता है।

सूर्यके प्रकाशमें कई तरहके रंग होते हैं जो हवाको शुद्ध करते हैं तथा वातावरण, पानी एवं जमीनी कीटाणुओंका नाश करते हैं। यह सब नैसर्गिक रूपसे नियमित होता रहता है।

प्राचीन ऋषि-मुनियोंकी सूर्योपासना और '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'-आदि वचनोंसे स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि सूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ होता है। नित्य-कर्म—संध्यामें मुख्य रूपसे सवितादेव—सूर्यनारायणकी आराधना होती आयी है। यूरोपमें जहाँ कुछ दिनोंतक सूर्य-दर्शन नहीं होता है, वहाँ आकाशमें सूर्यके दिखायी देनेपर लोग जल्दी-जल्दी खुले शरीरद्वारा सूर्यका प्रकाश लेते हैं।

सूर्य-प्रकाशमें तरह-तरहके रंग होते हैं, इनका मूल रंग निम्नलिखित है—

(१) लाल—इसका उपयोग उष्णता और उत्तेजना देनेके लिये होता है। इस रंगमें रजोगुणका आधिक्य होता है।

(२) पीला—इसका उपयोग चमक देने तथा शरीरके इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेके लिये होता है। इसमें तमोगुणकी प्रधानता रहती है।

(३) नीला—इस रंगका मुख्य काम है शरीरको ठंडा करना। यह सत्त्वप्रधान है।

—इन तीनों प्राथमिक रंगोंको त्रिगुणात्मक—त्रिमूर्ति कहते हैं। शेष रंग—नारंगी, हरा, परपल, जामुनी, गुलाबी, सुनहरा पीला, गाढ़ा नीला, इ० दुय्यम, अल्ट्रा व्हॉयलेट-स्वरूपके होते हैं। ये नौ रंग प्राथमिक रंगोंके मिश्रणसे बनते हैं।

रंगोंके क्रमशः गुण और धर्म

(१) लाल—प्रेम-भावनाका प्रतीक है।

(२) पीला—बुद्धिका प्रतीक है।

(३) नीला—सत्य तथा आशाका प्रतीक है।

मिश्रित रंगोंके गुण और धर्म

[१] नारंगी—आरोग्य, बुद्धि तथा दैवी महत्त्वाकांक्षाका प्रतीक है।

[२] हरा—आशा, समृद्धि और बुद्धिका प्रतीक है।

[३] परपल—यश और प्रसिद्धिका प्रतीक है।

[४] जामुनी—श्रद्धा, अशक्तपन तथा नम्रताका प्रतीक है।

[५] गुलाबी—दयाका प्रतीक है।

[६] सुनहरा पीला—बुद्धिका प्रतीक है।

[७] गाढ़ा नीला—दया तथा शान्तिका प्रतीक है।

[८] इंडीगो—संगीतका प्रतीक है।

[९] अल्ट्रा व्हॉयलेट—विविधताका, कार्यक्षमताका प्रतीक है।

—इनके अतिरिक्त काला तथा सफेद और ग्रे—ये तीन रंग और होते हैं। इन तीनों रंगोंके गुण और धर्म इस प्रकार हैं—

१-काला—अँधेरा, तिरस्कार तथा तमसाच्छन्न बुद्धिका प्रतीक है।

२-सफेद—सत्ता, शुद्धता एवं स्वच्छताका प्रतीक है।

३-ग्रे—दुःख तथा डरका प्रतीक है।

रंग-चिकित्साका कारण

लाल—तरह-तरहके रंग तरह-तरहकी बीमारियोंको ठीक कर सकते हैं, यदि उसे शरीरके खुले हुए भागोंमें लेन्ससे डाला जाय। इस दृष्टिसे लाल तथा गुलाबी आर्टरीके खूनको बढ़ाने, उष्णता-निर्माण आदिमें उपयोगी होता है।

पीला तथा नारंगी—ये नर्व्हस एक्शन बढ़ाते हैं तथा उष्णताका निर्माण करते हैं, सूजन दूर करके शक्तिका निर्माण करते हैं और यकृत् तथा अँतड़ियोंकी बीमारियोंमें अधिक उपयोगी होते हैं।

नीला तथा जामुनी—नर्व्हस—उत्तेजकता कम करते

हैं, सूजन तथा बुखार और तीव्र दर्दको कम करते हैं। मस्तिष्ककी बीमारियोंमें अधिक उपयोगी होते हैं।

हरा—बुखार, स्त्री-सम्बन्धी रोग, लैंगिक तथा नीचेके मज्जातन्तु तथा नितम्ब—इनके दर्दके लिये तथा कैन्सर और अल्सर एवं जननेन्द्रियके लिये उपयुक्त होता है।

परपल—अशुद्ध रक्तको शुद्ध करने, जठर, यकृत्, स्प्लीन, नर्व्हस-सिस्टमके लिये उपयुक्त है।

दैनिक जीवनमें क्रोमोपैथीका उपयोग

(१) लाल तथा गुलाबी सब्जियाँ और फल उष्ण होते हैं, ये टॉनिकके रूपमें—कमजोरीमें उपयोगी पड़ते हैं।

(२) पीले तथा नारंगी रंगकी सब्जियाँ और फल बद्धकोष्ठता, वायु-संधिवात तथा मूत्ररोगमें उपयोगी हैं।

(३) नीला, इंडीगो, जामुनी तथा जामुनी सब्जियाँ और फल ठंडे होनेके कारण निद्रानाशमें, नींद न आनेमें, जुलाब और बुखार इत्यादिमें उपयोगी हैं।

(४) हरी सब्जियाँ तथा फल—ये मूत्र तथा लैंगिक बीमारियोंमें उपयोगी होते हैं।

पानी—ठंडा पानी सूर्यप्रकाशमें दो-तीन घंटा रखनेसे सर्दी, संधिवात, नर्व्हस रोग आदिमें उपयोगी होता है।

भोजन—लाल रंगमें अन्न चार्ज करनेपर यह शरीरके अशक्तपन तथा फीकापनमें उपयोगी होता है। पीले रंगसे चार्ज करनेपर बद्धकोष्ठता दूर होती है। नीले रंगसे चार्ज करनेपर वह भोजन जुलाब, नर्व्हसनेस, नींद न आनेमें उपयोगी होता है।

कपड़े—सभी ऋतुओंमें सफेद कपड़े पहननेसे शरीर नीरोग रहता है। नीली पगड़ी या टोपी पहननेपर सूर्यके उष्मासे होनेवाली तकलीफ कम होती है। अशक्त तथा ठंडे प्रकृतिके व्यक्तियोंको लाल कपड़े पहनने चाहिये। बद्धकोष्ठता तथा यकृत्की तकलीफ होनेपर पीला कपड़ा पहनना चाहिये। बार-बार सर्दी होनेवालोंको सफेद तथा पतले कपड़े पहनने चाहिये और धूपमें घूमना चाहिये। त्वचाकी बीमारीवाले व्यक्तियोंको काला कपड़ा नहीं पहनना चाहिये।

तेल—लाल रंगसे तेल चार्ज करनेपर मालिश करनेसे पक्षाघात या संधिवातकी बीमारीमें लाभ होता है। पीले तथा नारंगी रंगसे चार्ज करनेपर और उसे पीनेसे जुलाब होने (पेट साफ होने), यकृत् तथा स्प्लीनकी बीमारीमें उपयोगी होता है। नीले तथा जामुनी रंगसे चार्ज करनेपर बाल झड़ने, बालोंके असमयमें पकने, जुआँ होने तथा सिरदर्द होनेमें फायदा होता है। हरे रंगसे चार्ज करनेपर त्वचाकी बीमारियों तथा गजकर्ण आदिमें लाभ होता है।

क्रोमोपैथी-उपचारकी पद्धतिसे सभी प्रकारकी पुरानी तथा नयी बीमारियाँ ठीक होती हैं, विशेषतः स्पॉन्डिलाईटिस, आर्थ्राइटिस, संधिवात, सर्दी, ब्राँकाइटिस, दमा, कानमें स्राव होना या कान दर्द करना, आँखकी विभिन्न बीमारियों, आधा शीशी-माइग्रेन, ॲसीडीटी, अल्सर, सिरदर्दके सभी प्रकार, टॉन्सील, पचनेन्द्रियोंकी बद्धकोष्ठता, जुलाब, डिसेंट्री, गजकर्ण (दाद), सोरायसीस इत्यादि त्वचाकी बीमारियाँ, नर्व्हसनेस मानसिक बीमारियों, उदासीनता, श्वेत प्रदर, अन्धत्व, स्तनके गाँठ, स्त्रियोंके मासिक धर्मकी सभी शिकायतों, छोटे बच्चोंकी सभी प्रकारकी बीमारियों आदिपर भी यह उपचार-पद्धति नियमित रूपसे लेनेपर लाभ पहुँचाती है।

क्रोमोपैथीकी उपयोगिता

क्रोमोपैथी औषधियोंका जहरीला उपयोग नहीं होता तथा इनमें रिएक्शन (दुष्प्रभाव) भी नहीं होता है।

बेहोश करनेके लिये ऐनस्थियाकी आवश्यकता नहीं पड़ती। चीर-फाड़ न होनेसे खून नहीं निकलता, उसी प्रकार जख्मका घाव भी नहीं रहता।

उपचारके समय न तो दर्द होता है और न किसी प्रकारकी तकलीफ ही होती है।

दवाकी उपाय-योजना जिस प्रकार एकदम सरल, सीधी तथा निसर्गके नियमोंके साथ रहती है, उसी प्रकार इसका लाभ भी अवश्य ही मिलता है।

एक्यूप्रेशरका इतिहास*

(डॉ० श्रीआर०के० शर्मा)

कोई भी मनुष्य अस्वस्थ रहना नहीं चाहता; किंतु मनुष्यको रोग होते ही क्यों हैं? रोग होनेके प्रमुख रूपसे दो कारण होते हैं—(१) मनुष्यकी लापरवाही, गलत रहन-सहन, अस्वस्थता, असंतुलित आहार, शरीरके लिये हानिकारक पदार्थोंका सेवन, मानसिक तनाव, भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, दैनिक व्यायाम न करना, बीड़ी-सिगरेट, शराब-गुटखा आदिका सेवन-जैसी हानिकारक आदतें तथा देर राततक टी०वी० देखना, पार्टियोंमें भाग लेना तथा प्रात:काल देरसे उठना-जैसी आदतोंके चलते बीमारियाँ शरीरमें अपना घर बना लेती हैं। (२) व्यक्तिका स्वयंपर नियन्त्रण नहीं होता, जैसे प्रदूषण, संक्रमण, चोट लगना, अंग-भंग हो जाना, उम्रके साथ होनेवाली समस्याएँ तथा आनुवंशिक या जन्मजात रोग आदि।

इस प्रकार यह तो निश्चित है कि मानव-शरीर किसी-न-किसी प्रकार रोगोंसे घिरा रहता है। यह प्रक्रिया मानव-सभ्यताकी शुरुआतके साथ ही चली आ रही है। इसी क्रममें रोगोंको ठीक करनेके लिये, प्राचीन कालसे ही अनेक चिकित्सापद्धतियाँ अपनायी जाती रही हैं और नित्य नयी-नयी खोजें तथा अनुसंधान भी होते रहे हैं। शोधकर्ताओंका मत है कि मानवद्वारा रोगोंके निदानहेतु अपनायी जानेवाली चिकित्सापद्धतियोंमें एक्यूप्रेशर-पद्धतिका विशिष्ट स्थान है।

इस चिकित्सापद्धतिके उद्‌भवके बारेमें विद्वानोंकी दो राय है—भारतीय विद्वान् मानते हैं कि इस पद्धतिकी शुरुआत भारतवर्षमें लगभग पाँच हजार वर्षपूर्व हो गयी थी, जब कि चीनी विद्वानोंका मत है कि लगभग छ: हजार वर्षपूर्व इस चिकित्सापद्धतिकी शुरुआत चीनमें हुई। यह कह पाना मुश्किल है कि यह ज्ञान भारतसे चीन गया या चीनसे भारत आया था, किंतु इस ज्ञानको वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूपतक पहुँचानेका श्रेय निस्संदेह चीनी विद्वानोंको ही है। चीनमें एक्यूप्रेशरको सर्वाधिक मान्यता प्राप्त चिकित्सापद्धतिके रूपमें सदियोंसे अपनाया जाता रहा है। चीनके प्राचीन ग्रन्थोंमें एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चरके उल्लेख मिलते हैं। डॉ० चु० लिएनद्वारा लिखित 'चेन चियु सुएह' (अर्वाचीन एक्यूपंक्चर) नामक ग्रन्थ, चीनमें इस विषयका अधिकृत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें एक्यूप्रेशरके ६६९ बिन्दुओंकी सूची दी गयी है। कुछ अन्य चार्टोंमें १००० बिंदु दर्शाये गये हैं। किंतु दैनिक प्रयोगमें १००-१२० बिंदु ही अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। 'एक्यू' का अर्थ है बिंदु तथा 'प्रेशर' का अर्थ है दबाव अर्थात् दर्दवाले बिंदुओंपर दबाव देना ही एक्यूप्रेशर है।

छठी शताब्दीमें इस पद्धतिका ज्ञान बौद्धभिक्षुओंद्वारा चीनसे जापान पहुँचा। जापानमें इस पद्धतिको शिआत्सु (SHIATSU) कहते हैं। शिआत्सु दो अक्षरोंसे मिलकर बना शब्द है—शि (SHI) अर्थात् उँगली तथा आत्सु (ATSU) अर्थात् दबाव। इस पद्धतिमें सिर्फ हाथके अँगूठों तथा उँगलियोंके साथ दबाव दिया जाता है।

वैज्ञानिक शोधोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि शरीरकी सतह (त्वचा)-पर मौजूद कुछ निश्चित बिंदुओंको दबानेसे शरीरके भीतरी अङ्गोंपर प्रभाव उत्पन्न कर सम्बन्धित-अङ्गका रोग दूर किया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर प्राचीन भारतीय मालिशका ही परिष्कृत रूप है जिसका अर्थ है—पैरों, हाथों, चेहरे तथा शरीरके कुछ खास केन्द्रों (बिन्दुओं)-पर दबाव डालना। इन बिंदुओंको रिफ्लेक्स सेंटर (Reflex Centre) अर्थात् प्रतिबिम्ब-केन्द्र भी कहते हैं। इसीलिये इस विज्ञानको रिफ्लेक्सोलॉजीके नामसे भी जाना जाता है। पैर, हाथ, चेहरे या कानपर पाया जानेवाला प्रत्येक प्रतिबिम्ब-केन्द्र मटरके दानेके बराबर होता है। पीठ तथा छातीपर भी कुछ प्रतिबिम्ब-केन्द्र होते हैं।

एक्यूप्रेशर-पद्धतिका आधार दबावयुक्त गहरी मालिश ही है। शोधकर्ताओंका मानना है कि दबावके साथ मालिश करनेसे रक्तसंचार ठीक हो जाता है, जिससे शरीरकी शक्ति और स्फूर्ति बढ़ जाती है। शरीरकी शक्ति बढ़नेसे विभिन्न अङ्गोंमें जमा हुए अवाञ्छनीय तथा विषपूर्ण पदार्थ पसीना, मूत्र एवं मलद्वारा शरीरसे बाहर निकल जाते हैं और शरीर

* मनोज पाकेट बुक्ससे प्रका० 'एक्युप्रेशर-चिकित्सा'-से साभार।

नीरोग हो जाता है।

बीसवीं शताब्दीतक एक्यूप्रेशरकी ख्याति चीनमें भी कोई अधिक नहीं थी। सत्तरके दशकके आसपास इसने चीनमें पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त की। इसके बाद धीरे-धीरे विश्वके अन्य देशोंमें भी यह विज्ञान फैलने लगा। अमेरिकाके लोग अपने-आपको वैज्ञानिक रूपसे अधिक विकसित मानते हैं, इसलिये बिना तथ्योंके कोई बात स्वीकार नहीं करते। सन् १९७० ई० तक अमेरिकाने एक्यूप्रेशरको मान्यता नहीं दी थी। सन् १९७१ ई०में तत्कालीन अमेरिकाके राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन चीनकी यात्रापर गये। उनके साथ गये पत्रकारोंके प्रतिनिधिमण्डलमें जेम्स रस्टन नामक संवाददाता भी थे। चीन पहुँचनेके कुछ घंटे बाद ही रस्टनको अपेंडिसाइटिसका दर्द उठा। अपेंडिक्सपर सूजन बढ़ने या उसके फट जानेसे अनेक विषमताएँ खड़ी हो सकती थीं, अतः तुरंत ऑपरेशन किया गया, किंतु ऑपरेशनके बाद भी दर्द दूर नहीं हुआ। तब रस्टनका उपचार एक्यूपंक्चर तथा एक्यूप्रेशरसे किया गया। (एक्यूपंक्चरमें उपचार चाँदीकी सुइयोंसे करते हैं।) इस उपचारसे कुछ मिनटोंमें ही जेम्स रस्टनको आराम हो गया। इस उपचारपद्धतिसे रस्टन ही नहीं, अमेरिकाके राष्ट्रपति निक्सन भी प्रभावित हुए। इसके बाद यह विज्ञान समस्त यूरोपमें तेजीसे फैलने लगा।

इस पद्धतिकी सफलताका प्रमुख कारण यह है कि बिना औषधि तथा ऑपरेशनके अनेकों कष्टप्रद रोग कुछ ही समयमें ठीक हो जाते हैं। इसके अलावा अनेक रोगोंको दूर रखनेमें भी यह चिकित्सा-पद्धति मदद करती है।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन—W.H.O)-ने एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर-चिकित्सा-पद्धतियोंकी उपयोगिताको स्वीकारते हुए निम्नलिखित रोगोंमें इस चिकित्सापद्धतिको अधिक कारगर पाया है—सर्दी, जुकाम, टान्सिलकी सूजन, साइनुसाइटिस, ब्राँकाइटिस, दमा, आँखोंका दर्द, मोतियाबिंद, दाँतोंका दर्द, जीभ तथा मुँहके छाले, गलेकी सूजन और पीडा, पेटमें गैस बनना, एसिडिटी, माइग्रेन तथा अन्य सिरदर्द, नाडियोंका दर्द, लकवा, मिनीयर्स डिजीज, सियेटिका, पीठका दर्द, घुटनोंका दर्द, कंधोंकी अकड़न, बिस्तरमें मूत्रत्याग, आँतोंके घाव, पेचिश, क़ब्ज़ आदि।

एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चरमें अन्तर

एक्यूप्रेशर लेटिन शब्द एकस (Acus)-से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है सूई (Needle) तथा प्रेसर (Pressure)-का शाब्दिक अर्थ है दबाव। किंतु व्यावहारिक रूपसे एक्यूप्रेशरका अभिप्राय सूइयोंद्वारा किये गये उपचारसे नहीं है। सूइयोंद्वारा किये गये उपचारको एक्यूपंक्चर (Acupuncture) कहते हैं।

हालाँकि एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर दोनों ही चीनी पद्धतियाँ हैं, किंतु दोनोंमें मुख्य अन्तर यह है कि एक्यूपंक्चरमें विशेष प्रकारकी चाँदी या सोनेकी बनी सूइयाँ, एक खास ढंगसे शरीरके विभिन्न भागोंपर लगायी जाती हैं। एक्यूप्रेशरपद्धतिमें सूइयोंके स्थानपर हाथोंके अँगूठों, उँगलियों तथा विशेष उपकरणोंकी सहायतासे रोगसे सम्बन्धित केन्द्रोंपर मालिशयुक्त दबाव डाला जाता है। शरीरके हाथ-पैर, कान तथा चेहरेपर ही अधिसंख्य एक्यूबिंदु (प्रतिबिम्ब-केन्द्र) होते हैं। वैसे पेट, पीठ, छाती, कंधे तथा कूल्हों आदि अङ्गोंपर भी प्रतिबिम्ब-केन्द्र होते हैं।

एक्यूप्रेशर-पद्धतिके लाभ

एक्यूप्रेशर-पद्धति एक स्वयं चिकित्सापद्धति है, जिसकी सहायतासे आप अपने सामान्य रोगोंका सफलतापूर्वक उपचार कर सकते हैं। इस पद्धतिके प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

१-कमर, घुटने, कंधे, कोहनी तथा सिरदर्दके अलावा अन्य कहीं, किसी भी अङ्गपर दर्द होनेकी स्थितिमें इस पद्धतिकी सहायतासे दर्द दूर करनेमें सहायता मिलती है।

२-मनकी उद्विग्नता, क्रोध, बेचैनी, निराशा तथा ईर्ष्या आदिको दूर करनेमें यह पद्धति बहुत लाभप्रद है। इसे एक प्रयोगद्वारा सिद्ध भी कर सकते हैं, जैसे मनमें किसी भी प्रकारकी अशान्ति होनेपर एक्यूप्रेशर-उपचार अपनायें और ई०ई०जी (इलेक्ट्रोएनसिफेलोग्राम) करवायें। इससे ज्ञात होगा कि उसमें डेल्टा और थीटा तरंगोंकी तीव्रता तथा आवृत्ति कम हो गयी है। इसका अर्थ है कि मन शान्त हो चुका है।

३-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे स्नायुओं (नाडीतन्त्र)-को उत्तेजित करनेमें मदद मिलती है। इसके प्रभावसे पोलियो तथा लकवा-जैसे रोगोंको दूर करनेमें मदद मिलती है।

४-इससे शरीरकी प्राकृतिक रोग-निवारणशक्तिमें बढ़ोत्तरी होती है। इसके प्रभावसे हृदयकी धड़कन, श्वासक्रिया, उपापचय, रक्तचाप आदि सामान्य रहते हैं, जिससे व्यक्ति सदैव स्वस्थ तथा स्फूर्तिमान् बना रहता है।

५-एक्यूप्रेशरके उपचारसे लाल रक्तकोशिकाएँ, श्वेत-

रक्तकोशिकाएँ तथा शरीरका तापमान आदि—ये सब सामान्य स्तरपर रहते हैं और शरीर नीरोगी रहता है।

६-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे संधियों और स्नायुओंको मजबूत किया जा सकता है।

७-हृदयशूल-जैसी आपातकालीन परिस्थितियोंमें चिकित्सकके आने या रोगीको अस्पतालतक पहुँचानेसे पहलेतक एक्यूप्रेशर-उपचार अपनाकर रोगीकी जानका खतरा बखूबी टाला जा सकता है।

८-इस पद्धतिद्वारा समस्त ग्रन्थियोंका कार्य नियमित हो जाता है।

९-एक्यूप्रेशरद्वारा आन्तरिक अङ्गोंके साधारण कार्यमें तेजी लायी जा सकती है।

१०-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे त्वचामें स्फूर्ति पैदा होती है।

११-एक्यूप्रेशर एक हानिरहित पद्धति है, जिसे अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंके साथ भी अपनाया जा सकता है।

एक्यूप्रेशरकी सीमाएँ

१-गुर्देकी पथरी तथा पके मोतियाबिंदमें एक्यूप्रेशरसे कोई विशेष लाभ नहीं मिलता।

२-कैंसर, हड्डीके टूटने (फ्रैक्चर) या शिजोफ्रेनिया-जैसे मानसिक रोगोंमें एक्यूप्रेशर अधिक उपयोगी नहीं रहता।

३-उपर्युक्त रोगोंके अलावा आन्त्र-अवरोध-जैसी शल्यक्रियाकी स्थितियोंमें भी एक्यूप्रेशर अधिक कारगर नहीं रहता।

एक्यूप्रेशरके सिद्धान्त

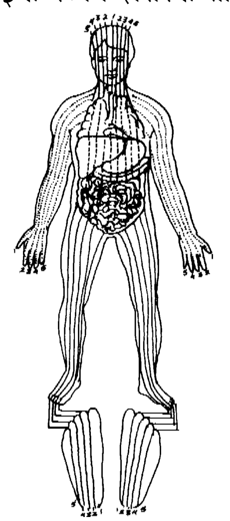
प्रत्येक विज्ञानको कसौटीपर कसनेके कुछ सिद्धान्त होते हैं। एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धति भी कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंके आधारपर कार्य करती है।

एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धतिका प्रथम सिद्धान्त यह है कि मनुष्यको शारीरिक तथा भावात्मक रूपसे अलग-अलग नहीं, वरन् एक अभिन्न इकाई माना गया है।

इस पद्धतिका दूसरा सिद्धान्त यह है कि रक्तवाहिकाओं तथा नर्वस-सिस्टम (स्नायुसंस्थान)-की समस्त छोटी-बड़ी नाडियोंके आखिरी हिस्से हाथों तथा पैरोंमें होते हैं अर्थात् हाथों तथा पैरोंकी नाडियोंका शरीरके सारे अङ्गोंसे सम्बन्ध है। यह जानना अब कठिन नहीं रह गया है कि कौन-सी नाडी मस्तिष्कसे सम्बन्धित है और कौन-सी नाडी हृदयसे।

इस तथ्यको आसानीसे समझनेके लिये सम्पूर्ण शरीरको सिरसे लेकर पैरतक लम्बाईमें दस भागोंमें (सिरके मध्य हिस्सेसे दाहिनी तरफ पाँच भाग तथा सिरके मध्य हिस्सेसे बायीं तरफ पाँच भाग) बाँटा गया है अर्थात् पैरों तथा हाथोंकी अँगुलियोंको आधार मानकर सिरतक सारे शरीरमें दस समानान्तर रेखाएँ खींची जायँ तो यह आसानीसे पता चल जाता है कि शरीरका कौन-सा अङ्ग हाथों या पैरोंके किस भागसे सम्बन्धित है।

लम्बाईके रूपमें शरीरके तीन भाग



इसी प्रकार चौड़ाईमें भी शरीरको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है। जिससे हमें रोग-प्रभावित अङ्गके हाथ या पैरपर स्थित प्रतिबिम्बकेन्द्र (एक्यूबिंदु)-का पता चल जाता है।

चौड़ाईके रूपमें शरीरके तीन भाग



इसी प्रकार चेहरे तथा कानके रिफ्लेक्स सेंटर्सकी भी जानकारी हो जाती है।

एक्यूप्रेशर और रोगके कारण

एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धतिके अनुभवी चिकित्सकों तथा शोधकर्ताओंके अनुसार रोगोंके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं—

१-मनुष्य रोगी तभी होता है जब रोगसे सम्बन्धित अङ्गविशेषमें रक्तका प्रवाह ठीक नहीं रहता या रक्तवाहिकाओंमें कोई विकृति आ जाती है अथवा रक्तवाहिकाएँ सिकुड़ जाती हैं। ऐसी अवस्थामें शरीरका वह अङ्ग ठंडा या गर्म हो जाता है। इन दोनों ही स्थितियोंमें बीमारियाँ पनपने लगती हैं। एक्यूप्रेशर-चिकित्साद्वारा सम्बन्धित अङ्गपर आवश्यक प्रेशर देनेसे रोग दूर करनेमें सहायता मिलती है।

२-नर्वस-सिस्टम (नाडीसंस्थान)-की किसी नसमें विकृति या सिकुड़न आ जानेके कारण भी रोग पनपने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें प्रभावित अङ्गसे सम्बन्धित एक्यूबिंदुपर विधिपूर्वक दबाव देनेसे रोग दूर होने लगते हैं।

चीनी चिकित्सकोंकी मान्यताके अनुसार रोगग्रस्त होनेपर कई केन्द्रोंपर कुछ खास किस्मके विकार पैदा हो जाते हैं। ऐसेमें प्रभावित केन्द्र ठंडा या गरम होनेके स्थान चेतनाशून्य, कठोर, चिकने, दर्दयुक्त या धब्बेदार हो जाते हैं। इस प्रकार शरीरका प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और शरीर रोगग्रस्त हो जाता है।

भारतीय शास्त्रों तथा आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा-सिद्धान्तोंके अनुसार हमारा शरीर पाँच तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशसे बना है। इन पाँचों तत्त्वोंका संचालन शरीरकी अंदरूनी ऊर्जा करती है, जिसे बायो एनर्जी (Bio-Energy) कहते हैं। सुप्रसिद्ध एक्यूप्रेशर-चिकित्सक एफ० एम० होस्टनने 'द हीलिंग बेनिफिट्स ऑफ एक्यूप्रेशर'में लिखा है कि 'हाथ-पैर या शरीरके अन्य भागोंपर स्थित जो केन्द्र दबानेसे पीडा करते हैं, वहाँसे सम्बन्धित अङ्गोंकी बिजली 'लीक' कर जाती है (अर्थात् शरीरके अंदर काम करनेके स्थानपर शरीरसे बाहर निकलने लगती है), जिससे सम्बन्धित अङ्गमें किसी-न-किसी कारण विकार आ जाता है। इन प्रतिबिम्ब-केन्द्रोंपर दबाव देनेसे शरीरकी एनर्जी (शक्ति)-का प्रवाह सामान्य हो जाता है और प्रभावित अङ्गके विकार दूर होने लगते हैं।

वैज्ञानिक कसौटीपर एक्यूप्रेशर

एक्यूबिन्दुओं (प्रतिबिम्बकेन्द्रों)-को दबानेसे रोगनिवारक प्रभाव किस प्रकार उत्पन्न होता है, इस बातको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेके लिये अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। वैज्ञानिक प्रयोगोंद्वारा सिद्ध हो चुके दो सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—डॉ० फिलिक्स मॅनका क्यूटेनो विसरल रिफ्लेक्स सिद्धान्त तथा डॉ० किम बांगहानका जीव विद्युत् बांगहॉन कॉर्पसल सिद्धान्त।

क्यूटेनो विसरल रिफ्लेक्स सिद्धान्त

हमारे शरीरकी समस्त क्रियाओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—ऐच्छिक क्रियाएँ तथा अनैच्छिक क्रियाएँ। एक तीसरे प्रकारकी क्रियाएँ और होती हैं, जिन्हें 'रिफ्लेक्स क्रियाएँ' कहते हैं।

ऐच्छिक क्रियाओंमें खाना, बात करना, सोचना आदि हैं तो अनैच्छिक क्रियाओंमें भोजनका पाचन, मल-मूत्र-निर्माण, रक्तपरिभ्रमण, हृदयका संकुचन आदि प्रमुख हैं। शरीरकी ये दोनों क्रियाएँ मस्तिष्क एवं इच्छाशक्तिका अतिक्रमण कर अपने-आप होती हैं। उदाहरणके तौरपर यदि हाथ किसी अत्यन्त गर्म वस्तुका स्पर्श कर लेता है तो वह सेकंडके सौंवे हिस्सेमें अपने-आप खिंच जाता है। यही प्रक्रिया अचानक साँपके पैर या हाथसे छू जानेपर हो सकती है। महिलाओंमें चूहे या कॉकरोचके पाससे गुजर जानेमात्रसे ये क्रियाएँ हो जाती हैं। हाथ या पैरके खिंच जानेके बाद हमें वास्तविकताका खयाल आता है। ऐसी क्रियाको प्रतिक्षिप्त-क्रिया या 'रिफ्लेक्स क्रिया' कहते हैं। यह आत्मरक्षाके लिये होनेवाली क्रिया है।

रिफ्लेक्सोलॉजीकी यह क्रिया एक्यूप्रेशरको समझनेमें बहुत मदद करती है। डॉ० फिलिक्स मॅनके मतानुसार एक्यूप्रेशर भी एक प्रकारकी रिफ्लेक्स क्रिया ही है। शोधोंद्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि यदि कोई अङ्ग रोगग्रस्त हो जाता है तो तुरंत ही उसका रिफ्लेक्स असर कुछ विशेष बिंदुओंपर पड़ता है, जिन्हें रिफ्लेक्स-सेंटर कहते हैं और तुरंत ही उन बिंदुओंमें दर्द होने लगता है। दर्दयुक्त बिंदुओंको दबाने या

सूईके द्वारा छेदनेसे विद्युत्-तरङ्गें उत्पन्न होती हैं। ये तरङ्गें पलभरमें ही सम्बन्धित अङ्गतक पहुँच जाती हैं और रोगको ठीक करनेकी क्रिया प्रारम्भ कर देती हैं।

इस प्रकार स्वायत्त नाडी-संस्थान (Autonomous Nervous System—ज्ञानतन्त्र) ही एक्यूप्रेशरकी प्रभावोत्पादकताका प्रमुख सिद्धान्त है। जीवनी शक्तिका तीव्र संवहन नाडी-संस्थानके द्वारा ही सम्भव है। पश्चिमी शोधकर्ताओंका भी मत है कि जीवनीशक्ति स्वायत्त नाडी-संस्थानके सिम्प्येपेटिक तथा पैरा सिम्पेथिटिक मार्गोंसे बहती है।

बांगहॉन कॉर्पसल सिद्धान्त

शताब्दियोंसे कोरियाके लोगोंकी यह मान्यता रही है कि शरीरमें जीवनी शक्तिका वाहक और स्वतन्त्र कार्यप्रणालीवाला क्युंगराक नामका एक तन्त्र होता है। इस मान्यताको डॉ० बांगहॉनने अपने प्रयोगोंद्वारा सिद्ध कर दिखाया। सन् १९६३ तथा सन् १९६५ में उत्तरी कोरियाके प्योंगयांग नामक शहरमें आयोजित 'साइंटिफिक सिम्पोज़ियम' में प्रोफेसर डॉ० किम बांगहॉनने इस संदर्भमें अपना शोधपत्र भी पढ़ा, जिससे एक्यूप्रेशरपद्धतिको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेमें सफलता हासिल हुई।

त्वचाकी सतहपर स्थित एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर बिंदुओंके ठीक नीचे विशिष्ट प्रकारके कोषोंको ढूँढनेमें डॉ० बांगहॉन सफल हुए, जो कि पूर्वमें अज्ञात थे। इन कोषोंको उन्हींके नामपर बांगहॉन-कोष नाम दिया गया है। ये कोष अत्यन्त बारीक नलिकाओंसे जुड़े रहते हैं। इन नलिकाओंका चित्र बनानेपर जो तस्वीर उभरती है, वह 'मेरीडियन'-जैसी ही होती है। शरीरकी सतहपर और शरीरके अंदरके बांगहॉन-कोष कुछ भिन्न होते हैं। इसी प्रकार अन्य ज्ञातकोषोंसे भी इन बांगहॉन कोषोंकी रचना बिलकुल भिन्न होती है। इसी प्रकार इन कोषोंको जोड़नेवाली नलिकाओंकी संरचना, अन्य ज्ञात नलिकाओंकी संरचनासे भिन्न होती है। वास्तवमें बांगहॉन कोषोंसे बननेवाली इन नलिकाओंको ही 'मेरीडियन' कहते हैं। डॉ० बांगहॉनके मुताबिक उपर्युक्त कोषों तथा नलिकाओंके माध्यमसे ही जीवनी शक्ति प्रवाहित होती है।

डॉ० बांगहॉनने बांगहॉन कोषोंसे बनी नलिकाओंके शरीरमें कुल चौदह मेरीडियन बताये हैं। दो-दो जोड़ियोंवाले बारह तथा अलग-अलग दो (कुल चौदह) मेरीडियन होते हैं। ये सभी मेरीडियन शरीरके महत्त्वपूर्ण अङ्गों और तन्त्रोंसे जुड़े होते हैं। इस सिद्धान्तसे यह भी सिद्ध होता है कि शरीरमें जो बल होता है, उसे दो भागोंमें बाँट सकते हैं—यांग-बल तथा यिन-बल। मेरीडियन भी इन्हीं बलोंके आधारपर कार्य करते हैं। यांग और यिन-बलोंमें रुकावट आनेपर ही रोग उत्पन्न होते हैं।

एक्यूप्रेशर बिन्दुओंको दबानेपर उसका सीधा प्रभाव उपर्युक्त बांगहॉन कोषोंपर पड़ता है और जीवनीशक्तिके परिभ्रमणमें आयी हुई रुकावट दूर होती है। इस प्रकार यांग तथा यिन-बलोंका संतुलन भी बना रहता है।

एक्यूप्रेशर-चिकित्सा

(डॉ० श्रीबृजेशकुमारजी साहू एम्०एस्-सी०, पी-एच्०डी०, आयुर्वेदरत्न)

एक्यूप्रेशर ऐसी चिकित्सा-पद्धति है, जिससे रोग दूर ही नहीं किये जाते, बल्कि जड़से मिटा देनेका प्रयत्न किया जाता है।

एक्यूप्रेशर—एक भारतीय पद्धति

यह पद्धति प्राचीन भारतीय पद्धतियोंमेंसे एक है, इस पद्धतिका उल्लेख सुश्रुतसंहितामें भी मिलता है तथा हमारे प्राचीन आयुर्वेदाचार्य इसके जानकार थे। हमारे ऋषि-मुनि, साधु-संत एवं गृहस्थ अपने दैनिक जीवनमें इस पद्धतिको अपनाकर अपना तथा अपने शिष्योंका सहजमें उपचार किया करते थे।

ध्यान, योग एवं विभिन्न आसनोंके परिप्रेक्ष्यमें एक्यूप्रेशर आंशिकरूपसे हमारे सम्मुख आता है। प्राचीन कालसे महिलाओंका शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें आभूषण पहनना, गृहकार्योंमें सहयोग तथा सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजोंके पीछे भी इसी पद्धतिका हाथ माना गया है। स्त्रियोंका हाथमें कड़ा पहनना, कपड़े धोना, पैरोंमें पायल पहनना, गलेमें हार, ललाटपर चमकती बिंदिया तथा दैनिक कार्यों—जैसे कुँएसे पानी खींचना, झुककर वृद्ध जनोंके

चरण-स्पर्श करना, वन्दना करना आदि भी एक्यूप्रेशरकी परिधिमें आते हैं। ऐसे कार्योंसे भारतीय संस्कृतिका निर्वाह तो होता ही है, साथमें शरीरकी विभिन्न मुद्राओंसे भी हमारा शरीर स्वस्थ रहता है। भारतमें लगभग दस वर्षोंसे इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रति व्यापक चेतना जाग्रत् हुई है।

एक्यूप्रेशर क्या है?

सामान्यरूपसे मानव-शरीरमें स्थित निश्चित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोग-निराकरण करनेकी पद्धतिको एक्यूप्रेशर-पद्धति कहा जाता है। एक्यूप्रेशर दो शब्दोंसे मिलकर बना है। 'एक्यू' का साधारण अर्थ है 'तीक्ष्ण' और 'प्रेशर' का अर्थ है 'दबाव'। शरीरके निश्चित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोगको नष्ट करनेकी इस पद्धतिके द्वारा पाँवके तलवोंमें तथा हाथकी हथेलियोंमें स्थित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोगका निदान किया जाता है। एक्यूप्रेशरमें दबावको तथा एक्यूपंक्चरमें सूइयोंको प्रयोगमें लाया जाता है।

एक्यूप्रेशरके सिद्धान्त

इस पद्धतिका पहला सिद्धान्त है कि प्रत्येक रोगका उपचार शरीरको शारीरिक एवं भावनात्मक रूपसे संगठित (Unit) मानकर किया जाता है। एक्यूप्रेशर-पद्धति मनुष्यको शारीरिक एवं भावनात्मक रूपसे एक अभिन्न इकाई मानती है।

दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है कि सभी रक्त-संचार नाडियों, स्नायु-संस्थान एवं ग्रन्थियोंके अन्तिम सिरे हथेली अथवा पगथली (पदतल)-में स्थित होते हैं। इस पद्धतिका मुख्य उद्देश्य स्नायु-संस्थान एवं रक्त-संचारको सुव्यवस्थित करना एवं मांसपेशियोंको शक्तिशाली बनाना है। जब कोई व्यक्ति अपनी सामर्थ्यको न पहचानकर अपने शरीरके गुणधर्म एवं क्षमताकी उपेक्षा कर खान-पान, व्यायाम और निद्रा आदिके नियमोंका उल्लंघन करता है, तब उसके शरीरमें उत्पन्न द्रव्य रक्त-प्रवाहमें अवरोध पैदा करता है। यह अवरोध शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य वातावरणके असंतुलनसे भी उत्पन्न होता है।

अङ्गोंमें रक्तकी कमीसे शिथिलता आने लगती है। फलतः कार्य-क्षमता घटने लगती है, मांसपेशियाँ मन्द पड़ जाती हैं, हाथ और पाँवमें स्थित मांसपेशियोंके ऊतक (Tissues) अपने निश्चित स्थानसे हटने लगते हैं। परिणामस्वरूप पैरोंमें स्थित छब्बीस हड्डियोंमेंसे कोई भी हड्डी अपना स्थान छोड़ने लगती है। उससे पैरोंमें स्थित रक्त एवं स्नायु-संस्थानकी नाडियोंके अन्तिम सिरेपर अधिक दबाव पड़ने लगता है और उन सम्बन्धित केन्द्रोंके अङ्गोंमें नाडी ठीकसे कार्य नहीं कर पाती। फलतः रक्त-संचार कम हो जाता है एवं रक्तकी कमीसे रासायनिक तत्त्व, अपद्रव्य (व्यर्थ-पदार्थ) इन हटे हुए जोड़ोंके आस-पास जमा होने लगते हैं। जितने अधिक विकार जमा होंगे उतना ही अधिक रोग बढ़ेगा।

जब कोई अङ्ग शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाता है, तब हाथकी हथेली और पाँवके तलवोंमें स्थित उससे सम्बन्धित सभी बिन्दुओंमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा शक्करके दानों-जैसे क्रिस्टल जमा हो जाते हैं, जिन्हें 'टॉक्सिन' क्रिस्टल भी कहते हैं। नसों (नाडी)-के छोरमें स्थित ये कण रक्त-प्रवाहको अवरुद्ध करते हैं। एक्यूप्रेशर-पद्धतिसे इन दबाव-बिन्दुओंपर प्रेशर (दबाव) दिया जाता है। इससे अवरोध बने हुए ये कण नष्ट हो जाते हैं और रक्त-प्रवाह व्यवस्थित हो जानेसे रोगग्रस्त अङ्ग नीरोग बन जाते हैं।

अधिकतर लोग तनावसे ग्रसित रहते हैं। एक्यूप्रेशर ज्ञान-तन्तुके कोशोंको कार्यरत कर मानसिक तनाव कम करता है और चेतना जाग्रत् करके मानव-शरीरमें शक्ति उत्पन्न करता है।

एक्यूप्रेशरकी तीन शाखाएँ हैं—१-मेरिडीयनोलोजी, २-जोनोलोजी तथा ३-शिआत्सु।

मेरिडीयनोलोजी—मानव-शरीर पाँच महाभूतोंसे बना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश। इन सबका संचालन हमारे शरीरमें स्थित प्राणशक्तिसे होता है। यह प्राणशक्ति चौदह मुख्य मार्गोंद्वारा शरीरमें प्रवाहित होती रहती है, जिन्हें मेरिडीयन लाईन कहते हैं। इस शक्तिके दो गुण-धर्म हैं, जिन्हें ऋणात्मक एवं धनात्मक कहा जाता है। इन दोनों गुण-धर्मोंके संतुलनसे शरीर आरोग्य एवं इनके

असंतुलनसे शरीर रोगी हो जाता है। एक्यूप्रेशर इस असंतुलनको दूर करके शरीरको रोगमुक्त करता है।

जोनोलोजी—इसके अन्तर्गत शरीरको दस भागोंमें बाँटा गया है। शरीरके मध्यभागसे पाँच भाग बायीं ओर और पाँच भाग दायीं ओर होते हैं, जिनके अन्तिम सिरे हाथ और पैरकी पाँचों अँगुलियोंमें होते हैं। दाहिने भागके अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके प्रतिबिम्ब दाहिनी हथेली अथवा दाहिनी पगथली (पदतल)-में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा बायें भागके अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके प्रतिबिम्ब बायीं हथेली एवं बायीं पगथली (पदतल)-में प्रतिबिम्बित होते हैं। तात्पर्य यह है कि जो अवयव जिस जोनमें होता है, उसका प्रतिबिम्ब भी उसी जोनमें होता है। इस पद्धतिको जोनोलोजी, जोनोथैरेपी या रिफ्लोक्सोलोजी भी कहा जाता है।

शिआत्सु—शिआत्सुमें 'शि' अर्थात् अँगुली और 'आत्सु' का तात्पर्य है दबाव। शरीरमें स्थित निर्धारित दाब-बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोग-मुक्त करनेकी पद्धतिको शिआत्सु कहते हैं।

'दाब-बिन्दु' हमारे सारे शरीरपर फैले रहते हैं। किसी भी रोगसे मुक्ति दिलाने-हेतु मानव-शरीरके उस अवयवके क्षेत्र-बिन्दुओंको दबाव देकर उस रोगसे मुक्ति दिलायी जा सकती है।

मुख्य बीमारियाँ, जिनमें एक्यूप्रेशर कारगर प्रमाणित होता है

साइटिका, पुराना जुकाम, नज़ला, स्लिपडिस्क, गर्दनका दर्द, पीठका दर्द, पैरों तथा एड़ियोंका दर्द, पिण्डलियोंमें ऐंठन, ब्लड-प्रेशर, क़ब्ज़, बदहजमी, गठिया, मासिक धर्म, डिप्रेशन, अनिद्रा, स्मरण-शक्ति, माईग्रेन इत्यादि।

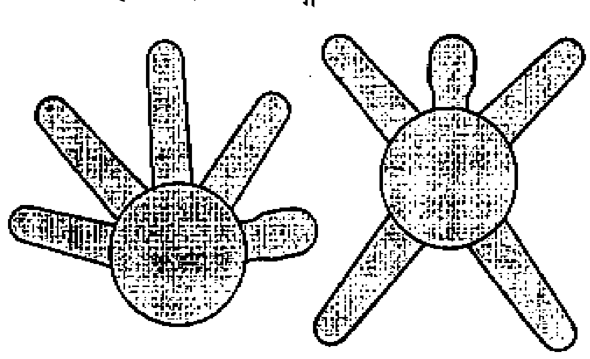
एक्यूप्रेशर-चिकित्सा-पद्धतिद्वारा उपचार कभी भी, कहीं भी तथा किसी भी समयपर किया जा सकता है, परंतु भोजन करनेके एक घंटा पहले तथा एक घंटा बाद ही इस पद्धतिको प्रयोगमें लाना श्रेयस्कर है तथा एक दिनमें केवल दो बार ही इसको करना चाहिये अन्यथा यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है।

सुजोक-चिकित्सा-पद्धति

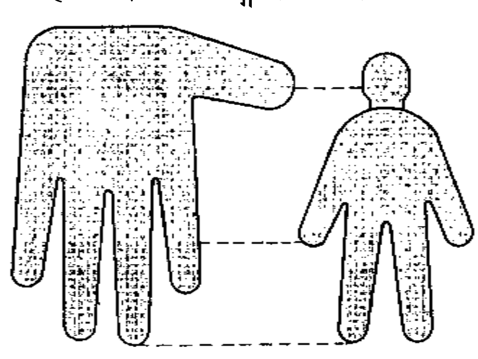
(डॉ० सुश्री गीतांजली अग्रवाल, सुजोक थेरेपिस्ट)

'सुजोक-चिकित्सा' एक्यूप्रेशर—एक्यूपंक्चर-चिकित्सा-पद्धतिपर ही आधारित है। 'सुजोक' कोरियन भाषाका शब्द है, कोरियाकी भाषामें 'सु' का अर्थ है हाथ और 'जोक' का अर्थ है पैर। हमारे हाथ एवं पैरोंके अङ्गोंकी बनावटमें हमारे शरीरकी बनावटसे काफी समानता है। अत: हाथ तथा पैरके सूक्ष्म विन्दुओंका ज्ञान प्राप्त करके रोगोंकी चिकित्सा की जा सकती है। हमारे शरीरमें छ: भाग हैं—सिर, धड़, दो हाथ तथा दो पैर। ऐसे ही हाथके पंजेके भी छ: भाग हैं—अँगूठा, हथेली तथा चार उँगलियाँ।

हाथमें शरीरके अङ्ग समान संख्यामें



हाथमें शरीरके अङ्ग समान स्थितिमें



कोरियाके डॉ० पार्कने लंबी खोज एवं अनुसंधानके बाद पाया कि ईश्वरने हाथ-पैरके पंजोंमें ही ऐसी मशीन फिट कर रखी है, जिससे आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधारपर डॉ० पार्कने इस पद्धतिको प्रस्तुत किया है। यह चिकित्सा-पद्धति एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर चिकित्सा-पद्धतिकी ही एडवांस टेक्नालॉजी है।

एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर-पद्धतिमें सम्पूर्ण शरीरके विन्दुओंपर दबाव एवं सूई लगाकर उपचार किया जाता है। जबकि 'सुजोक-पद्धति'में हाथके पंजेके विन्दुओं एवं पैरके विन्दुओंपर उपचार किया जाता है। इतना ही नहीं हाथकी एक उँगली और उसके एक पोरपर भी उपचार किया जा सकता है। उपचार भी इतना सरल कि यदि रोगी छोटी सूई भी नहीं लगाना चाहता तो केवल गेहूँके दाने-बराबर मेगनेट, सीड एवं कलर लगाकर ही उपचार किया जा सकता है। एवं रिजल्ट भी बहुत फास्ट है।

सुजोक-पद्धतिमें जन्मसे हुई बीमारियोंके लिये विशेष रूपसे जो व्यवस्था की गयी है वह है जन्मके दिनाङ्क एवं समयके आधारपर। जैसे ज्योतिषमें कुण्डली तैयार की जाती है वैसे ही इसमें जन्म-समय आदिको ध्यानमें रखकर स्वास्थ्य-कुण्डली बनायी जाती है। जन्मके समय कौन-सी ऊर्जा प्रवाहित हो रही थी, अब कौन-सी ऊर्जा प्रवाहित हो रही है, यह जानकर उपचार किया जाता है। पञ्चतत्त्वोंका भी संतुलन बनाया जाता है, चक्रोंको भी संतुलित किया जाता है।

हमारा शरीर पञ्चतत्त्वोंसे बना हुआ है और मृत्युके उपरान्त इन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें विलीन हो जाता है यह हम सभी जानते हैं। इन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें असंतुलन हो जानेपर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। मोटे तौरपर रोगीके लक्षणों एवं हाथकी रेखाएँ ही देखकर पञ्चतत्त्वोंकी जानकारी मिल जाती है। इसे वैज्ञानिक रूपसे परीक्षण करने-हेतु हाथकी उँगलियोंमें ऊर्जा-बिन्दुओंको चैक कर बताया जा सकता है कि कौन-सा तत्त्व कम-ज्यादा एवं कौन-सी ऊर्जा कम-ज्यादा है, उसके अनुसार वर्तमान एवं भविष्यमें आनेवाली बीमारियोंका इलाज किया जाता है। इसे पञ्चतत्त्व-उपचार या मेटाफिजिकल ट्रीटमेन्ट कहा जाता है।

इस चिकित्सा-पद्धतिकी यह विशेषता है कि इसमें न ही कोई दवा लेनी पड़ती है और न ही कोई साइड अफेक्ट होता है। इस चिकित्सा-पद्धतिका किसी चिकित्सा-पद्धतिसे विरोध नहीं है, कोई भी चिकित्सा चलते हुए इस पद्धतिसे इलाज किया जा सकता है।

आजके व्यस्ततम समयमें हम अपने स्वास्थ्यपर ध्यान नहीं दे पाते। हमारा जीवनयापन, रहन-सहन, खान-पान सभी कुछ प्रकृतिके विपरीत हो गया है। आम आदमी ज़िंदगीकी आपाधापीमें मानसिक तनावसे ग्रस्त रहता है, जिसके कारण वह रोगग्रस्त हो जाता है। अत: हमें अपने स्वास्थ्यके प्रति विशेष सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है, यदि हमें अपना जीवन सुखमय बनाना है तो अपने खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार तथा दैनन्दिन-चर्याकी उपेक्षा न कर उसे नियमित और संतुलित बनाना होगा।*

चुम्बक-चिकित्सा (मैगनेट थिरेपी)

(श्रीबाबूलालजी अग्रवाल)

इस अखिल ब्रह्माण्डकी रचनामें हम विचार करें तो चुम्बकीय शक्तिका ही समावेश-सा दीखता है। धरती, सूर्य, तारे और ग्रह सभी चुम्बक-जैसा कार्य करते हैं। आधुनिक विज्ञानने भी चुम्बकीय शक्तिसे विभिन्न प्रकारके उपयोगी यन्त्रोंकी रचना की है।

चुम्बक-चिकित्साका सैद्धान्तिक आधार यह है कि हमारा शरीर मूल रूपसे एक विद्युतीय संरचना है और प्रत्येक मानवके शरीरमें कुछ चुम्बकीय तत्त्व जीवनके आरम्भसे लेकर अन्ततक रहते हैं। चुम्बकीय शक्ति रक्तसंचार-प्रणालीके माध्यमसे मानव-शरीरको प्रभावित करती है। नाडियों और नसोंके द्वारा खून शरीरके हर भागोंमें पहुँचता है। इस प्रकार चुम्बक हमारे शरीरके प्रत्येक हिस्सेको प्रभावित करनेकी शक्ति रखता है। इस सम्बन्धमें मूल बात यह है कि चुम्बक रक्तकणोंके होमोग्लोबिन तथा साइटोकेम

* एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार-संस्थान, इलाहाबादद्वारा, एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंक्चर-पद्धतिसे सेवाभावसे रोगोंका उपचार किया जाता है।

२६१ से २६४ रंगीन चित्र

नामक अणुओंमें निहित लौह-तत्त्वोंपर प्रभाव डालता है। इस तरह चुम्बकीय क्षेत्रके सम्पर्कमें आकर खूनके गुण और कार्यमें लाभकारी परिवर्तन आ जाता है और इससे शरीरके अनेकों रोग ठीक हो जाते हैं।

चुम्बक-चिकित्सा-पद्धतिमें न तो कोई कष्ट है और न ही किसी प्रतिक्रियाकी आशंका। अतः बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि सभी रोगियोंपर इसका प्रयोग सरलता एवं सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्राचीन कालमें भी आकर्षणशक्ति एवं चुम्बकीय शक्तिका पूर्ण परिज्ञान एवं प्रयोग था। अथर्ववेदके प्रथम काण्ड सूक्त १७ मन्त्र ३-४ में स्त्रीरोगोंके उपचारमें आकर्षणशक्तिके प्रयोगका उल्लेख है। मृत्युके पूर्व मनुष्यका सिर उत्तर दिशा एवं पैर दक्षिण दिशाकी ओर करनेकी प्राचीन कालसे चली आ रही प्रथा भी चुम्बकीय ज्ञानपर आधारित है। ऐसा करनेसे धरती और शरीरमें चुम्बकीय क्षमता हो जानेके कारण मृत्युके समयकी पीडा—वेदना कम हो जाती है। इसी प्रकार रत्न-धारणके पीछे भी यही विज्ञान काम करता है। योगकी विभिन्न क्रियाओंसे शरीरमें जो प्रतिक्रियाएँ पैदा की जाती हैं, वे चुम्बकके प्रयोगसे भी उत्पन्न की जा सकती हैं।

विदेशोंमें भी चुम्बकीय ज्ञान प्राचीन कालमें था। मिस्रकी राजकुमारी अपनी सुन्दरता बनाये रखनेके लिये अपने माथेपर एक चुम्बक बाँधे रहती थी। स्विस विद्वान् डॉक्टर पैरासेल्सस, डॉ० मैलमैर, डॉ० गैलीलियो, डॉ० माहकैलफै रेडे तथा होम्योपैथीके जनक डॉ० हैनीमैनने भी चुम्बक-चिकित्साका सफल प्रयोग किया है। अमेरिकामें न्यूयार्कके डॉ० मैक्लीनने चुम्बकसे कैंसर-जैसी असाध्य बीमारीका सफल इलाज किया है। रूसवाले चुम्बकीय जलसे दर्द, सूजन यहाँतक कि पथरी-जैसे कठिन रोगोंका भी इलाज कर रहे हैं। वे चुम्बकीय जलको वंडर वाटर अर्थात् चमत्कारी जल कहते हैं। जापानियोंने अनेक चुम्बकीय उपकरण जैसे—बाजूबंद, हार, पेटियाँ, कुर्सियाँ, बिछौने आदि बनाये हैं और वे इनसे विभिन्न प्रकारके रोगोंका इलाज करते हैं। इंग्लैंडमें खूनके प्लाज्मा और अन्य कोशिकाओंसे रक्त-कोशिकाओंको अलग करनेमें अब चुम्बकका प्रयोग किया जाता है। इससे पहले यह काम रासायनिक पद्धतिसे होता था। डेनमार्क, नार्वे, फ्रांस, स्विटजरलैंड आदि अनेक पश्चिमी देशोंमें चिकित्साके क्षेत्रोंमें चुम्बकका प्रयोग सफलतासे किया जा रहा है।

भारतमें भी अनेक होम्योपैथिक और एलोपैथिक डॉक्टर चिकित्सामें चुम्बकीय उपकरणोंका प्रयोग सफलतासे कर रहे हैं। चुम्बकीय जलका पौधोंपर भी आश्चर्यजनक असर पड़ता है। ऐसे जलसे सींचनेपर पौधोंमें सामान्यकी अपेक्षा २० से ४० प्रतिशततक अधिक वृद्धि देखी गयी है।

इलाज-हेतु चुम्बकोंको मोटे तौरपर दो वर्गोंमें बाँटा जा सकता है। पहले वर्गमें प्राकृतिक खनिज हैं जिनमें लौह-चट्टानें प्रमुख हैं। ऐसे चुम्बकोंकी शक्तिमें आवश्यकतानुसार घटाना-बढ़ाना सम्भव नहीं होनेके कारण इनका इलाज-हेतु प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। दूसरे वर्गमें मनुष्यद्वारा बिजलीसे चार्ज करके तैयार किये गये चुम्बक आते हैं। जिनमें आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा चुम्बकीय शक्ति समाविष्ट की जा सकती है और जिन्हें शरीरके विभिन्न अङ्गोंपर प्रयोग-हेतु सुविधाजनक आकारोंमें तैयार किया जाता है—(१) विद्युत्-चुम्बक एवं (२) स्थायी चुम्बक।

(१) विद्युत्-चुम्बक—वे चुम्बक हैं जो बिजलीकी तरंग मिलनेपर ही काम कर सकते हैं। विद्युत्के अभावमें वे चुम्बकीय कार्य नहीं कर सकते। ऐसे चुम्बक विद्युत्-यन्त्रों एवं अनेक अन्य यन्त्रोंमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

(२) स्थायी चुम्बक—स्थायी चुम्बक बिजलीसे चार्ज किये जाते हैं, परंतु एक बार चार्ज हो जानेके बाद उन्हें विद्युत्-तरंगोंकी आवश्यकता नहीं रहती। ये लम्बे समयतक अर्थात् वर्षोंतक अपनी चुम्बकीय शक्ति बनाये रखते हैं। कुछ वर्षोंके बाद यदि शक्ति कम हो जाय तो उन्हें दुबारा चार्ज किया जा सकता है और ये फिर कई वर्षोंतक काम करते रहते हैं। सामान्य रूपसे चुम्बक-चिकित्सामें ये स्थायी चुम्बक ही काममें लाये जाते

हैं। इनकी इसी प्रकृतिके कारण अन्यान्य समस्त चिकित्सा-पद्धतियोंसे चुम्बक-चिकित्सा-पद्धति सबसे सस्ती सिद्ध होती है। चुम्बक-चिकित्सामें १०० गॉससे १५०० गॉस-तकके शक्तिसम्पन्न चुम्बकोंका प्रयोग प्राय: किया जाता है।

१-सिरेमिकके कम शक्तिसम्पन्न चुम्बक कोमल अङ्ग जैसे—आँख, कान, नाक, गला आदिके काममें लाये जाते हैं।

२-धातुसे बने मध्यम शक्तिसम्पन्न चुम्बक बच्चों तथा दुर्बल व्यक्तियोंके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं।

३-धातुसे बने हाई पावर चुम्बक अन्य सभी रोगों तथा रोगियोंके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं।

आमतौरपर प्रतिदिन रोगीको दस मिनट ही चुम्बक लगाना पर्याप्त है, पर कुछ पुरानी तथा लम्बी अवधिकी बीमारियोंमें जैसे—गठिया, लकवा, पोलियो, साइटिका दर्द आदिमें चुम्बक लगानेकी अवधि बढ़ायी जा सकती है। चुम्बक-चिकित्साके बारेमें अन्य लाभकारी तथा कुछ विशेष बातें इस प्रकार हैं—

(१) चुम्बकीय तरंगें शरीरके भीतर जमा हो जानेवाले हानिकर तत्त्वों (कैलशियम, कोलस्ट्रोल आदि)-को साफ करके खूनको पतला और साफ बनाती हैं। इससे हृदयगति सहज बनती है, रक्तचाप नियमित रहता है और घबराहट दूर हो जाती है।

(२) चुम्बक कोशिकाओंको विकसित करके उन्हें बढ़ा देता है, स्नायुओंको नया जीवन देता है।

(३) चुम्बकके दो ध्रुव होते हैं—उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। उत्तरी ध्रुव कीटाणुओंको मारता है और फोड़ा, दाद, गठिया तथा चर्मरोगोंके लिये यह काममें लाया जाता है। दक्षिणी ध्रुव शरीरको गर्मी और शक्ति प्रदान करता है।

(४) चुम्बकका प्रयोग रोगके इलाज और उसकी रोकथाम—दोनोंके लिये किया जाता है।

(५) एक पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति भी नीरोग बने रहनेके लिये चुम्बक तथा चुम्बकीय जलका नियमित प्रयोग कर सकता है।

(६) चुम्बकके उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवोंपर जल, तेल, दूध आदि पदार्थ रखे जानेपर उनमें उसी प्रकारकी चुम्बकीय शक्तिका समावेश हो जाता है, जिसका प्रयोग विविध रोगोंके उपचारमें किया जाता है।

(७) चुम्बकीय शक्ति प्लास्टिक, कपड़े, गत्ते, शीशे, रबड़, स्टैनलेस स्टील तथा लकड़ीमेंसे भी पायी जा सकती है।

(८) प्राय: चुम्बकके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव चुम्बकके टूटनेपर भी अलग नहीं होते, किंतु चिकित्साके प्रयोग-हेतु अलग-अलग ध्रुवोंके चुम्बकोंका निर्माण किया गया है।

चुम्बक-चिकित्सा लेते समय कुछ सावधानियाँ भी बरतनी आवश्यक हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) चुम्बक लगानेके बाद एक घंटेतक कोई ठंडी चीज खानी या पीनी नहीं चाहिये।

(२) लगभग दो घंटेतक नहाना भी वर्जित है।

(३) भोजन करनेके दो घंटे बाद ही चुम्बक लगाना चाहिये तथा चुम्बक लगानेके दो घंटे बाद ही भोजन करना चाहिये।

(४) गर्भवती स्त्रियों तथा शरीरके कोमल अङ्गोंपर शक्तिशाली चुम्बकोंका प्रयोग करना वर्जित है।

(५) किसी-किसीको चुम्बककी शक्ति ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं होती है। ऐसे रोगीको मिचली, वमन, शरीरमें झुनझुनाहट, सिर चकरानेकी प्रतिक्रिया होने लगती है। ऐसी दशामें एक जस्तेकी प्लेटपर पाँच मिनट हाथ रखनेसे चुम्बकका प्रतिकूल प्रभाव समाप्त हो जाता है।

चुम्बक-चिकित्सा-क्षेत्रमें हुए अबतकके विकासों, प्रयोगों और अनुभवोंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि चुम्बक मनुष्यों और पशुओंके विभिन्न रोगोंके उपचारका एक अच्छा माध्यम है। चुम्बकीय चिकित्सा-पद्धतिमें कोई ओषधि नहीं दी जाती। अत: इससे केवल लाभ ही हो सकता है हानि नहीं। अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंकी औषधियाँ मँहगी और कभी-कभी हानिकारक भी हो सकती हैं। भारत-जैसे देशके लिये तो यह पद्धति बहुत उपयोगी है।

स्पर्श-चिकित्सा

(बाबा श्रीश्रीमुरलीधरणजी)

आजके दौरमें दुनियामें सभी तनावग्रस्त हैं, बेचैन हैं, जिसके लिये आदमी स्वयं जिम्मेदार है। इंसान हर पल, हर दिन कुछ पानेके प्रयत्नमें लगा हुआ है। भौतिक वस्तुओंको पानेकी इच्छा ही तनावका मूल कारण है। हमें अपनी सोचको नकारात्मक नहीं सकारात्मक बनाना होगा।

नकारात्मक विचार एवं नकारात्मक कोशिकाएँ (Cells) दिव्य शक्तिद्वारा नष्ट की जा सकती हैं। यह दिव्य शक्ति ऋषिगण तपस्याके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। तपस्याके द्वारा यह शक्ति शरीरमें प्रवाह करने लगती है, जिससे विचारोंमें बदलाव आने लगता है। युग-युगसे हम सुनते आ रहे हैं कि किसी महात्माकी हथेलीके स्पर्शसे कई लोग शारीरिक रोगसे मुक्त हो गये। यह वही दिव्य शक्ति है, यह वही प्राण-शक्ति है, जिसे ऋषिगण हथेलियोंके द्वारा दूसरोंके शरीरमें प्रवाह करते रहे। आज इसीको स्पर्श-चिकित्सा कहा जाता है।

मानव-इतिहासमें सनातन कालसे प्राण-शक्तिपर आधारित चिकित्साकी विधि रही है। स्पर्श-चिकित्सा जिस ऊर्जासे होती है, यह वही शक्ति है, जो ब्रह्माण्डमें प्रत्येक जीवकी सृष्टि करती है और उसका पोषण करती है। स्पर्श-चिकित्सा हमारे देशकी अद्भुत देन है, यह हमारी धरोहर है। स्पर्श-चिकित्सा ऋग्वेदमें वर्णित है। धीरे-धीरे लोग इसे भूल गये और फिर जापानसे इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। यह हमारी ही संस्कृतिका एक अंश है और आज देश-देशान्तरोंमें इस '*प्राण-शक्ति*' को विभिन्न नामोंसे जाना जाता है। चीनी लोग इसे '**ची**', ईसाई समाज '**प्रकाश**', रूसी वैज्ञानिक '**बायोप्लाज्मिक ऊर्जा**' और जापानी इसे '**रेकी**' कहते हैं। हमारे देशमें भी आजकल यह '*रेकी*' के नामसे प्रचलित है।

आजकल इस जापानी-विद्यानुसार थोड़े दिनके प्रशिक्षणद्वारा साधारण व्यक्ति इस ऊर्जाको अपने शरीरमें प्रवाहित करनेकी प्रणाली सीख लेता है। यह ऊर्जा सहस्रार-चक्रके माध्यमसे प्रवेश करती है। वहाँसे तीसरे नेत्र अर्थात् आज्ञा-चक्रसे होते हुए नीचेकी ओर विशुद्ध-चक्र (गले)-में आती है। फिर अनाहत-चक्र यानी हृदयतक पहुँचकर पूरे शरीरमें फैल जाती है। तत्पश्चात् मनुष्यकी हथेलियोंद्वारा प्रवाहित होती है। इससे हम अपनी तथा दूसरोंकी चिकित्सा सुचारुरूपसे कर सकते हैं। स्पर्श-चिकित्साके द्वारा प्राणीकी शारीरिक, मानसिक चिकित्सा एवं आध्यात्मिक विकास होता है। यह रोगके कारणोंको निर्मूल करती है।

स्पर्श-चिकित्सासे शारीरिक आरोग्यता—स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मनका वास होता है अर्थात् यदि आपका शरीर विकार (रोग)-से युक्त है तो मनमें तरह-तरहकी आशंकाएँ उठती हैं। उसे दूर करनेके लिये पहले तनका स्वस्थ होना आवश्यक है। स्पर्श-चिकित्सासे सर्दी-जुकामसे लेकर कैंसरतकका उपचार किया जा सकता है। शुरूमें रोगीको जब स्पर्श-चिकित्सा दी जाती है तो भौतिक और भावनात्मक विकार शरीरसे निकलने शुरू होते हैं। आधुनिक औषधियोंके फलस्वरूप जो विषैले रासायनिक पदार्थ (toxins) शरीरमें घर कर लेते हैं, वे निकलने शुरू होते हैं। दो ही दिनमें रोगीको शरीर हलका प्रतीत होने लगता है। शरीरके चौबीस निर्धारित अङ्गोंपर हाथसे स्पर्श किया जाता है। रोगीके जिस अङ्गमें जितनी ऊर्जाकी जरूरत है, उतनी ही ऊर्जा रोगी चिकित्सकके हथेलियोंसे खींचता है। कहनेका तात्पर्य है कि चिकित्सकको तो अपनी हथेलियोंसे अनुभव हो ही जाता है, पर स्वस्थ होना चिकित्सकसे ज्यादा रोगीपर निर्भर करता है। इस चिकित्सापर रोगीका यदि दृढ़ विश्वास हो तो वह बहुत शीघ्र स्वस्थ हो सकता है। कई रोग जैसे कैंसर यदि बहुत आगे बढ़ चुका हो तो हालाँकि रोगी एकदम ठीक नहीं भी हो सकता है। पर उसके बाकी जीवनमें कम-से-कम पीड़ा तो कम की ही जा सकती है। ऐसा हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है।

स्पर्श-चिकित्साकी यह विशेषता है कि इसमें सुयोग्य एवं अनुभवी चिकित्सक दूरसे भी चिकित्सा कर सकता है—स्पर्शकी आवश्यकता नहीं होती, केवल ध्यानके माध्यमसे ऊर्जा पृथ्वीके किसी भी कोनेमें रोगीतक

पहुँचायी जा सकती है।

मैं अपने कुछेक अनुभवोंका संक्षिप्तमें उल्लेख करना चाहूँगा। हालहीमें एक महिला जो गत कई वर्षोंसे जोड़ोंके दर्दसे बुरी तरह ग्रस्त थी, स्पर्श-चिकित्सा सीखने आयी। दर्दके मारे उसका इतना बुरा हाल था कि दीक्षाके दौरान हलकेसे हाथ छूनेमात्रसे वह चीख उठी। पर बादमें उसका दर्द ऐसा गायब हुआ कि दो महीने हो गये, उसने किसी आधुनिक औषधिको हाथतक नहीं लगाया है। एक सज्जन कमरके दर्दसे बेचैन थे और कोई ऐसी प्रणाली उन्होंने नहीं छोड़ी, जिसे उन्होंने न आजमाया हो। स्पर्श-चिकित्सासे इक्कीस दिनोंमें ही उन्हें दर्दसे पूर्णत: मुक्ति मिल गयी। जहाँ आधुनिक चिकित्सा हार मान जाती है, वहाँ स्पर्श-चिकित्सा एकमात्र उपाय है। हालहीमें एक महिला जिसे मधुमेहकी बीमारी है, उसने स्पर्श-चिकित्सा शुरू की। चिकित्साके आरम्भमें blood sugar count २३० थी और एक महीनेकी चिकित्साके उपरान्त यह १३० आ गयी। स्पर्श-चिकित्सा जब उसने शुरू की, तब सभी आधुनिक दवाइयोंको बंद कर दिया था। पैरोंका दर्द तो गायब ही हो गया।

स्पर्श-चिकित्सा और मानसिक उत्थान

प्रत्येक मनुष्यकी अपनी एक आभा होती है और हरेक मनुष्यके तरंगोंका स्तर अलग होता है। शरीरके अंदर और बाहर जो विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रकी तरंगें हैं, उसके ऊपर हमारे आचार-विचार, रूप सभी निर्भर करते हैं। वर्तमान समयमें भौतिकताके कारण शरीरमें विद्यमान तरंगें बहुत निम्न स्तरकी हो गयी हैं, जिसकी वजहसे मनमें शंका पैदा होती है, नकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं। जब सूक्ष्म शरीरकी तरंगें बढ़ती हैं, तब नकारात्मक विचार स्वत: कम होने लगते हैं। स्पर्श-चिकित्सासे तरंगें बढ़ायी जा सकती हैं।

उदाहरणके रूपमें यदि कोई १००० (cycles/second)-के स्तरपर स्फुरण करता है तो नियमित रूपसे स्पर्श-चिकित्सा करते रहनेसे इसे २८०० से ३२०० (cycles/second)-तक उठाया जा सकता है। इससे कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होती है और सहस्रार-चक्रपर जा मिलती है। तब वह तारोंकी दुनिया (astral plane)-में पहुँच जाता है। उस स्तरपर पहुँचनेपर मनुष्य बहुत कुछ दिव्य देख-सुन पाता है। इसी तरह वेद-पुराण ऋषियोंको श्रुतिके रूपमें प्राप्त हुए। उस स्तरपर पहुँचनेपर मनुष्यका मन शान्त हो जाता है, नकारात्मक भावनाओंसे मुक्ति मिल जाती है, वह भौतिक आकर्षणोंको नकारने लगता है। मनुष्यका मानसिक संतुलन बना रहता है, तनाव कम हो जाता है, उसका मनोबल बढ़ जाता है, वह रोगमुक्त हो जाता है, उसकी स्मरण-शक्तिका विकास होता है और व्यक्तित्वमें निखार आता है।

स्पर्श-चिकित्सा और आध्यात्मिक विकास

जैसे-जैसे शरीरकी ऊर्जा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मनुष्यका आत्मसंतुलन बढ़ता है और कर्ताका परिचय महान् आत्माओंसे होने लगता है। वह जीवनके सही पथपर स्वत: अग्रसर होने लगता है। सांसारिक कर्मोंको निभानेके लिये जिन व्यक्तियोंका सम्पर्क अनिवार्य है, वही उसके इर्द-गिर्द रह जाते हैं, बाकी सब धीरे-धीरे दूर होते चले जायँगे।

ध्यान-मग्न होनेमें स्पर्श-चिकित्सा अत्यधिक सहायक रही है। स्पर्श-चिकित्सासे आपके शरीरकी तरंगोंमें बहुत परिवर्तन आता है और आप बिना कठिनाईके ध्यान-मग्न हो पाते हैं।

यदि आपका मन किसी दूसरेके बताये पथपर अग्रसर होना नहीं चाहता और यदि स्वयं मन जानना चाहता है कि सही क्या है, उचित मार्ग क्या है तो यह केवल ध्यानके माध्यमसे ही जाना जा सकता है और ध्यानके लिये शारीरिक ऊर्जा बढ़ाना आवश्यक है। स्पर्श-चिकित्सासे धीरे-धीरे आत्मबोध होने लगता है, आज्ञा-चक्रका विकास होता है, जिससे आप सुदूर रहनेवालोंके वातावरण एवं परिस्थितिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

स्पर्श-चिकित्साके अन्य उपयोग

स्पर्श-चिकित्सासे किसी भी चीजकी ऊर्जा बढ़ायी जा सकती है, कोई भी शुभ कार्य निर्विघ्न पूर्ण किया जा सकता है। इससे पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधोंका भी इलाज किया जा सकता है। कई बार तो शक्तिहीन वस्तुओंपर स्पर्श-चिकित्सा काम कर जाती है। अपने व्यवसाय, नौकरी, पढ़ाई या अन्य किसी भी अच्छी भावनाको स्पर्श-चिकित्साद्वारा लाभान्वित किया जा सकता है। बुरी लत छुड़ायी जा सकती है।

स्पर्श-चिकित्सा और भारतीय सभ्यता

हजारों साल पहलेसे हमारे ऋषि-मुनि स्पर्श-चिकित्साकी पद्धति प्रयोगमें ला रहे हैं। सनातन धर्मकी पर्याय भारतीय सभ्यता और स्पर्श-चिकित्साका बहुत घनिष्ठ सम्पर्क है। सनातन धर्मका अर्थ है सत्य और आनन्दका धर्म।

पुराने समयमें जब कोई चिकित्सा-पद्धति उपलब्ध नहीं थी, तब हम गुरु या महापुरुषके आशीर्वादपर ही निर्भर थे। किसी भी महापुरुषके सम्मुख जाते ही हम सर्वप्रथम हाथ जोड़ते हैं। अतिथिका स्वागत हम हाथ जोड़कर करते हैं। हाथ जोड़नेकी सभ्यता केवल हमारे देशमें ही है। प्रत्येक हथेलीके नाडीमण्डल, अँगुलियोंके छोरपर ८००० (cycles/second)-के स्तरपर तरंगें स्फुरण करती हैं। जब हम हथेलियोंको जोड़ते हैं तो अंदरकी तरंगें १६००० (cycles/second)-पर स्फुरण करने लगती हैं। इसका असर तुरंत हमारे दिमाग, शरीर और ग्रन्थियोंपर पड़ता है। मन शान्त हो जाता है, सद् विचार आने लगते हैं और हम सबको सम्मानसे स्वीकार करते हैं। किसी भी चीजकी स्वीकृति पानेके लिये हमारे मनमें स्वीकृतिकी क्षमता होनी चाहिये। केवल सोचनेसे यह प्राप्त नहीं हो सकता है। हाथ जोड़ते ही हमारे अंदरकी शक्तिका प्रभाव १६००० (cycles/second)-पर चलने लगता है।

हाथ जोड़नेके पश्चात् हम उनका चरण-स्पर्श करते हैं, साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि शरीरके आठ अङ्गों—आज्ञा-चक्र, हृदय, मणिपूर-चक्र, स्वाधिष्ठान-चक्र, घुटने और दोनों हाथको धरतीपर स्पर्श कराते हैं। फिर बायें हाथसे बायाँ पैर और दायें हाथसे दायाँ पैर छूना चाहिये। हमारे बायें मस्तिष्कका असर दायीं ओर होता है और दायें मस्तिष्कका बायीं ओर। दायाँ मस्तिष्क आध्यात्मिक प्रवृत्तिका होता है और बायाँ मस्तिष्क सोच-विचारका कार्य करता है। दोनोंकी तरंगें अलग-अलग स्तरकी होती हैं। यदि हम दायें हाथसे बायें पैरका स्पर्श करें तो दोनों मस्तिष्क अपनी प्रवृत्तिके प्रतिकूल काम करेंगे। साष्टाङ्ग प्रणाम करते समय शरीरकी हरेक प्रक्रियाका मन विश्लेषण करता है। मन कहता है कि तुम उन महापुरुषके चरणके धूलके बराबर हो। इससे अंदरके अहंकारका पतन हो जाता है। गुरु या उन महापुरुषने तपस्यासे बहुत शक्ति प्राप्त की है। उनके पैरोंके अँगूठोंसे हम उस ऊर्जाको अपने अंदर ले सकते हैं।

तत्पश्चात् महापुरुष हमें आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद लेना है तो बरतन पूरी तरहसे खाली करना होगा। आधा झुकनेसे आधा आशीर्वाद प्राप्त होता है, साष्टाङ्ग प्रणामसे पूरा आशीर्वाद। वे अन्तरिक्षसे प्राण-शक्तिको अपने अंदर लेकर, अपने विचारोंको ऊर्जामें बदलकर, अपनी हथेलियोंद्वारा हमारे सहस्रार-चक्रतक पहुँचाते हैं। यह ऊर्जा हमारे सहस्रार-चक्र और आज्ञा-चक्रसे होते हुए हमारे पूरे शरीरमें फैल जाती है और हमारी ऊर्जा बढ़ जाती है। हमें अपने अंदर परिवर्तन प्रतीत होने लगता है और मन शान्त हो जाता है एवं हम शारीरिक स्वस्थता प्राप्त कर लेते हैं।

आज हम सभी तनावग्रस्त हैं। न हम ध्यान लगा पाते हैं, न अपनी अन्तरात्माको जाग्रत् कर पाते हैं, अपना अस्तित्व नहीं जान पाते। आत्मोद्धारके लिये और जीवनको सफल बनानेके लिये शास्त्रोंमें बतायी गयी प्रक्रियाओंको अपनाना होगा। महापुरुषोंका सांनिध्य ही एकमात्र उपाय है। गुरुका आशीर्वाद, उनके हाथोंका प्रसाद और उनका चरणामृत—ये सब स्पर्श-चिकित्साके ही अङ्ग हैं। असंख्य सकारात्मक विचारोंसे वह स्पर्श करते हैं और उनके स्पर्शका लाभ मिलता ही है।

स्पर्श-चिकित्सा सभी चिकित्सा-पद्धतिमें सबसे सरल है और कभी हानिकारक नहीं हो सकती है। नामके अनुसार केवल स्पर्शसे ही चिकित्सा होती है। इसलिये आजकल हर पद्धतिके चिकित्सक, चाहे होम्योपैथी हो या आधुनिक चिकित्सा, चाहे आयुर्वेद हो या एक्यूप्रेशर, सभी स्पर्श-चिकित्साका ज्ञान प्राप्त करके इसे सुचारुरूपसे अपनी पद्धतिके साथ जोड़कर इससे लाभ उठा सकते हैं।

स्पर्श-चिकित्सासे तन, मन और आत्मा—ये तीनों नीरोग हो जाते हैं, आध्यात्मिक विकास होता है, मानसिक संतुलन बना रहता है, विचार सकारात्मक हो जाते हैं, तब शरीर स्वतः ही रोगमुक्त हो जाता है।

'स्पर्श-चिकित्सा' बनाम 'रेकी-चिकित्सा'

(डॉ० श्रीराजकुमारजी शर्मा)

स्पर्शद्वारा ऊर्जाका शक्तिपात ही चिकित्सा-क्षेत्रमें 'रेकी-चिकित्सा'-पद्धतिके नामसे प्रसिद्ध है।

यह सरल-सुविधाजनक, सस्ती और दुष्प्रभावरहित उपचार-पद्धति है। अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंके प्रतिकूल नहीं, सहयोगी भी है। यह रोग-शोक, चिन्तासे मुक्तकर नाना दुष्प्रवृत्तियोंका समूल नाश करनेमें भी उपयोगी है। अन्तःप्रेरणा, अतीन्द्रिय श्रवण-दृष्टिकी क्षमता, बल-बुद्धिको बढ़ानेवाली और काया-कल्प कर मनको शान्ति तथा ध्यान-क्रियामें सहयोग प्रदान करनेवाली है। साथ ही संकल्प और प्रतीकोंद्वारा ऊर्जा-प्रेषणसे दूरस्थ उपचारमें भी सक्षम है।

रेकी है क्या ?

'स्पर्श-चिकित्सा' बनाम 'रेकी-चिकित्सा'-पद्धतिके प्रणेता डॉ० मिकाओ उसुई हैं और उनका 'रेकी' शब्द जापानी है। 'रे' का अर्थ है 'ईश्वरीय-सृष्टि' (ब्रह्माण्ड) और 'की' का अर्थ है 'प्राण-ऊर्जा' (जीवनी-शक्ति)।

रेकी-स्रोत कहाँ ?

डॉ० उसुईद्वारा प्रस्तुत 'रेकी' अर्थात् 'ऊर्जा-प्रवाह'-का ज्ञान मानवको सृष्टिके आदिमें ही हो चुका था। महापुरुषोंने चाहे हृदयकी एकाग्रतामें स्वयं अनुभव किया या अन्यसे प्राप्त किया, यह है उसी ज्ञानकी पुनरावृत्ति। यह ज्ञान भारतसे तिब्बत-चीन होते हुए जापान पहुँचा और डॉ० उसुई (पूर्व ईसाई)-ने भारत-तिब्बत-यात्रा और बौद्ध धर्मके साथ इस ज्ञानकी दीक्षा ली। भारतसे जापानतककी यात्रामें इस ज्ञानका कलेवर बदल जाना स्वाभाविक है, पर इसकी मूल आत्मा वही है।

रेकी-परम्परा

डॉ० उसुईके उन्नीस शिष्योंमेंसे यद्यपि 'डॉ० वातानोव' सप्त-स्तरीय ज्ञानी थे, परंतु टोकियोमें 'रेकी-चिकित्सालय'-की स्थापनासे यश मिला डॉ० चुजीरो हयाशीको। उनके देहान्त (सन् १९३९)-के पश्चात् उनकी शिष्या श्रीमती 'हवायो टकाटा' (जापानी-अमेरिकन महिला)-ने अपने बाईस शिष्योंको यह ज्ञान देकर (सन् १९८० में) इहलोकसे विदा ली। इस समय 'रेकी एलायन्स' और 'अमेरिकन अन्तर्राष्ट्रीय रेकी ऐसोसियेशन'—ये दो संस्थाएँ तथा व्यक्तिरूपसे मारीन ओ टूल, कैटनानी तथा पाला हॉरेन इसके शिक्षक हैं।

'रेकी' अर्थात् ऊर्जा-प्रवाह दिव्य शक्ति-चैतन्यस्वरूप है, जिसकी सिद्धि-हेतु आध्यात्मिक साधना, एकाग्रता एवं सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

रेकी-चिकित्सा-पद्धति

रोगोत्पत्तिके कारण—आत्मा-परमात्मामें विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा, दृढ़ इच्छाशक्ति, ईमानदारी, संयम, त्याग, विनम्रता, सत्साहस और माधुर्य आदि प्रवृत्तियाँ सुख-शान्ति, आरोग्य और सम्पन्नताकी हेतु हैं। इनके विपरीत छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, चिन्ता-क्रोध, लोभ-मोह, आलस्य-असंयम, अन्याय-असत्य, निन्दा एवं कटुवाणी आदि नकारात्मक दुष्प्रवृत्तियाँ और प्रदूषित वातावरण, दुर्व्यसन, अपखाद्य तथा जीवनकी जटिलताएँ शरीरकी रस-स्रावी ग्रन्थियोंको असंतुलित कर मानसिक तनाव, घबराहट, चिन्ता, सिर-दर्द, ब्लड-प्रेशर, अनिद्रा, अपच, शारीरिक दौर्बल्य, अपङ्गता, ट्यूमर और कैंसर आदि रोग-शोकको जन्म देती हैं।

उपचार-प्रक्रिया—रेकी—ऊर्जा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर[1]का सशक्त माध्यम 'साधना-चक्र-प्रणाली'[2] और 'रस-स्रावी-प्रणाली' में तारतम्य बैठाकर (पुनः संतुलन स्थापित कर) शरीरको रोग-मुक्त करती है। उसई-पद्धतिमें सूक्ष्म शरीरके चक्र स्थूल शरीरकी रस-स्रावी ग्रन्थियोंके समीप ही हैं। यथा—सूक्ष्म-शरीरमें सहस्रार-चक्रके समीप

---

१. शास्त्रोंके अनुसार हमारा शरीर पाँच कोशोंमें विभक्त है—आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय एवं अन्नमय। अन्नमय कोश—'स्थूल-शरीर', विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय कोश मिलकर 'सूक्ष्म-शरीर' तथा आनन्दमय कोश 'कारण-शरीर' है।

२. गुदाके निकटसे मेरुदण्डके भीतरसे मस्तिष्कके ऊपरतक जानेवाली सर्वश्रेष्ठ नाडी—'सुषुम्णानाडी' में सत्त्वप्रधान प्रकाशमय अद्भुत शक्तिशाली, सूक्ष्म-शरीर प्राण तथा विभिन्न नाडियोंसे मिले सूक्ष्म-शक्तियोंके अनेक केन्द्र हैं, जिन्हें पद्म-कमल तथा चक्र कहते हैं। सुषुम्णानाडीमें विद्यमान मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार-चक्र हैं।

पीनियल ग्रन्थि स्थित है। यहीं ज्ञाता-ज्ञेयका—आत्मा-परमात्माका एकाकार होता है। आत्म-ज्ञान, विवेक-शक्तिके केन्द्र आज्ञाचक्रके समीप आत्मसंचालित नाडी-तन्त्र, रस-स्रावी पिट्यूटरी ग्रन्थि स्थित है, इसी प्रकार थाइराइट ग्रन्थि, थाइमस ग्रन्थि, एड्रीनल आदि ग्रन्थियाँ भी अनाहतचक्र, मणिपूरचक्र, स्वाधिष्ठानचक्रके समीप स्थित हैं। रेकी ऊर्जा-उपचारमें इन ऊर्जा-केन्द्रों और चक्रोंके संतुलनसे शरीरके भावतरंगोंमें वृद्धि होनेसे शरीरकी सभी प्रणालियोंमें संतुलन आ जाता है।

रेकीके पाँच सिद्धान्त

सफलता पानेके मार्गमें सबसे बड़ी चुनौती नकारात्मक विचारों तथा कार्योंसे छुटकारा पाना, सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना एवं बीचमें असफलताओंके रहते धैर्य धारण कर आगे बढ़ते रहनेसे मनोरथ पूरा होता है। डॉ० उसईने अन्त:करणको विकृत करनेवाली रोगोंकी जनक नकारात्मक प्रवृत्तियोंको सकारात्मक प्रवृत्तियोंमें बदलने-हेतु पाँच सिद्धान्तोंको निर्धारित किया। साधक इनका नित्य-प्रति संकल्प लेता है, सोनेसे पूर्व दोहराता है और दिनभरके अपने क्रिया-कलापका स्वत: द्रष्टा बनकर, मूल्याङ्कन कर आत्मसंतोष अनुभव करता है। ये उसे दिनभरके प्रपञ्चोंसे दूर रखते हैं, दिनचर्यामें सम्मिलित हो जीवनके अङ्ग बनकर अन्तर्ज्ञान एवं विचारोंको पवित्र कर सुख-शान्तिकी नींद सुलाते हैं। मानसिक ऊर्जाओंके पुन:संतुलन-क्षमताओंकी किसीमें कमी नहीं है, पर यदि इन्हें विकसित या इनका उपयोग न किया जाय तो इन क्षमताओंका कोई लाभ नहीं—

१-केवल आज मैं क्रोध नहीं करूँगा—आवेशमें क्रोधी अनर्गल अलापद्वारा राहोंमें काँटे बिखेर अपना तथा अन्यका जीवन कण्टकमय बना देता है और वे जीवनभर चुभते रहते हैं।

२-केवल आज मैं चिन्ता नहीं करूँगा—

'चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवितम्'।

'चिता तो निर्जीवको जलाती है, पर चिन्ता जीवित व्यक्तिको ही जला देती है।'

भविष्य जो आया ही नहीं, उसकी चिन्तामें रहकर वर्तमानको खोना है। जो बीत गया उसमें भी अब कुछ किया नहीं जा सकता। उसकी चिन्ता भी व्यर्थ है। अत: वर्तमानको सुधारना है।

३-केवल आज मैं उस परम सत्ताका आभार व्यक्त करूँगा—आज जो भी ज्ञान-मान-सम्मान, यश-पद-बल, धन-ऐश्वर्य मेरा है, उसे मैंने परिजन-परिश्रम, बुद्धि-चतुराई और इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त किया, पर ये संचालित तो उसी सत्तासे हैं, उसके बिना मेरी हस्ती क्या? जहाँ मैं विवश, हताश-निराश हुआ, उसीने हाथ दे सम्भाला। अत: मुझे उस परम सत्ताका आभार व्यक्त करना होगा।

४-केवल आज मैं अपना काम ईमानदारीसे करूँगा— एक झूठको पचाने-हेतु सौ झूठ बोलकर भी अन्तरात्मा बेचैन एवं तनावग्रस्त रहता है और ईमानदार रहनेसे—सत्यकी शरण लेनेसे नि:संकोच, संतुष्ट-शान्त होकर सुखकी नींद सोये।

५-केवल आज मैं सब प्राणियोंसे प्रेम एवं उनका सम्मान करूँगा—सृष्टिके समस्त मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधोंमें उसी चैतन्यकी चेतना व्याप्त है तो फिर पराया कौन? सब अपने हैं, सभीसे प्रेम करना है, सबको सम्मान देना है।

आहार—मांस-मदिरा, धूम्रपान-तम्बाकू आदि, नशीले पेय-पदार्थ, अधिक तेल-मसालोंमें तले-भुने, चरपरे-चटपटे, गरिष्ठ पदार्थोंसे रहित, सादा सुपाच्य पोषक भोजन ले। भरपूर जल पीये, पर भोजनके समय नहीं। ताजे फलों और शाक-सब्जियोंका सेवन करे या उनका रसाहार ले। फल तथा कच्चे शाक-सब्जियोंके रसमें नीबू, गाजर और सेबका रस मिलानेपर रसाहार स्वादिष्ट होकर बीस-पचीस मिनटमें पचकर नवीन रक्तकणों—कोशिकाओंका शीघ्रातिशीघ्र निर्माण कर शरीरसे विष, विजातीय पदार्थोंको निकालकर, शरीरको रोग-मुक्त कर नयी स्फूर्ति तथा शक्ति प्रदान करते हैं। इसके साथ ही आसन, प्राणायाम तथा ध्यानकी प्रक्रियाका भी अवलम्बन ले। ऊर्जा-प्रवाहकी तरंग जितनी मुक्त होती है, उसका अनुभव मनको स्वत: होता है और हम उतने ही समृद्ध-संतुष्ट और स्वयंको स्वस्थ भी अनुभव करने लगते हैं।

साधक प्राणायामद्वारा मस्तिष्कके स्नायु-जाल (मस्तिष्कसे सम्पूर्ण दूषित रक्तको निकाल और हृदयमें शुद्ध रक्त

अधिकाधिक भरनेपर) तथा मनोविकारों (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मात्सर्य, ईर्ष्या-द्वेष और घृणा-शोकादि)-को दबाकर जहाँ मानसिक समता-स्थापनमें समर्थ होता है, वहीं शरीरके अन्य स्नायुओं, ग्रन्थि-समूहों और मांस-पेशियोंको समृद्ध-सशक्त एवं पुष्ट बनाता है। श्वास लेते हुए भावना करे कि शुद्ध वायुके साथ हमारा शरीर सुन्दर, सशक्त, स्वस्थ एवं नीरोग हो रहा है और श्वास छोड़ते समय ऐसी ही भावना करे कि शरीरके सब दूषित मल-विकार आदि श्वासके साथ बाहर निकल रहे हैं।

श्वास-क्रिया स्वाभाविक होनेपर, मनके स्थिरता-हेतु दिव्य ऊर्जाके स्थूल स्वरूप-चिन्तनार्थ श्वास लेते समय भावना करे कि सूर्य-जैसा स्वर्णमय प्रकाशपुञ्ज आकाशमें स्थिर है। सारा आकाश प्रकाशमान है। श्वास छोड़ते समय भावना करे कि वह सुनहरा प्रकाशपुञ्ज (सुदर्शनचक्रकी भाँति) घूमता हुआ हमारे सिरपर धीरे-धीरे आ रहा है। गहरे श्वासकी गतिके साथ वह बैंगनी प्रकाश छोड़ते हुए सहस्रार-चक्रके भीतर प्रवेश कर रहा है। हमारे गहरे श्वासके साथ वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ क्रमशः ज्ञान-चक्रतक आते हुए नीलवर्ण, विशुद्धचक्रमें हरित-नील (फिरोजी) आभा, अनाहतमें हरितवर्ण, मणिपूरमें पीतवर्ण, स्वाधिष्ठानमें सिन्दूरी वर्ण तथा मूलाधारमें रक्तवर्णी आलोक फैलाकर जागरूक चेतना, प्रेम और समृद्धि प्रदान कर रहा है।

रेकी-आवाहन—अपने दोनों हाथोंको पुष्पाञ्जलि-अर्पणकी मुद्रामें पसारते हुए स्वयंका (अथवा अन्यका) उपचार करनेसे पूर्व रेकी-शक्तिका निम्न प्रकारसे आवाहन करे—'हे ईश्वरीय रेकी-शक्ति! मैं (अपना नाम उच्चारण कर) श्री (रोगीका नाम लेकर)-का उपचार करना चाहता हूँ, कृपया अपनी दिव्य शक्तिका मेरे शरीरमें संचार करें।' यह तीन बार कहना है। इसके पश्चात् मार्ग-दर्शक गुरुका आवाहन करे—'समस्त जाने-अनजाने रेकी मार्गदर्शक गुरुजनो! मैं (नाम) रेकी-उपचार करने-हेतु आपका आवाहन कर रहा हूँ। आप उपचारमें सहयोग करनेकी कृपा करें।'

ऊर्जा-चक्रोंका चैतन्यकरण—हथेलियोंके मध्य गहराईमें एक इंच व्यासके और अँगुलियोंके ऊपरी छोरोंके पोरोंपर नन्हे चक्र हैं। इनपर ध्यान देते हुए बारी-बारीसे पहले एक हाथकी अँगुलियोंके चक्रोंको दूसरे हाथकी हथेलीके चक्रमें, घड़ीकी सूइयोंके चलनेकी दिशामें प्रत्येकको सात-सात बार फिर दूसरी हथेलीकी अँगुलियोंको तथा दोनों हथेलियोंके चक्रोंको परस्पर इक्कीस-इक्कीस बार घुमाते हुए रगड़कर चेतन करे। अब दोनों हथेली आमने-सामने दो फीटकी दूरीपर रख धीरे-धीरे इन्हें पास लानेका प्रयास करे। ध्यान चक्रोंपर ही केन्द्रित रहे। यदि हथेलियोंमें हलकी-सी कम्पन-झनझनाहट-कसाव या तनाव आदिकी संवेदनशीलताका आभास हो तो समझ ले, चक्र चेतन हो गये हैं और आगे उपचारकी ओर बढ़े, अन्यथा इन्हें जाग्रत् करने-हेतु पुनः उक्त क्रिया दोहराये।

आभा-मण्डल-शुद्धिकरण—देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियोंके मुख-मण्डल उनके चित्रोंमें प्रखर प्रकाशयुक्त आभा-मण्डलके मध्य दर्शाये जाते हैं। ऐसा ही चुम्बकीय या प्रकाश ऊर्जा-क्षेत्र सभी निर्जीव-सजीव प्राणियों, पेड़-पौधोंका भी होता है। इसे आभा-मण्डल (ओरा) कहते हैं। शरीरसे लगभग छ:से आठ फीटकी दूरीतक बाह्य आभा-मण्डल और चारसे छः इंचकी दूरीतक आन्तरिक आभा-मण्डल फैला रहता है। रेकी-उपचार आन्तरिक आभा-मण्डलपर अवलम्बित है। रोगीको अपने सामने खड़ाकर ले अथवा लिटा ले। उपचारकर्ता अपनी हथेलियाँ कपनुमा मुद्रामें कर उसके सिरके ऊपरसे पैरोंतक शरीरसे तीन-चार इंचकी दूरी बनाये रखे और शरीरके समस्त दूषित तत्त्वोंको समेटकर अपने बायें कन्धेके ऊपरसे झिटकते हुए फेंककर अन्तरिक्षमें प्रज्वलित तप्त अग्निकुण्डमें भस्म कर दे। ऐसी क्रिया सात बार दोहराये। मनमें भावना करे कि प्रकृतिकी ओरसे जामुनी रंगकी अग्नि जल रही है, जिसमें दूषित तत्त्व भस्म हो रहे हैं।[१] इस तरह आभा-मण्डलके शुद्धिकरणोपरान्त अपने हाथ शुद्ध[२] कर स्वतः शुद्ध जल पीये, रोगीको भी

१-रोगीके शरीरमें कोई घाव, नासूर, फोड़ा, ट्यूमर या कैंसर आदि हो तो उपचारकर्ता मनमें भावना करे कि वह स्वयं एक सर्जन है और कल्पित रूपसे उस स्थलकी चीर-फाड़-क्रिया हाथोंसे करते हुए उसके अंदरका सब दूषित पदार्थ समेटकर भस्म कर रहा है।

२-एक चम्मच नमक एक ग्लास पानीमें घोलकर हाथोंको शुद्ध करनेसे समस्त दूषित पदार्थ गल जाते हैं।

पिलाये। प्राय: सामान्य रोग तो तीन-चार दिनतक आभा-मण्डलके शुद्ध करनेपर शान्त हो जाते हैं, पर जीर्ण रोगोंके लिये रेकी-उपचार भी दे।

स्पर्श-ऊर्जा (रेकी)-उपचारकी चौबीस स्थितियाँ— चक्रों (हथेलियों)-के चेतन होनेपर अनुभव करे कि दिव्य ऊर्जा शरीरमें प्रवाहित हो रही है। अब अपनी हथेलियोंसे निम्न स्थितियोंमें कम-से-कम तीनसे पाँच मिनटतक स्पर्श दे।[1] पीडित अङ्गोंपर पंद्रहसे तीस मिनट (उदर और तलुओंका शरीरके विभिन्न अङ्गोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसपर) उपचारके अन्तमें अतिरिक्त ऊर्जा-स्पर्श देनेसे ये नीरोगी और सशक्त होंगे। उपचारकर्ता तथा रोगी (दोनों)- की श्वसन-क्रियाकी लय समान होनेपर उसकी पीडा एवं आरामकी दशाका अनुभव उपचारकर्ताको होने लगता है। हथेलीकी अँगुली परस्पर मिली रहे, सामान्य स्थितिमें बायीं हथेली बायें अङ्गोंमें और दायींको दायें अङ्गोंमें निम्न स्थितियोंमें निर्देशानुसार शरीरको स्पर्श दे। वक्ष एवं प्रजनन अङ्गोंका स्पर्श वर्जित है। तीन इंच ऊपरसे ऊर्जा स्पर्श दे। एक स्थितिसे दूसरी स्थितिमें जाते समय शरीरसे ऊर्जा-सम्पर्क न टूटे। पहले एक हाथ उठाकर वह जब दूसरी स्थितिपर पहुँच जाय तब दूसरा हाथ उठाये।

स्पर्श-चिकित्साकी चौबीस स्थितियाँ इस प्रकार हैं—(१) दोनों हथेलियाँ दोनों आँखोंपर, (२) कानोंपर, (३) जबड़ोंपर, (४) कनपटियोंपर, (५) मस्तिष्कपर (पीछे) दोनों एक साथ, (६) बायीं हथेली पाँचवीं स्थितिमें ही दायें मस्तकपर, (७) बायीं हथेली गर्दनके पीछे दायीं आगे गलेपर, (८) बायीं गलेसे नीचे वक्षपर दायीं-बायीं हथेलीके नीचे, (९) बायीं नाभिसे ऊपर तथा दायीं नाभिपर, (१०) बायीं-दायीं हथेलीके नीचे पेड़ूपर दायीं उसके नीचे, (११) फेफड़ोंपर, (१२) बायीं प्लीहा-हृदयपर, दायीं यकृत्पर, (१३) बायीं छोटी आँतपर, दायीं बड़ी आँतपर, (१४) दोनों हथेलियाँ नाभिसे नीचे मूत्राशय, डिम्बग्रन्थि, अण्डकोशपर, (१५) दोनों कन्धोंपर, (१६) पीछे गुर्दोंपर, (१७) गुर्दोंके नीचे पीठपर, (१८) रीढ़के अन्तिम छोरपर दोनों साथ-साथ, (१९) बायीं हथेली दायीं भुजापर, दायीं हथेली बायीं भुजापर (आलिङ्गनमुद्रामें), (२०) जंघाओंपर, (२१) घुटनोंपर, (२२) पिण्डलियोंपर, (२३) टखनोंपर और (२४) तलुओंपर।

तदनन्तर पीडित अङ्गों—उदर और तलुओंपर अतिरिक्त स्पर्श देना है तो दे, अन्यथा रेकी-उपचार पूरा हुआ। अब रेकी-मार्गदर्शक गुरुओं एवं रोगीका आभार व्यक्तकर सम्बन्ध तोड़ ले। यथा—'हे दिव्य रेकी-शक्ति! आपका एवं समस्त जाने-अनजाने मार्गदर्शक रेकी गुरुओंका इस उपचार-क्रियामें कृपा करने-हेतु मैं (नाम) आपका आभारी हूँ एवं श्री (रोगीका नाम लेकर)-ने जो अपने उपचारका दायित्व मुझे सौंपा था, उसके लिये आभार व्यक्त करता हूँ और अब आप सभीसे मैं अपना सम्बन्ध विच्छेद करता हूँ, विच्छेद करता हूँ; विच्छेद करता हूँ। इसके उपरान्त उपर्युक्त विधिसे हाथ शुद्धकर शुद्ध जल स्वयं पीये एवं रोगीको पिलाये।[2]

त्रिफला—हरड़, बहेड़ा, आँवलाकी समान मात्राको त्रिफला कहते हैं।
त्रिकटु—सोंठ, कालीमिर्च, पीपलकी बराबर मात्राको त्रिकटु कहते हैं।
त्रिमद—वायविडंग, नागरमोथा, चित्रककी समान मात्राको त्रिमद कहते हैं।
त्रिजात—दालचीनी, तेजपात एवं इलायचीकी समान मात्राको त्रिजात कहते हैं।
त्रिलवण—सेंधानमक, कालानमक और विड्नमककी समान मात्राको त्रिलवण कहते हैं।

१-उपचारके समय बारम्बार समयकी अवधि एवं स्थितियोंको बदलते समय ध्यान भङ्ग न हो, पूर्वहीमें समस्त निर्देशोंको रिकार्ड कर ले।

२-इस लेखमें प्रस्तुत तथ्योंपर यदि कोई शंका हो तो उसके समाधान-हेतु निम्नलिखित पतेपर जवाबी पोस्टकार्ड भेज सकते हैं, अथवा दूरभाषसे सम्पर्क कर सकते हैं— डॉ० राजकुमार शर्मा

ॐश्रीहरि: पॉलीक्लीनिक, विष्णु मार्केट-दौराला, पिन—२५०२२१, दूरभाष—(०१२१) ६४४३२१

पिरामिड-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मिस्रके पिरामिड दुनियाके सात आश्चर्योंमें परिगणित हैं। दुनियाके वैज्ञानिक उसका रहस्य जाननेको उत्सुक हैं। उसकी गहन खोजमें इस प्रकार लगे हुए हैं कि हजारों साल पहलेकी लाशें (ममी) पिरामिडके नीचे रखी हुई हैं। फिर भी खराब क्यों नहीं हो रही हैं, इसका क्या कारण है? अभीतककी की हुई खोजोंसे पता चला है कि इसके नीचे तथा इसके ऊपर विद्युत्-लहरें बराबर चलती रहती हैं, जिनसे ऊर्जाका बहाव निरन्तर होता रहता है, इसी कारण लाशोंमें दुर्गन्ध (बदबू) नहीं आ रही है। कुछ और गहन खोज करनेके पश्चात् वैज्ञानिकोंने यह भी पाया है कि इस ऊर्जाद्वारा हम अपने दैनिक जीवनमें भी लाभ उठा सकते हैं। पिरामिडद्वारा विभिन्न उपयोग हो सकता है और हम दैनिक जीवनमें इसे अपनाकर अधिक लाभ उठा सकते हैं।

पिरामिडके कुछ उपयोग इस प्रकार हैं—

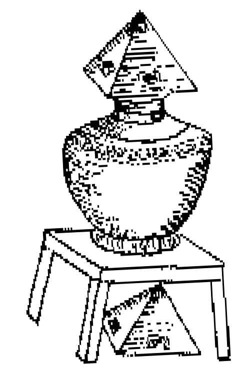
१-पिरामिडका व्यवहार सिरके ऊपर करनेसे मानव-मस्तिष्कपर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और हमारे विचार अच्छे हो जाते हैं।

२-बच्चोंको घरपर अध्ययन-कालमें पिरामिड पहनाकर तथा कुर्सीके नीचे रखकर उनकी बुद्धिका विकास करवा सकते हैं, उन्हें याद जल्दी हो जायगा एवं होशियार हो जायँगे।



अध्ययन करते वक्त पिरामिडका उपयोग

३-पिरामिडको जलकी हंडीके ऊपर रख देनेसे बारह घंटेके भीतर ही जल अधिक स्वादयुक्त, मीठा तथा आरोग्यप्रद हो जाता है।



जलको आरोग्यप्रद बनानेके लिये पिरामिडका उपयोग

४-खाने-पीनेके सामान एवं अङ्कुरित खाद्य-पदार्थ पिरामिडके नीचे रखनेसे गुणयुक्त एवं स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा लम्बे समयतक ताजे बने रहते हैं। दूध, दही, मिठाई तथा अनाज कुछ भी रख सकते हैं।

५-शरीरके जिस भागमें रोग या दर्द हो, उस भागपर पिरामिड रखनेसे रोग एवं दर्द दूर हो जाता है। पेटकी गड़बड़ीमें पिरामिड पेटपर रखनेसे पेट ठीक हो जाता है तथा पिरामिडका चार्ज किया हुआ गरम जल पीनेसे भी अच्छा लाभ होता है।



दर्दको दूर करनेके लिये पिरामिडका उपयोग

६-तरकारी तथा साग-भाजी पिरामिडके नीचे रखनेपर ताजी बनी रहती है, जल्दी खराब नहीं होती।

७-प्रतिदिन चेहरे एवं आँखोंको पिरामिडयुक्त जलद्वारा धोनेसे त्वचा चमकने लगती है, चेहरेकी कान्ति एवं आँखोंकी रोशनी बढ़ जाती है।

८-पिरामिडको हैटकी तरह प्रतिदिन प्रातः-सायं आधे घंटेतक पहन रखनेसे सिर-दर्द, आधा-शीशी, बालोंका झड़ना, साइनस, टेंशन, डिप्रेशन, अनिद्रा, सफेद बाल आदि बीमारियाँ दूर होती हैं।

९-ध्यान तथा पूजा-प्रार्थना करते समय पिरामिड पहन लेनेसे एकाग्रता मिलती है।

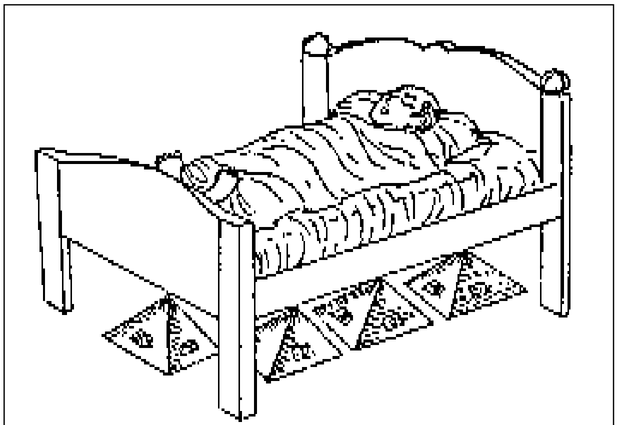
१०-क़ब्ज़के रोगी यदि प्रातः चार गिलास जल पीकर पेटपर पिरामिड रखें तो मल-विसर्जनमें कठिनाई नहीं होगी।

११-ऑफिसमें कुर्सीके नीचे पिरामिड रखनेसे ऊर्जा (Energy) मिलती है तथा शरीरमें फुरती आती है।

१२-टूथपेस्ट, तेल, बाम एवं दवाइयाँ पिरामिडके नीचे तीन-चार दिन रखनेसे उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

१३-बगीचोंमें पिरामिडयुक्त जलका सिंचन करनेसे फूलोंके रंग आकर्षक हो जाते हैं और वे रोगमुक्त रहते हैं।

१४-रातको सोते समय पलंगके नीचे पिरामिड रखनेसे बहुत अच्छी नींद आती है तथा नींदकी गोलियोंसे छुटकारा मिल जाता है।



शरीरको स्वस्थ रखने एवं निद्राके लिये पिरामिडका उपयोग

१५-पिरामिड-जलसे तैयार की गयी तुलसीकी पत्ती खानेसे सर्दी, ज्वर, दर्द तथा अनेक रोगोंमें लाभ होता है।

१६-वास्तुशास्त्रमें भी पिरामिडका विशेष महत्त्व बताया गया है।

१७-अनेक पिरामिडोंसे बने यन्त्रको नित्यप्रति व्यवहारमें लानेसे शरीरके हर प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

धूम्रपान-चिकित्सा

[औषधियोंका धुआँ नासिका तथा मुखद्वारा लेना]

(श्रीनाथूरामजी गुप्त)

औषधियोंके धूम्रको पान करनेकी एक चिकित्सा-पद्धति भी आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें वर्णित है। यज्ञोंद्वारा अग्निकुण्डसे निकले पवित्र होतव्य द्रव्यसे उद्दीप्त वायुद्वारा सम्पूर्ण वायुमण्डलकी पवित्रता सर्वविश्रुत ही है। इस धूमसे न केवल देवता आप्यायित होते हैं, अपितु सम्पूर्ण प्राणिजगत् लाभान्वित होता है। प्राचीन कालमें नित्य हवनकी परम्परा थी। जिससे पूरा परिसर सुगन्धित रहता था। आयुर्वेदके आचार्योंने रोगोंके उपशमनके लिये विशेष प्रकारकी औषधियोंद्वारा धूम्रवर्तिकाका निर्माण करके पुनः उसे प्रज्वलित कर विधिपूर्वक धूम्रके सेवनका विधान किया है, जिससे अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। यह धूम्रपान आजके तथाकथित पतनकारी और अनारोग्यकारक धूम्रपानसे सर्वथा भिन्न है।

इसमें यह सिद्धान्त है कि जब मादक द्रव्योंकी गन्ध अग्निके संसर्गसे तीव्र होकर शरीरको अधिक हानि पहुँचाती है तथा नये विकार उत्पन्न करती है तो रोगनाशक या पौष्टिक द्रव्य निश्चय ही अग्निके माध्यमसे विखण्डित हो, धूम्रपानद्वारा शरीरको पुष्टि तथा आरोग्य प्रदान करेंगे।

धूम्रपानके लाभके विषयमें आचार्य चरक बताते हैं—धूम्रपान करनेसे सिरका भारीपन, शिर:शूल, पीनस, अर्धाव-भेदक (Hemicrania), शूल, कास, हिचकी, दमा, गलग्रह,

दाँतोंकी दुर्बलता, कान, नाक, नेत्रोंसे दोषजन्य-स्रावका होना, पूतिघ्राण (नाकसे दुर्गन्धका निकलना Ogoena), आस्यगन्ध (Foul smell of mouth), दाँतका शूल, खालित्य, केशोंका पीला होना, केशोंका गिरना (इन्द्रलुप्त), छींक आना, अधिक तन्द्रा होना, बुद्धि (ज्ञानेन्द्रियों)-का व्यामोह होना तथा अधिक निद्रा आना आदि अनेक रोग शान्त होते हैं। बाल, कपाल, इन्द्रियोंका तथा स्वरका बल अधिक बढ़ता है, जो व्यक्ति मुखसे धूम्र-सेवन करता है, उसे जत्रु (ठोढ़ी)-के ऊपरी भागमें होनेवाले रोग विशेषकर शिरोभागमें वात-कफजन्य बलवती व्याधियाँ नहीं होती हैं।[१]

यदि सिर, नाक और नेत्रगत दोष हो और धूम्र पीने योग्य पुरुष हो तो उसे नासिकासे धूम्रपान करना चाहिये और यदि कण्ठगत दोष हो तो मुखसे धूम्र पीना चाहिये। नासिकासे धूम्र पीनेके बाद धूम्रको मुखसे ही निकालना चाहिये। धूम-कवल (घूँट) मुखसे लेनेपर नासिकासे कभी न निकाले; क्योंकि विरुद्ध मार्गमें गया हुआ धूम नेत्रोंको नष्ट कर देता है।[२]

औषधिके धूम्रपानकी विधिका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि रोगके अनुसार निर्धारित औषधियोंको कूट-छानकर एक सरकंडेके ऊपर लपेटकर जौके आकारकी (बीचमें मोटी आदि-अन्तमें पतली) अँगूठेके समान मोटी तथा आठ अंगुल लम्बी वर्ति (बत्ती) बनानी चाहिये। छायामें रखनेपर जब बत्ती सूख जाय तो सीकको निकालकर घृत, तेल आदि स्नेहसे उसे आर्द्रकर धूमनेत्र (Cigarette Holder)-में रखकर अग्निसे जलाकर इस सुखकारी प्रायोगिक धूम्रका धीरे-धीरे तीन या नौ बार सुखपूर्वक सेवन करना चाहिये। धूम्रपानहेतु योग (मिश्रणहेतु औषधियों)-का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं—

हरेणुकां प्रियङ्गुं च पृथ्वीकां केशरं नखम्॥
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीरपद्मकम्।
ध्यामकं मधुकं मांसीं गुग्गुल्वगुरुशर्करम्॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभाः।
वन्यं सर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले॥
श्रीवेष्टकं शल्लकीं च शुकबर्हमथापि च।

(चरक सूत्र० ५।२०—२३)

अर्थात् हरेणुका, प्रियंगुफूल, पृथ्वीका (काला जीरा), केशर, नख, ह्रीवेर, सफेद चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, खश, पद्मांक, ध्यामक, मुलहठी, जटामासी, गुग्गुल, अगर, शर्करा, बरगदकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पाकड़की छाल, लोधकी छाल, वन्य, सर्जरस (राल), नागरमोथा, शैलेय, श्वेत कमलपुष्प, नीलकमल, श्रीवेष्टक, शल्लकी तथा शुकबर्ह—इन औषधियोंकी वर्तिका बनानी चाहिये।

शिरोविरेचनार्थ (सिरके भारी होनेपर छींक लेने-हेतु) निम्न धूम्रपान-योग बताया गया है—

श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितालं मनःशिला॥
गन्धाश्चागुरुपत्राद्या धूमं मूर्धविरेचने।

(चरक सू० ५।२६-२७)

अर्थात् अपराजिता, मालकाँगनी, हरताल, मैनसिल, अगर तथा तेजपत्र—इन औषधियोंकी वर्तिका बनाकर धूम्रपान करनेसे शिरोविरेचन होता है। यह चिकित्सा-पद्धति अब लुप्तप्राय हो गयी है, पर प्राचीन समयमें यह मुख्य आरोग्यविधि थी।

१-चरक सू० ५।२७—३३।

२-धूमयोग्य: पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये॥
घ्राणेनास्येन कण्ठस्थे मुखेन घ्राणपो वमेत्। आस्येन धूमकवलान् पिबन् घ्राणेन नोद्वमेत्॥
प्रतिलोमं गतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्धि चक्षुषी।
(चरक सूत्र० ५।४६—४८)

औषध-ऊर्जा प्रसारण—बाल (केश)-चिकित्सा-प्रणाली

(डॉ० श्रीअश्विनीकुमारजी)

प्रारम्भसे ही चिकित्साके क्षेत्रमें निरन्तर खोजें होती रही हैं और आध्यात्मिक चिकित्सा अति प्राचीन चिकित्साके रूपमें मान्य रहती आयी है। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति शाश्वत चिकित्साके रूपमें सदासे प्रतिष्ठित रही है। कालक्रममें पाश्चात्त्य जगत्‌के अनुसन्धानोंने चिकित्साके क्षेत्रमें नये मानदण्डों, मूल्यों एवं मान्यताओंको स्थापित किया और उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी हुआ है।

लंबे समयतक औषधियोंका व्यवहार विभिन्न रूपोंमें किया जाता रहा है। महान् दार्शनिक 'हिप्पोक्रेट' ने तो औषध-व्यवहारके क्षेत्रमें एक नया आयाम दिया और लोगोंको बताया कि औषधीय गुणवाले पदार्थोंका समान एवं असमान लक्षणोंके आधारपर व्यवहार किया जा सकता है। असमान लक्षणोंवाली प्रक्रिया तो लोकप्रिय होती चली गयी, परंतु समान लक्षण पैदा करनेवाले औषधका व्यवहार उतना लोकप्रिय नहीं हो पाया।

आजसे करीब दो सौ वर्ष पूर्व 'डॉ० हैनिमैन' ने असमान लक्षणोंपर औषधकी असफलताओंके आकलनके पश्चात् यह महसूस किया कि यह पद्धति पूर्ण नहीं है। तब स्थायी आरोग्यताकी खोजमें संलग्न डॉ० हैनिमैनने एक बहुत ही आश्चर्यजनक खोज कर डाली। उन्होंने मनुष्यके शरीरमें वर्तमान जीवनी-शक्तिको रोगका मूलभूत कारण माना। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्ति उसके स्वस्थ शरीरके संचालन-हेतु उत्तरदायी है। अत: जीवनी-शक्तिके कमजोर होनेकी स्थितिमें सम्पूर्ण शरीरमें अस्वस्थताके लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं एवं व्यक्ति बीमार पड़ने लगता है। डॉ० हैनिमैनने पाया कि जीवनी-शक्तिका स्वरूप अति सूक्ष्म एवं शक्तिशाली है। इसका संचालन स्वयं होता है एवं यह किसीपर निर्भर नहीं रहती। यह ऊर्जास्वरूप है। इसका शरीरमें होना इस बातसे तय होता कि शरीर गतिमान् रहता है, जिसे हम जीवनके रूपमें देखते हैं। इसके अभावमें शरीर मृत हो जाता है। अत: यह जीवनी-शक्ति शक्तिशाली ऊर्जाका रूप है। डॉ० हैनिमैनने इसी ऊर्जास्वरूप जीवनी-शक्ति चिकित्साकी बात कही। तब इसकी चिकित्सा कैसे की जाय? इसपर उन्होंने बताया कि प्रकृतिमें हजारों प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ एवं औषधीय गुणवाले पदार्थ विद्यमान हैं, जिनके उपयोगका निर्धारण मनुष्य अपने ज्ञानके आधारपर करता आया है। अपने शोधके दौरान डॉ० हैनिमैनने पाया कि इन औषधीय गुणवाले पदार्थोंमें विद्यमान जीवनी-शक्तिका व्यवहार मनुष्यकी जीवनी-शक्तिकी चिकित्साके लिये किया जा सकता है। इसी खोजके क्रममें एक अद्भुत औषधिका उदय डॉ० हैनिमैनद्वारा हुआ, जिसे आज हम होमियोपैथीकी ऊर्जात्मक औषधि (पोटेन्टाइज्ड)-के रूपमें जानते हैं। होमियोपैथीकी यह रहस्यमय औषधि आज भी संदेहकी दृष्टिसे देखी जाती है, क्योंकि इन औषधियोंमें एक भी मूल औषधके अणु विद्यमान नहीं रहते हैं। परंतु दो सौ वर्षोंका अनुभव यह बताता है कि ये ऊर्जात्मक औषधियाँ कई असाध्य कहे जानेवाले रोगोंको ठीक कर चुकी हैं। इसलिये इस ऊर्जा—औषधिकी सत्ताको स्वीकार करना पड़ता है। स्वयं डॉ० हैनिमैन अपनेद्वारा खोजी गयी औषधिके प्रति काफी उत्साहित एवं इनके व्यवहारके प्रति सजग थे। उन्हें आभास था कि ऊर्जा खानेकी वस्तु नहीं होती है। अत: इसके व्यवहारहेतु उन्होंने खिलाना (परम्परा), स्पर्श या सूँघना-जैसे साधनोंके व्यवहारकी बातें कहीं। यही नहीं, उन्होंने होमियो-औषधियोंके प्रभावकी तुलना मेस्मेरिज्मसे कर डाली, निश्चय ही ऊर्जा औषधिद्वारा जीवनी-शक्तिकी चिकित्सा करनेका विधान होमियोपैथ पद्धति है।

कालक्रममें आजसे करीब चालीस वर्षों पूर्व डॉ० बी० सहनीने पुन: डॉ० हैनिमैनके खोजोंमें नयी शृङ्खला स्थापित की। उन्होंने अनुभव कर यह पाया कि ऊर्जा-औषध निश्चय ही खाने योग्य वस्तु नहीं है। यह तो मात्र ऊर्जाका प्रभाव है कि जिसमें जीवनी-शक्तिको प्रभावित करनेकी क्षमता है। ऊर्जा-प्रभावमें प्रसारणका गुण होता है, अत: ऊर्जा-औषध केवल प्रसारणद्वारा ही जीवनी-शक्तिको

प्रभावित करता है। डॉ० बी० सहनीकी यह महान् खोज चिकित्सा-जगत्‌की एक क्रान्तिकारी उपलब्धि है, क्योंकि परम्परागत दवा खिलानेको उन्होंने प्रसारणमें विस्थापित किया। दवाओंका प्रसारण दूरसे भी सम्भव है, केवल एक माध्यमकी आवश्यकता रहती है।

दवाओंका दूरसे प्रसारण ऊर्जा औषधियोंका एक विशिष्ट गुण है। होमियोपैथी एवं अन्य पदार्थविहीन औषधियाँ जिनमें ये गुण हैं, प्रसारित हो सकती हैं। इन्हें प्रसारण करने-हेतु केवल माध्यमकी आवश्यकता होती है।

प्रसारणके माध्यमके रूपमें शरीरके किसी भी अङ्ग या अवयवका व्यवहार किया जा सकता है। 'बाल' (केश) एक बहुत ही सुगम माध्यम है, जिसे अति सरलताके साथ प्राप्त किया जा सकता है, अतः बालद्वारा दवा-प्रसारणकी परम्परा चल पड़ी। इसे डॉ० बी० सहनीके अनुयायियोंद्वारा 'सहनी इन्फेक्ट' के नामसे जाना जाने लगा। प्रश्न उठता है कि दवाओंका प्रसारण कैसे सम्भव है? उपर्युक्त वर्णित तथ्योंको अगर देखें तो आजके वर्तमान 'रिमोट एप्लीकेशन' के समयमें इसे समझना अति सरल हो जाता है। आज हमारे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें रिमोटका व्यवहार हो रहा है। टेलिविजन, रेडियो, अन्तरिक्ष यान सभी 'रिमोट कण्ट्रोल' द्वारा संचालित हैं। वैज्ञानिक उपकरणोंमें एक निश्चित फ्रिक्वेन्सीकी वेवको प्रसारितकर कार्य सम्पादन किया जा रहा है। इसी प्रकार ऊर्जा-औषधिमें भी प्रत्येक औषधिकी अपनी वेवलेंग्थ (तरंग-दैर्घ्य) होती है, इनकी फ्रिक्वेन्सी भी निश्चित है। प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्ति भी एक निश्चित वेवलेंग्थकी होती है। इस प्रकार करोड़ों तरहके वेवलेंग्थ हैं, यानी प्रत्येक मनुष्यका अपना वेवलेंग्थ। इसी प्रकार सभी ऊर्जा-औषधियोंका अपना अलग वेवलेंग्थ है। ये दो जब एक-दूसरेके सम्पर्कमें आते हैं तो परस्पर प्रभावित होकर अवस्था-परिवर्तन करते हैं। इस अवस्था-परिवर्तनको हम औषधीय प्रभावके रूपमें देखते हैं। मनुष्यके शरीरके कोई भी अङ्ग या अवयव अपने अंदर वर्तमान ऊर्जाके वेवलेंग्थकी फ्रिक्वेन्सी प्राप्त करते रहते हैं, चाहे वह शरीरसे अलग क्यों न हो जाय। यही कारण है कि शरीरसे अलग बाल दवाके सम्पर्कमें आनेपर अनुनादके रूपमें रोगीके शरीरतक औषधि-ऊर्जाको प्रेषित कर देता है।

वैज्ञानिक व्याख्या कई आधार लेकर की जा सकती है। स्वयं डॉ० बी० सहनीने अपने शोध-पत्रमें 'रमन'-के प्रभावको लेकर इसकी व्याख्या करनेकी कोशिश की है, परंतु अभी निश्चय ही हम इस क्षेत्रमें औषध-ऊर्जा-प्रेषणके सही स्वरूपकी पूरी कार्य-प्रणालीको नहीं जान पाये हैं। यह विज्ञानकी सीमा है। दर्शनका प्रादुर्भाव व्यवहारमें प्राप्त परिणामके आधारपर होता है तत्पश्चात् वैज्ञानिक व्याख्या।

आज इन व्याख्याओंके परे व्यावहारिक रूपसे यह देखा जा रहा है कि सैकड़ों तरहके असाध्य कहे जानेवाले रोगोंपर औषध-ऊर्जाका दूरसे तात्कालिक प्रभाव हो रहा है।

इस चिकित्सा-विधिमें निरन्तर खोज बनाये रखने-हेतु स्वयं डॉ० बी० सहनी अपने जीवनकालमें ही 'रिसर्च इन्सटीट्यूट ऑफ सहनी ड्रग एवं होमियोपैथी' की स्थापना सन् १९७० ई० में कर चुके थे। संस्थानका प्रधान कार्यालय शिवपुरी, पटनामें अवस्थित है। इस संस्थानमें डॉ० सहनीके कार्यपर विस्तृत अध्ययन करने-हेतु निरन्तर खोज जारी है। साथ ही इस विधिके प्रशिक्षण एवं प्रसारण-हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। संस्थानके निश्चित पाठ्यक्रमद्वारा प्रशिक्षणकी व्यवस्था है। इसके साथ ही रोगियोंकी चिकित्सा-हेतु देश-विदेशके विभिन्न स्थानोंपर चिकित्सा-केन्द्र एवं चिकित्साकी स्थापनाका प्रयास किया जा रहा है।

भविष्यमें टेले-केन्द्रके स्वरूप टेले-चिकित्साके माध्यमसे दूर-दराज बैठे रोगियोंकी चिकित्सा एवं सभी केन्द्रों एवं चिकित्सकोंका एक-दूसरेसे कम्प्यूटरद्वारा जुड़े रहना असम्भव नहीं दिखता। यह भी सम्भव है कि आनेवाले अन्तरिक्ष युगके साथ चिकित्साको जोड़ने-हेतु औषध-ऊर्जा प्रसारणकी आवश्यकता होगी और यह चिकित्सा-जगत्‌की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

ज्योतिष—रोग एवं उपचार

(श्रीनलिनजी पाण्डे 'तारकेश')

ज्योतिष-विज्ञान और चिकित्सा-शास्त्रका सम्बन्ध प्राचीन कालसे रहा है। पूर्वकालमें एक सुयोग्य चिकित्सकके लिये ज्योतिष-विषयका ज्ञाता होना अनिवार्य था। इससे रोग-निदानमें सरलता होती थी। यद्यपि कुछ दशक पूर्वतक विदेशी प्रभावके कारण हमारे ज्योतिष-ज्ञानपर कड़ी और भ्रामक आलोचनाओंका कोहरा छाया था तथा इसे बड़ी हेय दृष्टिसे देखा जाता था, तथापि सौभाग्यसे इधर कुछ समयसे लोगोंका विश्वास तथा आकर्षण इस विषयपर पुनः बढ़ता नजर आ रहा है।

ज्योतिष-शास्त्रके द्वारा रोगकी प्रकृति, रोगका प्रभाव-क्षेत्र, रोगका निदान और साथ ही रोगके प्रकट होनेकी अवधि तथा कारणोंका भलीभाँति विश्लेषण किया जा सकता है। यद्यपि आजकल चिकित्सा-विज्ञानने पर्याप्त उन्नति कर ली है तथा कई आधुनिक और उन्नत प्रकारके चिकित्सीय उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचान सूक्ष्मतासे हो भी जाती है, तथापि कई बार देखनेमें आता है कि जहाँ इन उन्नत उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचानका सटीक निष्कर्ष नहीं निकल पाता है, वहीं रोगीका स्वास्थ्य, धन, समय आदिका व्यर्थ-व्यय क्लेशकारक भी हो जाता है। अतः ऐसेमें जो बात रह जाती है वह है दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा। किसी विद्वान् दैवज्ञके विश्लेषण एवं उचित परामर्शद्वारा न केवल स्थिति स्पष्ट होती है, अपितु कई बार अत्यन्त सहजतासे (ग्रहदान तथा जप आदिसे) रोग दूर हो जाता है। इस दृष्टिसे एक कुशल ज्योतिषी चिकित्साविद् तथा रोगी दोनोंके लिये मार्गदर्शक बन सकता है।

ज्योतिष-शास्त्रमें द्वादश राशियों, नवग्रहों, सत्ताईस नक्षत्रों आदिके द्वारा रोगके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कालपुरुषके विभिन्न अङ्गोंको नियन्त्रित और निर्देशित करनेवाली राशियों, ग्रहों आदिकी स्थितियोंके आधारपर हम किसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं। जन्म-चक्रमें स्थित प्रत्येक राशि, ग्रह आदि शरीरके किसी-न-किसी अङ्गका प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस ग्रह आदिका दूषित प्रभाव होता है, उससे सम्बन्धित अङ्गपर रोगका प्रभाव रह सकता है। इस सम्बन्धमें चन्द्रमाके अंशादिके आधारपर निकाली गयी विंशोत्तरीदशा (या अन्य प्रकारकी दशा)-का अध्ययन महत्त्वपूर्ण रहता है।

ज्योतिष-विज्ञानमें किसी भी विषयके परिज्ञानके लिये जन्म-चक्रके तीन बिन्दुओं—लग्न, सूर्य तथा चन्द्रका अलग-अलग और परस्पर एक-दूसरेसे अन्तःसम्बन्धोंका विश्लेषण मुख्य होता है। यह अध्ययन 'ज्योतिष और रोग'-के संदर्भमें और भी उपयोगी है। लग्न जहाँ बाह्य शरीरका, बाह्य व्यक्तित्वका दर्पण होता है, वहीं सूर्य आत्मिक शरीर, इच्छा-शक्ति, तेज एवं ओजका प्रतीक होता है। चन्द्रमाका सम्बन्ध हमारे मानसिक व्यक्तित्व, भावनाओं तथा संवेदनाओंसे होता है। सामान्य रूपसे यह समझा जा सकता है कि लग्न मस्तिष्कका, चन्द्र मन, उदर और इन्द्रियोंका तथा सूर्य आत्मस्वरूप एवं हृदयका प्रतिनिधित्व करता है।

सामान्य रूपमें हम राशियों और ग्रहोंके अन्तःसम्बन्धको इस तरह समझ सकते हैं कि राशियाँ जैसे अलग-अलग आकृतियोंवाले पात्र हों और ग्रह अलग-अलग प्रकृतिके पदार्थ तो जैसी प्रकृतिके पदार्थको जैसी आकृतिके पात्रमें डाला जायगा, वह तदनुरूप आचरण करेगा और वैसा ही फल भी देगा।

राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

विविध राशियों, भावोंके द्वारा हमारे किन-किन अङ्गोंका बोध होता है और किस प्रकारके रोग इनके द्वारा सम्भावित हैं, सर्वप्रथम इसपर संक्षिप्त चर्चा अग्रसारणी 'क' में वर्णित है—

सारणी 'क' राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

भाव	राशि	तत्त्व	अङ्ग	सम्भावित रोग
प्रथम	मेष	अग्नि	पिट्यूटरी ग्लैण्ड, पाइनीअल ग्लैण्ड, सिर, दिमाग, ऊपरी जबड़ा।	मस्तिष्क-रोग, विकार, सिरदर्द, मलेरिया, रक्ताघात, नेत्ररोग, पाइरिया, मुँहासे, चेचक, मसूढ़ेका दर्द, कोढ़, उन्माद, चक्कर-मिरगी आदि।
द्वितीय	वृष	पृथ्वी	थायराइड, गला, जीभ, नाक, आवाज, चेहरा, ग्रासनली तथा निचला जबड़ा।	गलगण्ड, मोटापा, कण्ठप्रदाह, डिप्थीरिया, फोड़ा-फुंसी, मद्य-सेवन, नेत्र-दोष, मुखपक्षाघात, दाँत-दर्द, मसूढ़ेकी सूजन।
तृतीय	मिथुन	वायु	स्कन्ध, फेफड़ा, ऊपरी पसली, कन्धे, कान, हाथ-बाजू, स्वरयन्त्र, श्वास-नली, कोशिकाएँ।	दमा, श्वास-नली-शोथ, मानसिक असंतुलन, मस्तिष्कज्वर, रोगभ्रमी, कंधेकी जकड़न, बाजूकी नसका दर्द, नकसीर, साइनोसाइटिस, एलर्जी, ब्रोंकाइटिस।
चतुर्थ	कर्क	जल	थाइमस ग्लैण्ड, नीचेकी पसली, फेफड़ा, स्तन, उदर।	अजीर्ण, अपच, उदर और पाचन-सम्बन्धी रोग, क्षय, कफ, गैस-विकार, जलोदर, कैंसर, वातरोग।
पञ्चम	सिंह	अग्नि	एड्रेनिल, तिल्ली, पित्ताशय, हृदय, यकृत्, पीठ, कोख, कमर, रक्त।	हृदयरोग, पीलिया, बुखार, मूर्च्छा, तीव्र-कम धड़कन, नेत्ररोग, कटिवेदना, आमवातिकज्वर, चेचक, अग्निमान्द्य, चलनविभ्रम।
षष्ठ	कन्या	पृथ्वी	नाभिचक्र, अग्न्याशय, कमर, मेखलाक्षेत्र, आँत।	आँतरोग, कोष्ठबद्धता, ऐंठन, बृहदान्त्र, शोथ, दस्त, हैजा, मूत्रकृच्छ्ररोग, आमाशयव्रण, मलद्वार-कष्ट, अर्थराईटिस।
सप्तम	तुला	वायु	गुर्दे, मूत्राशय, वस्ति, अण्डाशय, डिम्ब-ग्रन्थि, मूत्रवाहिनी, गर्भाशय नलिकाएँ।	गुर्दे-मूत्राशयरोग, कमर-दर्द, स्पाण्डलाइटिस, मधुमेह, रीढ़की हड्डीका दर्द, वृक्कशोथ, पथरी।
अष्टम	वृश्चिक	जल	मलद्वार, मलाशय, भ्रूण, लिङ्ग, योनि, अण्डकोष, गर्भाशय, प्रोस्टेट।	बवासीर, नासूर (नाड़ी-व्रण), पथरी, रतिरोग, रक्त-दूषित, विषपदार्थ, विचित्र कठिन रोग, कैंसर, हर्निया।
नवम	धनु	अग्नि	नितम्ब, जंघा।	साइटिका, रक्त-विकार, ट्यूमर, गठिया, दुर्घटना, चोट, घाव, पक्षाघात।
दशम	मकर	पृथ्वी	घुटने, जोड़, बाह्य त्वचा, बाल, नाखून, कंकाल।	घुटने, जोड़ोंका दर्द, गठिया, एक्जिमा, चमड़ीके रोग, मिरगी, ल्यूकोडर्मा, दाँत-दर्द, हाथीपाँव।
एकादश	कुम्भ	वायु	पाँव, कान, साँस, गुल्फ, एड़ी।	स्नायु-स्थानकी बीमारी, हृदयरोग, रक्त-विकार, पागलपन।
द्वादश	मीन	जल	तलवा, पाँव, दाँत।	गोखरू, लसिकातन्त्रके रोग, फोड़ा, व्रण, टी०बी०, ट्यूमर, कफदोष, पैरका लकवा, पैर, एड़ीका दर्द।

द्वादश राशियोंमें, भावोंमें कुछ अग्नि-तत्त्वका, कुछ वायु आदि तत्त्वका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तत्त्वोंकी प्रकृतिके आधारपर भी रोगकी पहचान सरलतासे हो सकती है। यथा—

१, ५, ९ राशि/भाव—अग्नितत्त्व प्रधान होनेसे ओज, बल तथा क्रियात्मकताका प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यत: शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अस्वस्थता थोड़े समयकी, किंतु तीव्र हो सकती है। इनमें माइग्रेन, अनिद्रा, मूर्च्छा, तीव्र सिरदर्द, मुँहासे आदि कठिनाइयाँ रह सकती हैं। इससे भूख-प्यास, निद्रा, आलस्य आदिकी अभिव्यक्ति होती है।

२, ६, १० राशि/भाव—पृथ्वीतत्त्व प्रधान होनेसे हड्डियों, मांस, त्वचा, नाखून, नाडी-रोग, केश आदिको बताता है। इनसे संधिवात, गठिया, वायु-विकार, कठिन-जटिल रोग, वजन एवं सम्बन्धित रोग, कीड़े, सर्पद्वारा काटना, वाहन-दुर्घटनाकी अभिव्यक्ति होती है।

३, ७, ११ राशि/भाव—वायुतत्त्व प्रधान होनेसे प्राण-वायुको बताता है। मानसिक विकार, निराशा, तनाव, पक्षाघात, अतिनशा (धुँआ), बुद्धि-विभ्रम, ग्रन्थियोंका कार्य,अधिक श्रमसे होनेवाले रोग होते हैं। फैलना, सिकुड़ना, चलना-फिरना, शरीरके कार्य व्यक्त होते हैं।

४, ८, १२ राशि/भाव—जलतत्त्व प्रधान होनेसे रक्त तथा जलीय पदार्थका नियन्त्रण होता है। ट्यूमर, कैंसर, कफ, इन्डरोग, हिस्टीरिया, अतिनशा (तरल), घबराहट, फोबिया-जैसे रोग सम्भावित होते हैं। ये भाव शरीरमें स्थित वीर्य, रक्त, त्वचा, मज्जा, मूत्र, लारको व्यक्त करते हैं।

नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

नवग्रहोंमें सूर्य-चन्द्र आदि तो जिस राशिमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-विचार होता है तथा राशिसे उनकी शत्रुता, मित्रताको भी देखा जाता है तथापि उनका स्वतन्त्र रूपमें जिस अङ्ग या रोग-विशेष बतलानेकी सम्भावना रहती है, वह निम्न सारणी 'ख' द्वारा समझी जा सकती है—

सारणी 'ख' नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

ग्रह	अङ्ग	रोग
सूर्य	सिर, हृदय, आँख (दायीं), मुख, तिल्ली, गला, मस्तिष्क, पित्ताशय, हड्डी, रक्त, फेफड़े, स्तन।	मस्तिष्क-रोग, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, उदर-विकार, मेननजाइटिस, मिरगी, सिरदर्द, नेत्रविकार, बुखार।
चन्द्र	छाती, लार, गर्भ, जल, रक्त, लसिका, ग्रन्थियाँ, कफ, मूत्र, मन, आँख (बायीं), उदर, डिम्बग्रन्थि, जननाङ्ग (महिला)।	नेत्ररोग, हिस्टीरिया, ठंड, कफ, उदर-रोग, अस्थमा, डायरिया, दस्त, मानसिक रोग, जननाङ्ग रोग (स्त्रियोचित), पागलपन, हैजा, ट्यूमर, ड्रॉप्सी।
मंगल	पित्त, मात्रक, मांसपेशी, स्वादेन्द्रिय, पेशीतन्त्र, तन्तु, बाह्य-जननाङ्ग, प्रोस्टेट, गुदा, रक्त, अस्थि-मज्जा, नाक, नस, ऊतक।	तीव्र ज्वर, सिरदर्द, मुँहासे, चेचक, घाव, जलन, कटना, बवासीर, नासूर, साइनस, गर्भपात, रक्ताल्पता, फोड़ा, लकवा, पक्षाघात, पोलियो, गले-गर्दनके रोग, हाइड्रोसील, हर्निया।
बुध	स्नायु-तन्त्र, जीभ, आँत, वाणी, नाक, कान, गला, फेफड़े।	मस्तिष्क-विकार, स्मृतिह्रास, पक्षाघात, हकलाहट, दौरे आना, सूँघने, सुनने अथवा बोलनेकी शक्तिका ह्रास।
बृहस्पति	यकृत्, नितम्ब, जाँघ, मांस, चर्बी, कफ, पाँव।	पीलिया, यकृत्-सम्बन्धी रोग, अपच, मोतियाबिन्द, रक्त-कैंसर, फुफ्फुसावरण, शोथ, वात, बादी, उदर-वायु, तिल्ली-कष्ट, साइटिका, गठिया, कटिवेदना, नाभि-चलना।
शुक्र	जननाङ्ग, आँख, मुख, ठुड्डी, गाल, गुर्दे, ग्लैण्ड, वीर्य।	काले-नीले धब्बे, चमड़ीके रोग, कोढ़, सफेद दाग, गुप्ताङ्ग-रोग, मधुमेह, नेत्ररोग, मोतियाबिन्द, रक्ताल्पता, एक्जिमा, मूत्ररोग। **(क्रमश:)**

ग्रह	अङ्ग	रोग
शनि	पाँव, घुटने, श्वास, हड्डी, बाल, नाखून, दाँत, कान।	बहरापन, दाँत-दर्द, पायरिया, ब्लडप्रेशर, कठिन उदरशूल, आर्थराईटिस, कैंसर, स्पांडलाइटिस, हाथ-पाँवकी कँपकपाहट, साइटिका, मूर्च्छा, जटिल रोग।
राहु, केतु	राहु मुख्यत: शरीरके ऊपरी हिस्से और केतु शरीरके निचले धड़को बतलाता है।	प्राय: ये दोनों ग्रह क्रमश: शनि और मंगलके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं या जिस राशि-भावमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं। राहु, केतुसे सम्बन्धित रोगकी पहचान प्राय: कठिनाईसे हो पाती है।

द्वादश राशियों, भाव और नवग्रहोंके आधारपर शरीरके अङ्गों और व्याधियोंकी जानकारीके पश्चात् हम गतिशील दशाओंके स्वामीकी सबलता या दुर्बलताको अपने अध्ययनका आधार बनाते हैं। नैसर्गिक शुभग्रह—बृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा—क्रमागत रूपमें पापग्रह—शनि, मंगल, राहु, सूर्य, केतुसे पीडित होनेपर अपनी दशावधिमें रोग देते हैं।

द्वादश लग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

प्रत्येक लग्नके लिये शुभ-अशुभ ग्रह भिन्न-भिन्न होते हैं। अत: उनके आधारपर भी यह निर्णय लिया जाता है कि कौन-सा ग्रह शुभकारी है और कौन अशुभकारी। निम्न सारणी 'ग' से यह स्पष्ट किया गया है—

सारणी 'ग'—द्वादशलग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

लग्न	शुभ ग्रह	अशुभ ग्रह	मध्यम ग्रह
मेष	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र	शनि
वृष	बुध, शुक्र	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	सूर्य, शनि
मिथुन	बुध, शुक्र	मंगल, बृहस्पति	शनि
कर्क	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	सूर्य, शुक्र
सिंह	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	चन्द्र, शुक्र
कन्या	चन्द्र, बुध, शुक्र	सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि	
तुला	बुध, शुक्र, शनि	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	चन्द्र
वृश्चिक	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
धनु	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
मकर	बुध, शुक्र, शनि	मंगल, बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र
कुम्भ	शुक्र, शनि	चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति	सूर्य
मीन	चन्द्र, बृहस्पति	सूर्य, बुध, शुक्र, शनि	मंगल

गोचर, दशाफल तथा जप-दान

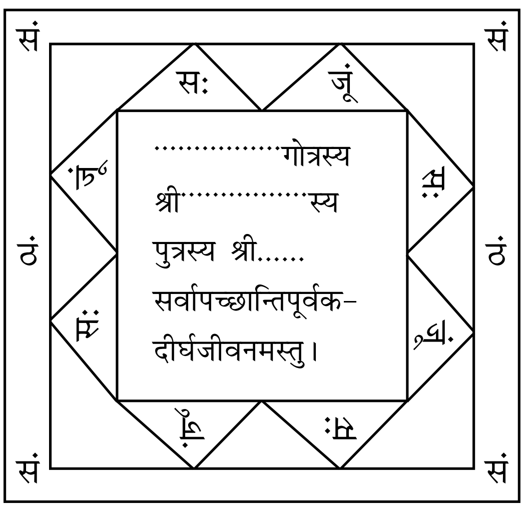
गोचर (दैनिक ग्रह-स्थिति)-में ग्रहोंकी स्थिति भी रोगकी अवधि और तीव्रता आदिको स्पष्ट करती है। प्राय: द्वितीय, षष्ठ और अष्टम भावमें स्थित ग्रह तथा इनके स्वामीकी दशावधिमें शारीरिक रोगकी सघनता होती है। इसके अतिरिक्त तीसरे, सातवें, बारहवें भावके स्वामी भी रोगोत्पत्तिको व्यक्त करते हैं। दशाओंके स्वामीके आधारपर ही मुख्यत: रोग-निवारणार्थ दान-जप करके स्थितियोंमें सुधार लाया जा सकता है। निम्न सारणी 'घ' में नवग्रहोंके अशुभ फलके शमनार्थ किये जानेवाले उपायोंकी जानकारीसे लाभ उठाया जा सकता है—

सारणी—'घ'—अरिष्ट-निवारणके लिये ग्रहोंका जप-दान-पूजन

ग्रह १	दान-सामग्री २	रत्न ३	व्रत-सम्बन्धित दिन ४	जड़ी-बूटी धारण ५	जप ६	जप-संख्या ७	जप-काल ८	हवन-समिधा ९	अन्य पूजन १०
सूर्य	गेहूँ, गुड़, लाल वस्त्र, घी, लाल वर्णकी गाय, माणिक, ताम्र-वस्तु, स्वर्ण, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	माणिक	रविवार	बेलपत्रकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः	७०००	सूर्योदय	आक	हरिवंशपुराण, सूर्यपूजन, सूर्य-अर्घ्य, गायत्री-जप, आदित्य-हृदयस्तोत्र-पाठ।
चन्द्र	चावल, श्वेत चन्दन, शङ्ख, कपूर, दही, दूध, घी, श्वेत वस्त्र, चाँदी, कांस्य-पात्र, सफेद अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	मोती	सोमवार	खिरनीकी जड़ सफेद डोरेमें।	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः	११०००	संध्या	पलाश	शिवपूजन, सतीचन्द्रपूजन, पूर्णिमा-व्रत।
मंगल	गेहूँ, मसूर-दाल, घी, गुड़, स्वर्ण, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, ताम्र-वस्तु, दक्षिणा।	मूँगा	मंगलवार	अनन्तमूलकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः	१००००	सूर्योदय	खैर	हनुमत्पूजन, ब्रह्मचर्य-पालन, मांस-मदिरासे दूर।
बुध	मूँग, चीनी, हरा वस्त्र, हरी सब्जी, कांस्य-पात्र, अन्य हरी वस्तुएँ, दक्षिणा।	पन्ना	बुधवार	विधारकी जड़ हरे डोरेमें।	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः	९०००	सूर्योदय	अपामार्ग	दुर्गा-गणेश-पूजन, बुध-पूजन।
बृहस्पति	पीले चावल, चना-दाल, हल्दी, शहद, पीला वस्त्र, पीले फल, धर्मग्रन्थ, कांस्य-पात्र, स्वर्ण, दक्षिणा।	पुष्पराग	बृहस्पति	केलेकी जड़ पीले डोरेमें।	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः	१९०००	संध्या	पीपल	विष्णु-गुरुपूजन, गौ, द्विज-वृद्धसेवा।
शुक्र	चाँदी, चावल, मिस्री, श्वेत चन्दन, चमकीला वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, दक्षिणा।	हीरा	शुक्रवार	सरपोंखाकी जड़ चमकीले डोरेमें।	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः	१६०००	सूर्योदय	गूलर	लक्ष्मीदेवी-पूजन, शुक्र-पूजन।
शनि	उरद, काले तिल, काले चने, तेल, काला वस्त्र, लौहपात्र, काले जूते, चाकू, दक्षिणा।	नीलम	शनिवार	बिच्छूकी जड़ काले डोरेमें।	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः	२३०००	संध्याकाल	शमी	भैरव-पूजन, शनि-पूजन।
राहु	सात अनाज, उरद, नारियल, चाकू, कम्बल, बिल्व-पत्र, कस्तूरी, तिल, खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	गोमेद	जिस राशिमें हो उसके स्वामीके अनुरूप ही रंगकी वस्तुओंका दान	सफेद चन्दन (स्वामी)-के अनुरूप डोरेमें।	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः	१८०००	रात्रि	दूर्वा	शिव, सर्प, राहु-पूजन।
केतु	सात अनाज, तिल, नारियल, ऊनी वस्त्र, कोई हथियार (कैंची), खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	लहसुनिया	राहुके समान	असगन्धकी जड़ स्वामीके अनुरूप डोरेमें।	ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः	१००००	रात्रि	कुशा	गणेश और केतु-पूजन।

नवग्रह दान-पूजन आदिसे रोगोपचारमें श्रद्धाकी महती भूमिका होती है। पूर्ण निष्ठा, उत्साह तथा संकल्पबद्धतासे किये गये कार्यकी सफलता वैसे भी सुनिश्चित होती है। रोग-पीडित व्यक्ति यदि दान-जप आदि कृत्य स्वयं करे तो यह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है अन्यथा अन्य पारिवारिक जन या योग्य ब्राह्मणद्वारा प्रतिनिधिरूपमें यह सम्पादित किया जा सकता है। अत्यन्त मारकग्रहकी दशा हो तो '**महामृत्युञ्जय-जप**' करना चाहिये। सर्वव्याधि-विनाशके लिये '**लघुमृत्युञ्जय-जप**' '**ॐ जूं सः**' (नाम, जिसके लिये है) '**पालय पालय सः जूं ॐ**' इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और

श्रीमहामृत्युञ्जय-कवच-यन्त्र



साढ़े बारह हजार दशांश-जप करना चाहिये। इसके साथ ही निम्न यन्त्र भी भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर सिद्ध मुहूर्तमें गुग्गुलका धूप देकर धारण करना चाहिये। पुरुषके दाहिने तथा स्त्रीके बायें हाथमें बाँधना चाहिये। गोत्र, पिताका नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी)-का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये। यन्त्र इस प्रकार है—

नवग्रह-यन्त्र

८ ॐ ह्रीं राहवे नमः	१ ॐ ह्रीं सूर्याय नमः	६ ॐ ह्रीं शुक्राय नमः
३ ॐ ह्रीं भौमाय नमः	५ ॐ ह्रीं गुरवे नमः	७ ॐ ह्रीं शनैश्चराय नमः
४ ॐ ह्रीं बुधाय नमः	९ ॐ ह्रीं केतवे नमः	२ ॐ ह्रीं सोमाय नमः

इसके अतिरिक्त यदि एक साथ अधिक ग्रहोंका दूषित प्रभाव रोगकी उत्पत्ति और वृद्धिका कारण हो तो नवग्रह-यन्त्रको भोजपत्रपर अष्टगन्धकी स्याहीसे किसी शुभ सिद्ध मुहूर्तमें अपने पास रखने, धारण करने तथा पूजन करनेसे भी अरिष्टका नाश होता है। यन्त्रको चाँदी, सप्त-अष्टधातुमें भी बनाया जा सकता है।

यदि उपर्युक्त प्रयोगोंके साथ या असमर्थतावश मात्र कातरभावसे ही प्रभुका स्मरण किया जाय तो रोगमुक्तिकी सहज-प्राप्ति असम्भव नहीं है। भगवत्कृपासे सभी कुछ सम्भव है।

वेदोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सा

(पद्मश्री डॉ० श्रीकपिलदेवजी द्विवेदी, निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्)

वेदोंमें प्राकृतिक चिकित्सासे सम्बद्ध सामग्री पर्याप्त मात्रामें मिलती है। इसमें विशेष उल्लेखनीय है—१-सूर्यकिरण-चिकित्सा, २-वायु-चिकित्सा या प्राणायाम-चिकित्सा, ३-अग्नि-चिकित्सा, ४-जल-चिकित्सा, ५-मृत्-चिकित्सा, ६-यज्ञ-चिकित्सा, ७-मानस-चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, ८-मन्त्र-चिकित्सा, ९-हस्तस्पर्श-चिकित्सा, १०-उपचार-चिकित्सा। यहाँ केवल सूर्यकिरण-चिकित्साका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेदोंमें सूर्यको इस स्थावर और जंगम जगत्की आत्मा कहा गया है—**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** (ऋक्० १।११५।१, यजु० ७।४२, अथर्व० १३।२।३५, तैत्ति० सं० १।४।४३।१)। यह मन्त्र ऋक्, यजु और अथर्व तीनों वेदोंमें आया है। प्रश्नोपनिषद्में भी सूर्यको '**प्राणः प्रजानाम्**' अर्थात् मनुष्यमात्रका प्राण कहा गया है। मत्स्यपुराणका कहना है कि '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**' अर्थात् यदि नीरोगताकी इच्छा है तो सूर्यकी शरणमें जाओ। अतएव

प्राचीन ऋषि-मुनि और आचार्योंने सूर्योपासना तथा सूर्यनमस्कार आदिकी विधि प्रचलित की।

वेदोंमें उदित होते हुए सूर्यकी किरणोंका बहुत महत्त्व वर्णित किया गया है। अथर्ववेदके एक मन्त्रमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य मृत्युके सभी कारणों अर्थात् सभी रोगोंको नष्ट करता है।[१] उदित होते हुए सूर्यसे अवरक्त (हलकी लाल—Infrared) किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणोंमें जीवनी शक्ति होती है और रोगोंको नष्ट करनेकी विशेष क्षमता होती है। अतएव ऋग्वेदमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य हृदयके सभी रोगोंको, पीलिया और रक्ताल्पता (Anaemia)- को दूर करता है।[२] अथर्ववेदमें भी इस बातकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि सूर्यकी अवरक्त किरणें हृदयकी बीमारियोंको तथा खूनकी कमीको दूर करती हैं।[३]

प्रातः सूर्योदयके समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना और हवन करनेका यही रहस्य है कि ऐसा करनेसे सूर्यकी अवरक्त किरणें सीधे छातीपर पड़ती हैं और उनके प्रभावसे व्यक्ति सदा नीरोग रहता है।

सूर्यकिरण-चिकित्सा-हेतु रोगी उदित होते हुए सूर्यके सम्मुख खड़े होकर या बैठकर सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे पड़ने दे। ऋतुके अनुसार शरीरको खुला रखे या हलका कपड़ा पहने, जिससे किरणोंका प्रभाव पूरे शरीरपर पड़ सके। कम-से-कम पंद्रह मिनट सूर्यके सम्मुख रहे। रोग और आवश्यकताके अनुसार यह समय आधा घंटातक बढ़ा सकते हैं। इसके बाद सूर्यकी किरणें तीव्र हो जाती हैं, अतः विशेष लाभ नहीं होगा। सूर्योदयके समयकी किरणोंका जो लाभ होता है, वह अन्य समय सम्भव नहीं है।

इस विषयमें अथर्ववेदके नौवें काण्डका आठवाँ सूक्त विशेष महत्त्वका है। इसमें बाईस मन्त्रोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सासे ठीक होनेवाले रोगोंकी एक लम्बी सूची दी गयी है और कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य इन रोगोंको नष्ट करता है।[४] इस सूचीमें निर्दिष्ट प्रमुख रोग हैं— सिरदर्द, कानदर्द, रक्तकी कमी, सभी प्रकारके सिरके रोग, बहरापन, अंधापन, शरीरमें किसी प्रकारका दर्द या अकड़न, सभी प्रकारके ज्वर, पीलिया (पाण्डुरोग), जलोदर, पेटके विविध रोग, विषका प्रभाव, वातरोग, कफज रोग, मूत्ररोग, आँखकी पीडा, फेफड़ोंके रोग, हड्डी-पसलीके रोग, आँतों और योनिके रोग, यक्ष्मा (T. B.), घाव, रीढ़की हड्डी, घुटना और कूल्हेके रोग आदि। एक अन्य सूक्तमें **'सूर्यः कृणोतु भेषजम्'** सूर्य इन रोगोंको ठीक करे, कहकर अपचित् (गण्डमाला), गलने और सड़नेवाली बीमारियाँ तथा कुष्ठ आदि रोगोंका उल्लेख किया गया है।[५]

अथर्ववेदका कथन है कि सूर्यके प्रकाशमें रहना अमृतके लोकमें रहनेके तुल्य है।[६] मृत्युके बन्धनोंको यदि तोड़ना है तो सूर्यके प्रकाशसे अपना सम्पर्क बनाये रखें।[७] सूर्य शरीरको नीरोगता प्रदान करते हैं—**सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति।** (अथर्व० ८।१।५)

ऋग्वेदका कथन है कि सूर्य मनुष्यको नीरोगता, दीर्घायुष्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं—**सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥** (ऋक्० १०।३६।१४) एक अन्य मन्त्रमें कहा गया है कि सूर्यकी किरणें मनुष्यको मृत्युसे बचाती हैं—**सूर्यस्त्वाधिपति-**

१-उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्। (अथर्व० १७।१।३०)

२-उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ (ऋक्० १।५०।११)

३-अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥ (अथर्व० १।२२।१)

४-(क) शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ (अथर्व० ९।८।१)

(ख) सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः। उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः अङ्गभेदम् अशीशमः। (अथर्व० ९।८।२२)

५-(अ) अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव। (अथर्व० ६।८३।१)

(आ) असूतिका रामायण्य पचित् प्र पतिष्यति। ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति। (अथर्व० ६।८३।३)

६-सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके। (अथर्व० ८।१।१)

७-मृत्योः पड्वीशं अवमुञ्चमानः। मा च्छित्था··· सूर्यस्य संदृशः॥ (अथर्व० ८।१।४)

मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥ (अथर्व० ५।३०।१५) सूर्यकी सात किरणोंसे सात प्रकारकी ऊर्जा प्राप्त होती है—**अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः॥** (ऋक्० ८।७२।१६)

सूर्यकिरणोंद्वारा चिकित्सा—इसके अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे सूर्य-चिकित्सा, सूर्यकिरण-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा (Colour-therapy, chromo-therapy, chromopathy) आदि। इस चिकित्सामें सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे लेकर रोग-निवारण या सूर्यकी किरणोंसे प्रभावित जल, चीनी, तेल, घी, ग्लिसरीन आदिका प्रयोग करके रोगोंका निवारण किया जाता है।

सूर्यकिरण-चिकित्साका प्रसार—पाश्चात्त्य जगत्‌में इस चिकित्सा-पद्धतिका आविष्कार और प्रचार जनरल पंलिझन होनने किया था। तत्पश्चात् डॉक्टर पेन स्कॉट, डॉक्टर राबर्ट बोहलेंड तथा डॉक्टर एडविन, बेबिट आदिने इस चिकित्सा-पद्धतिको आगे बढ़ाया। धीरे-धीरे यह विद्या फ्रांस और इंग्लैण्ड आदि देशोंमें फैली। अब इस विषयपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

भारतवर्षमें विशेषरूपसे हिन्दीमें इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रचार और उन्नयनका श्रेय श्रीगोविन्द बापूजी टोंगू और डॉक्टर द्वारकानाथ नारंग आदिको है। सम्प्रति हिन्दीमें इस विषयपर अनेक ग्रन्थ प्राप्य हैं।

सूर्यकी सात रंगकी किरणें—सूर्यकी किरणें सात रंगकी हैं। ऋग्वेद[१] और अथर्ववेदमें[२] सूर्यकी सात रंगकी किरणोंका उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व (सप्त अश्व) आदि शब्दोंसे किया गया है।

इन सात रंगकी किरणोंका वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत महत्त्व है। प्रत्येक किरणका अलग-अलग प्रभाव है। इनकी गति और प्रकृति भी भिन्न-भिन्न है। इन सात रंगोंको मिला देनेसे सफेद रंग हो जाता है। इन सात रंगकी किरणोंसे ही संसारके प्रत्येक पदार्थको रूप-रंग प्राप्त होता है। इन सात किरणोंके तीन भेद किये गये हैं—उच्च, मध्य और निम्न अर्थात् गहरा, मध्यम और हल्का। इस प्रकार ७×३=२१ प्रकारकी किरणें हो जाती हैं। इनसे ही संसारके सारे रूप-रंग हैं। अथर्ववेदके प्रथम मन्त्रमें इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये २१ प्रकारकी किरणें संसारमें सर्वत्र फैली हुई हैं और ये ही सारे रूप-रंगोंको धारण करती हैं—**ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।** (अथर्व० १।१।१)

सात किरणोंके नाम और प्रभाव—इन सात किरणोंको अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—इनकी तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) और आवृत्ति (Frequency) अलग-अलग है। अतः इनका प्रभाव भी पृथक्-पृथक् है। अपनी गति और प्रकृतिके अनुसार ये विभिन्न रोगोंको दूर करते हैं। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है। इन किरणोंको संक्षेपमें अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—(१) V I B G Y O R. (२) बै नी आ ह पी ना ला।

नाम	संकेत	नाम	संकेत	प्रभाव
Violet	V	बैगनी	बै	शीतल, लाल कणोंका वर्धक, क्षयरोगका नाशक
Indigo	I	नीला	नी	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, ज्वरनाशक
Green	G	हरा	ह	समशीतोष्ण, वातज रोगोंका नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीला	पी	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, हृदय एवं उदररोगका नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, मानसिक शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश हेतु

१-(क) सप्तरश्मिरधमत् तमांसि। (ऋक्० ४।५०।४)
(ख) आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः। (ऋक्० ५।४५।९)
२-(ग) यः सप्तरश्मिर्वृषभः०। (अथर्व० २०।३४।१३)

गति और प्रकृतिके आधारपर नीचेसे ऊपरवाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली हैं। जैसे—लालसे अधिक नारंगी, उससे अधिक पीली और सबसे अधिक प्रभाववाली बैगनी है। अतः बैगनीसे अधिक शक्तिवाली किरणोंको परा-बैगनी (Ultra-violet) किरणें और लालसे कम शक्तिशाली किरणोंको अवरक्त (Infra-red) किरणें कहते हैं।

वस्तुतः मूल रंग तीन हैं—लाल, पीला और नीला। इनके मिश्रणसे ही अन्य रंग बनते हैं। जैसे-लाल और नीलेसे बैगनी, नीले और सफेदसे आसमानी, नीले और पीलेसे हरा, लाल और पीलेसे नारंगी।

सूर्यकी सात रंगकी किरणोंके तीन परिवार किये गये हैं—(१) पीला, नारंगी, लाल (२) हरा तथा (३) बैगनी, नीला, और आसमानी।

ओषधि-निर्माण-विधि—साधारणतया ओषधि-निर्माणके लिये उसी रंगकी काँचकी साफ बोतल ली जाती है। विभिन्न रंगकी बोतल न मिलनेपर उस रंगका पतला कागज सादी शीशीपर पूरा चिपका दिया जाता है, अतः वह उस रंगका काम दे देती है। सात शीशी लेनेकी जगह प्रत्येक परिवारसे एक-एक रंग लेनेपर तीन बोतलोंसे काम चल जाता है। ये तीन रंग हैं—(१) नारंगी, (२) हरा तथा (३) नीला। इनमेंसे नारंगी कफ-जन्य रोगोंके लिये तथा हरा वातज रोगोंके लिये और नीला पित्तज रोगोंके लिये है। इस प्रकार वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा हो जाती है।

बोतलोंको अच्छी तरह साफ करनेके बाद उनमें शुद्ध जल भरा जाता है। बोतलोंको कम-से-कम तीन अंगुल खाली रखे। तत्पश्चात् उन्हें ढक्कन लगाकर बंद कर दे। शुद्ध जलसे भरी इन बोतलोंको धूपमें छः से आठ घंटे रखनेपर दवा तैयार हो जाती है। धूपमें बोतलोंको इस प्रकार रखे कि एक बोतलकी छाया दूसरे रंगकी बोतलपर न पड़े। रात्रिमें बोतलोंको अंदर रख ले। इस प्रकार बनी हुई दवाको दिनमें तीन या चार बार पिलावे। एक बार बनी दवाको चार या पाँच दिन सेवन कर सकते हैं। पुनः दुबारा बोतलोंमें दवा बना ले।

साधारणतया नारंगी रंगकी दवा भोजनके बाद पंद्रहसे तीस मिनटके अंदर लेनी चाहिये। हरे और नीले रंगकी दवाएँ खाली पेट या भोजनसे एक घंटा पहले ले। हरे रंगकी दवा प्रातः खाली पेट छः-से आठ औंस ले सकते हैं। यह दवा विजातीय द्रव्योंको बाहर निकालकर शरीरको शुद्ध करती है। इसका विपरीत प्रभाव नहीं होता।

दवाकी मात्रा—आयुके अनुसार चायवाली चम्मचसे एक-से चार चम्मच एक बारमें ले। साधारणतया दवा दिनमें तीन या चार बार ले। तीव्र ज्वर आदिमें आवश्यकतानुसार एक-एक घंटेपर भी दवा ली जा सकती है।

विभिन्न रंगोंकी बोतलोंके पानीका उपयोग

(१) लाल (Red) **रंग—**लाल रंगकी बोतलका पानी अत्यन्त गर्म होता है, अतः इसे पीना वर्जित है। इसको पीनेसे खूनी दस्त या उलटी हो सकती है। इसका प्रयोग प्रायः मालिश करने या शरीरके बाहरी भागमें लगानेके काम आता है। यह आयोडीन (Iodine)-से अधिक गुणकारी है।

यह रक्त एवं स्नायुको उत्तेजित करता है। शरीरमें गर्मी बढ़ाता है। यह सभी प्रकारके वातरोग और कफरोगोंमें लाभ देता है।

(२) नारंगी (Orange) **रंग—**यह रक्तसंचारकी वृद्धि करता है, मांसपेशियोंको स्वस्थ रखता है और मानसिक शक्ति तथा इच्छाशक्तिको बढ़ाता है। बुद्धि और साहसको विकसित करता है। कफ-जन्य रोगोंका नाशक है।

यह कफ-जन्य रोग खाँसी, बुखार, निमोनिया, इनफ्लुएन्जा, श्वासरोग, क्षयरोग, पेटमें गैस बनना, हृदयरोग, गठिया, पक्षाघात, अजीर्ण, एनीमिया, रक्तमें लालकणोंकी कमीवाले रोगोंके लिये लाभप्रद हैं। माँके स्तनोंमें दूधकी वृद्धि करता है।

(३) पीला (Yellow) **रंग—**यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये अत्युत्तम है। यह हल्का रेचक भी है। पाचन-संस्थानको ठीक करता है। यह हृदय एवं उदररोगोंका नाशक है। इसकी प्रकृति उष्ण है, अतः पेचिश आदिमें इसे न ले।

यह पेटदर्द, पेट फूलना, क़ब्ज़, कृमिरोग एवं मेदरोग, तिल्ली, हृदय, जिगर और फेफड़ेके रोगोंमें भी लाभप्रद है। यह युवा पुरुषोंको तत्काल लाभ देता है। इसका पानी थोड़ी मात्रामें ही लेना चाहिये।

(४) हरा (Green) **रंग—**यह प्रकृतिका रंग है। समशीतोष्ण है। यह शरीर और मनको प्रसन्नता देता है। शरीरकी मांसपेशियोंका निर्माण करता है और उन्हें शक्ति देता है। मस्तिष्क और नाडी-संस्थानको बल देता है। रक्तशोधक है।

यह वातजन्य रोग, टाइफॉइड, मलेरिया आदि ज्वर, यकृत् और गुर्दोंकी सूजन, सभी चर्मरोग, फोड़ा-फुंसी, दाद, नेत्ररोग, मधुमेह, सूखी खाँसी, जुकाम, बवासीर, कैंसर, सिरदर्द, रक्तचाप, एक्जिमा आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(५) आसमानी (Blue) **रंग—**यह शीतल है। पित्त-जन्य रोगोंके लिये विशेष लाभकारी है। यह प्यास और आमाशयिक उत्तेजनाको शान्त करता है। यह अच्छा पोषक टॉनिक और एन्टीसेप्टिक है। सभी प्रकारके ज्वरोंके लिये रामबाण है। रक्त-प्रवाहको रोकता है। कफज रोगोंमें इसका प्रयोग न करे।

यह ज्वर, खाँसी, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, दमा, सिरदर्द, मूत्ररोग, पथरी, त्वचारोग, नासूर, फोड़े-फुंसी, मस्तिष्क आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(६) नीला, गहरा नीला (Indigo) **रंग—**यह भी शीतल है। यह जीवमात्रको जीवनीशक्ति देता है। यह शीतलता और शान्ति देता है। कुछ क़ब्ज़ करता है। शरीरपर इसकी क्रिया अतिशीघ्र होती है।

यह आमाशय, अण्डकोश-वृद्धि, प्रदर, योनिरोग आदि रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह गर्मीके सभी रोगोंको दूर करता है।

(७) बैगनी (Violet) **रंग—**इसके गुण प्रायः नीले रंगके तुल्य हैं। यह रक्तमें लाल कणोंकी वृद्धि करता है। खूनकी कमीको दूर करता है। क्षय-रोगमें विशेष उपयोगी है। इससे अच्छी नींद आती है।

उक्त विवेचनके आधारपर कहा जा सकता है कि सूर्य वस्तुतः चर-अचर जगत्की आत्मा है। नीरोगताके लिये सूर्यकी शरणमें जाना अत्युत्तम है।

रोगोंका यौगिक निदान एवं चिकित्सा

(श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव)

आरोग्य मनुष्य-जीवनमें प्राप्तव्य चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल है। योग-साधनामें भी व्याधिको योगका सर्वप्रमुख विघ्न माना गया है। अतएव लौकिक या अलौकिक पुरुषार्थके सम्पादनमें समर्थ बने रहनेके लिये आरोग्यवान्—आधि-व्याधिशून्य बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ पुरुषका लक्षण है आत्मा, मन एवं इन्द्रियोंके प्रसन्न रहनेके साथ-साथ शरीर-स्थित दोष—अग्नि, धातु, मल एवं क्रियाओंका सम-अवस्थामें रहना—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

समत्व ही योगका एवं सृष्टिव्यवस्थाका मूल आधार है। विषमतासे ही विकारकी उत्पत्ति होती है। सूक्ष्मदृष्टि रखनेवाले ऋषि एवं योगिगण केवल शारीरिक रोग एवं बाह्य वैषम्यपर ही नहीं; अपितु इनके उत्पादक सूक्ष्म शरीरके वैषम्यको भी दृष्टिमें रखते थे तथा उस विषमताको भी उत्पन्न करनेवाले कारणोंको दूरकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकारके स्वास्थ्य-लाभका उपदेश देते रहे हैं। स्वास्थ्यके विकार कर्मदोष, दुर्वृत्त, प्रज्ञाविकार, रजोगुण एवं तमोगुणका प्रभाव, शरीरगत पञ्चभूतोंमेंसे किन्हींका क्षय, श्वास-प्रक्रियामें विपर्यय, वातादि दोषोंकी वृद्धि, अपथ्य-भोजन आदि कारणोंसे होते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टिसे व्यक्ति या जनपदमें होनेवाले व्याधि—दुःखका कारण प्रज्ञाविकार है। बुद्धि शरीर-सत्ताकी संचालिका है। बुद्धिमें लोभ, मोह, क्रोध, अभिमान आदिकी उत्पत्ति होनेसे व्यक्ति अधर्माचरण करने लगता है। अतः उस अधर्माचरणके

फलस्वरूप नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सभी व्यक्ति दु:खी होते हैं। व्यक्तिगत अधर्माचरणका फल व्यक्तिको व्याधिके रूपमें मिलता है एवं समूहरूपमें किये गये अधर्मका फल जाति, समुदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्वको व्यापक व्याधियों एवं अन्य उपद्रवोंके रूपमें मिलता है।

हठयोगके अनुसार भौतिक शरीरके दोषोंको दूर करनेके लिये एवं स्वस्थ बने रहनेके लिये षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धारणा एवं ध्यानका आलम्बन लेना चाहिये। षट्कर्मका उपयोग प्रवृद्ध कफ-दोषको दूर करके वात, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको समभावमें स्थापित करनेके लिये होता है। यदि कफ-दोष बढ़ा न हो तो जिस अङ्गमें विकार या अशक्ति प्रतीत हो, उसी अङ्गको बलवान् बनाने या उस अङ्गसे विकारको दूर करनेके लिये षट्कर्मोंमेंसे यथावश्यक दो या तीन अथवा चार कर्मोंका अभ्यास करना चाहिये। धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक तथा कपालभाति—इन छ: क्रियाओंको 'षट्कर्म' कहते हैं। धौति-कर्म कण्ठसे आमाशयतकके मार्गको स्वच्छ करके सभी प्रकारके कफरोगोंका नाश कर देता है। यह विशेषरूपसे कफप्रधान कास, श्वास, प्लीहा एवं कुष्ठरोगमें लाभकारी है। वस्ति-कर्मद्वारा गुदामार्ग एवं छोटी आँतके निचले हिस्सेकी सफाई हो जाती है। इससे अपानवायु एवं मलान्त्रके विकारसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका शमन हो जाता है। आँतोंकी गर्मी शान्त होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। आँतोंमें स्थित—संचित दोष नष्ट होते हैं। जठराग्निकी वृद्धि होती है। अनेक उदररोग नष्ट होते हैं। वस्ति-कर्म करनेसे वात-पित्त एवं कफसे उत्पन्न अनेक रोग तथा गुल्म, प्लीहा और जलोदर दूर होते हैं। नेति-कर्म नासिकामार्गको स्वच्छ कर कपाल-शोधनका कार्य करता है। यह विशेषरूपसे नेत्रोंको उत्तम दृष्टि प्रदान करता है और गलेसे ऊपर होनेवाले दाँत, मुख, जिह्वा, कर्ण एवं शिरोरोगोंको नष्ट करता है। त्राटक-कर्मद्वारा नेत्रोंके अनेक रोग नष्ट होते हैं एवं तन्द्रा, आलस्य आदि दोष नष्ट होते हैं। उदररोग एवं अन्य सभी दोषोंका नाश करनेके लिये नौलिक प्रमुख है। यह मन्दाग्निको नष्टकर जठराग्निकी वृद्धि करता है तथा भुक्तान्नको सुन्दर प्रकारसे पचानेकी शक्ति प्रदान करता है। इसका अभ्यास करनेसे वातादि दोषोंका शमन होनेसे चित्त सदा प्रसन्न रहता है। कपालभाति विशेषरूपसे कफ-दोषका शोषण करनेवाली है। षट्कर्मोंका अभ्यास करनेसे जब शरीरान्तर्गत कफ-दोष—मलादिक क्षीण हो जाते हैं, तब प्राणायामका अभ्यास करनेसे अधिक शीघ्र सफलता मिलती है।

जिन्हें पित्तकी अधिक शिकायत रहती है, उनके लिये गजकर्णी या कुंजल-क्रिया लाभदायक रहती है। इस क्रियामें प्रात:काल शौचादिसे निवृत्त होनेके बाद पर्याप्त मात्रामें नमकमिश्रित कुनकुना जल पीकर फिर वमन कर दिया जाता है। इससे आमाशयस्थ पित्तका शोधन होता है। जिन्हें मन्दाग्निकी शिकायत है या जिनका स्वास्थ्य उत्तम भोजन करनेपर भी सुधरता नहीं है, उन्हें अग्निसार नामक क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। इस क्रियामें नाभिग्रन्थिको बार-बार मेरु-पृष्ठमें लगाना होता है। एक सौ बार लगा सकनेका अभ्यास हो जानेपर समझना चाहिये कि इस क्रियामें परिपक्वता प्राप्त हो गयी है, यह सभी प्रकारके उदररोगोंको दूर करनेमें सहायक है।

आसनका अभ्यास शरीरसे जडता, आलस्य एवं चञ्चलताको दूर करके सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान एवं प्रत्येक अङ्गको पुष्ट बनानेके लिये होता है। इसके अभ्याससे शरीरके अङ्गोंके सभी भागोंमें एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाडियोंमें रक्त पहुँचता है, सभी ग्रन्थियाँ सुचारु रूपसे कार्य करती हैं। स्नायु-संस्थान बलवान् हो जानेपर साधक काम, क्रोध, भय आदिके आवेगोंको सहनेमें समर्थ होता है। वह मानस-रोगी नहीं बनता। शरीरका स्वास्थ्य मस्तिष्क, मेरुदण्ड, स्नायु-संस्थान, हृदय एवं फेफड़े तथा उदरके बलवान् होनेपर निर्भर है। अत: आसनोंका चुनाव इनपर पड़नेवाले प्रभावोंको दृष्टिमें रखकर करना चाहिये। जिसका जो अङ्ग कमजोर हो उसे सार्वाङ्गिक व्यायामके आसनोंका अभ्यास करनेके साथ-साथ उन दुर्बल अङ्गोंको पुष्ट करनेवाले आसनोंका अभ्यास विशेषरूपसे करना चाहिये। ध्यानके उपयोगी पद्मासन आदिको सर्वरोगनाशक इसलिये कहा जाता है कि इन आसनोंसे ध्यान या जपमें बैठनेपर शरीरमें

साम्यभाव, निश्चलता, शान्ति आदि गुण आ जाते हैं, जो भौतिक स्तरपर सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेमें सहायक होते हैं। आरोग्यकी दृष्टिसे किये जानेवाले आसनोंमें पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, सर्वाङ्ग, मयूर, भुजंग, शलभ, धनु, कुक्कुट, आकर्षणधनु एवं पद्म-आसन मुख्य हैं।

आसनोंको शनैः-शनैः किया जाय, जिससे अङ्गों एवं नाडियोंमें तनाव, स्थिरता, संतुलन, सहनशीलता एवं शिथिलता आ सके। अपनी पूर्ववत् स्थितिमें भी धीरे-धीरे ही आना चाहिये। जो अङ्ग रोगी हो, उस अङ्गपर बोझ डालनेवाले आसनोंका अभ्यास अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे जिनके पेटमें घाव है या जो स्त्रियाँ मासिक-धर्मसे युक्त हैं, उन्हें उन दिनों पेटके आसन नहीं करने चाहिये। जिस आसनका प्रभाव जिस ग्लैंड्स या नाडी-चक्रपर पड़ता है—आसन करते समय वहीं ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तथा गायत्री आदि मन्त्रोंका या तेज, बल, शक्ति देनेवाले मन्त्रोंका यथाशक्ति स्मरण करना चाहिये। एक आसनके बाद उसका प्रतियोगी आसन भी करना चाहिये। यथा—पश्चिमोत्तान-आसनका प्रतियोगी भुजंगासन और शलभासन है। हस्तपादासनका प्रतियोगी चक्रासन है। सर्वाङ्गासनका अभ्यास आवश्यक है। सूर्यनमस्कारको अन्य आसनोंके अभ्यासके पूर्व कर लेना लाभकारी है।

प्राणायामका अभ्यास शरीरस्थ सभी दोषोंका निराकरण कर प्राणमयकोष एवं सूक्ष्म शरीरको नीरोग तथा पुष्ट बनाता है। नाडी-शोधनका अभ्यास करनेके बाद ही कुम्भक प्राणायामोंका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामके सभी अभ्यास युक्तिपूर्वक शनैः-शनैः ही करने चाहिये तथा भस्त्रिका प्राणायामको छोड़कर सभी शेष प्राणायामोंमें रेचक एवं पूरक, दोनोंकी क्रियाएँ बहुत धीरे-धीरे करनी चाहिये। प्रत्येक कुम्भककी अपनी-अपनी दोषनाशक विशेष शक्ति है। अतः प्रवृद्ध दोषका विचार करके ही उसके दोषनाशक कुम्भकका अभ्यास करना चाहिये। सूर्यभेद प्राणायाम पित्तवर्धक, जरादोषनाशक, वातहर, कपालदोष एवं कृमिदोषको नष्ट करनेवाला है। उज्जायी कफरोग, क्रूरवायु, अजीर्ण, जलोदर, आमवात, क्षय, कास, ज्वर एवं प्लीहाको नष्ट करता है। स्वास्थ्य एवं पुष्टिकी प्राप्तिके लिये उज्जायी प्राणायामका विशेष रूपसे अभ्यास करना चाहिये। शीतली प्राणायाम अजीर्ण, कफ, पित्त, तृषा, गुल्म, प्लीहा एवं ज्वरको नष्ट करता है। भस्त्रिका प्राणायाम वात-पित्त-कफ-हर, शरीराग्निवर्धक एवं सर्वरोगहर है। व्यवहारमें संध्योपासनाके उपरान्त एवं जपसे पूर्व नाडी-शोधन, उज्जायी एवं भस्त्रिका प्राणायामका नित्य अभ्यास करनेका प्रचलन है।

रोग-निवारणके लिये स्वर-योगका आश्रय भी लिया जाता है। नीरोगताके लिये भोजन सदा दायाँ स्वर (श्वास) चलनेपर करना चाहिये। वाम स्वर शीतल एवं दक्षिणस्वर उष्ण माना जाता है। इसके अनुसार ही वात एवं कफ-प्रधान रोगोंमें दक्षिण नासिकासे श्वासको चलाया जाता है एवं पित्तप्रधान रोगमें वाम स्वरसे श्वासको चलाया जाता है। सामान्य नियम यह है कि रोगके प्रारम्भकालमें जिस नासिकासे श्वास चल रहा होता है, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास रोग-शमन होनेतक चलाया जाता है। इस स्वर-परिवर्तनसे प्रवृद्ध दोषका संशमन हो जाता है। स्वरयोगकी जानकारीके लिये 'शिवस्वरोदय' एवं 'स्वर-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

मुद्राओंके अभ्यासमें महामुद्रा, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध एवं विपरीतकरणी मुख्य हैं। महामुद्रा क्षय, कुष्ठ, आवर्त, गुल्म, अजीर्ण आदि रोगों एवं सभी दोषोंको नष्ट करती है। इसके अभ्याससे पाचन-शक्तिकी प्रचण्ड वृद्धि होकर विषको भी पचानेकी क्षमता प्राप्त होती है। महामुद्राके साथ महाबन्ध एवं महावेधका भी अभ्यास किया जाता है। इन तीनोंके अभ्याससे वृद्धत्व दूर होता है एवं अनेक शारीरिक सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। खेचरी मुद्राके अभ्याससे शरीरमें अमृतत्व धर्मकी वृद्धि होती है। सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। शरीरकी सोमकलाका विकास होता है तथा देह-क्षयकी प्रक्रिया रुक जाती है। उड्डीयानका अभ्यास उदर एवं नाभिसे नीचे स्थित अङ्गोंके रोगोंको दूर कर पुरुषत्वकी अभिवृद्धि करता है। जननाङ्ग एवं प्रजननाङ्गके रोगोंसे पीडित नर-नारियोंको उड्डीयानबन्धका विशेष अभ्यास करना चाहिये। जालन्धरबन्धसे कण्ठ-रोगों एवं शिरोरोगोंका नाश होता है तथा मूलबन्धका अभ्यास गुदा एवं जननेन्द्रियपर, प्राण एवं अपानपर नियन्त्रण प्रदान करता

है। उड्डीयान एवं जालन्धरबन्धका अभ्यास तो प्राणायामके समय ही किया जाता है, परंतु मूलबन्धका अभ्यास सतत करना चाहिये। विपरीतकरणी मुद्राका ठीक-ठीक अभ्यास वलीपलितको दूर कर युवावस्था प्रदान करता है।

पूर्वोक्त मुद्राओंके अतिरिक्त घेरण्डसंहिताप्रोक्त कुछ अन्य मुद्राओंका अभ्यास भी रोगनाश, वलीपलितविनाश एवं स्वास्थ्य-लाभके लिये उपयोगी है। इनमेंसे नभोमुद्रा एवं माण्डूकीमुद्रा तालुस्थित अमृतपानमें सहायक होनेके कारण सभी रोगोंका नाश करनेवाली है। आश्विनी मुद्रा गुह्यरोगोंका नाश करनेवाली, अकालमृत्युको दूर करनेवाली तथा बल एवं पुष्टि प्रदान करनेवाली है। पाशिनी मुद्रासे बल एवं पुष्टिकी प्राप्ति होती है। तड़ागी मुद्रा एवं भुजंगिनी मुद्रा—ये दोनों ही उदरके अजीर्णादि रोगोंको नष्टकर दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं।

रोगोंको दूर करनेमें ध्यान अथवा चिन्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यानसे शरीर, प्राण, मन, हृदय एवं बुद्धिमें शान्ति, पवित्रता एवं निर्मलता आती है। 'सदा प्राणिमात्रके कल्याणका विचार करनेसे एवं सभी सुखी हों, नीरोग हों, शान्त हों'—इस प्रकारकी भावनाओंकी तरङ्गोंको सभी दिशाओंमें प्रसारित करनेसे स्वयंको सुख तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है। व्यक्ति जैसा चिन्तन करता है, प्राय: वह वैसा बन जाता है। 'मैं नीरोग हूँ, स्वस्थ हूँ'—ऐसा चिन्तन निरन्तर दृढ़तापूर्वक करते रहनेसे आरोग्य बना रहता है। इसे आत्मसम्मोहन 'ऑटो सजेशन' की विधि कहते हैं। इसी प्रकार प्रबल संकल्पशक्तिके द्वारा अपने या दूसरेके रोगोंको भी दूर किया जाता है। रोगनिवारणके लिये प्रमुख बात यह है कि रोग होनेपर उसका चिन्तन ही न करे, उसकी परवाह ही न करे। रोगका चिन्तन करनेसे रोग बद्धमूल हो जाता है एवं व्यक्तिका मनोबल दुर्बल हो जाता है। मानसिक रोगोंका संकल्पशक्ति एवं प्रज्ञाबलसे निवारण करना चाहिये एवं शारीरिक रोगोंका औषधोंसे। इन रोगोंके उन्मूलनमें यौगिक साधनोंका अद्भुत योगदान रहा है।

शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे मुक्ति चाहनेवालोंको योग-क्रियाओंका अभ्यास करनेके साथ-साथ रोगोत्पादक सभी मूल कारणोंका त्याग करना चाहिये तथा अपने लिये अनुकूल एवं चिकित्साशास्त्रद्वारा निर्दिष्ट सात्त्विक पथ्य, सदाचार एवं सत्कर्मका सेवन करना चाहिये। यथासम्भव अनिष्ट-चिन्तनसे बचना चाहिये तथा चित्तको राग-द्वेष-मोहादि दोषोंसे दूर करना चाहिये। सम्पूर्ण दु:खोंका मूल कारण तमोगुणजनित अज्ञान, लोभ, क्रोध तथा मोह है। त्रिगुणके प्रभाव तथा अज्ञानके बन्धनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय योग है तथा योग-बलसे भी बड़ी शक्ति है भगवान्‌की अनुग्रह-शक्ति।

अतएव अहंता-ममताका त्याग करके भगवच्चरणोंका एकमात्र आश्रय लेकर योगसाधना करनेसे शारीरिक व्याधिके साथ-साथ त्रिविध ताप एवं भवव्याधि भी कट जाती है और ऐसा साधक पूर्णतम आनन्दको प्राप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

(डॉ० श्रीविमलकुमारजी मोदी, एम०डी०, एन०डी०)

जिन लोगोंने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके आधारभूत सिद्धान्तोंको नहीं समझा है, वे ऐसा कुछ समझते हैं कि यह कुछ खब्तों और वादोंका संग्रहमात्र है—कहींकी ईंट और कहींका रोड़ा लेकर भानमतीका कुनबा जोड़ा गया है और जो लोग इसके सिद्धान्तों और तथ्योंका प्रचार करते हैं, वे खब्ती हैं। कारण यह है कि वर्तमान पीढ़ीपर 'विज्ञान' शब्दका जादू इस प्रकार काम कर गया है कि लोग अपने शरीरमें निहित आरोग्यदायिनी प्राकृतिक शक्तियोंके सम्बन्धमें सरल, स्पष्ट और तर्कपूर्ण तथ्योंको सुनने तथा समझनेके लिये तैयार ही नहीं होते।

'प्रकृतिद्वारा रोगोपशमन' शब्दोंका प्रयोग उस आरोग्य-दायिनी शक्तिका द्योतन करनेके लिये किया जाता है, जो प्रत्येक जीवित प्राणीके शरीरमें अन्तर्निहित है। न तो यह कुछ वादोंका संग्रहमात्र है और न ऐसा कोई खब्त ही है,

जो प्रचलित हो गया है। यह तो उसी समयसे व्यवहारमें आ रहा है, जबसे इस पृथ्वीपर जीवनका आरम्भ हुआ। प्राचीन कालमें आरोग्य-प्राप्तिका एकमात्र उपचार समझकर ही इसका आश्रय लिया जाता था; पर सभ्यता और तथाकथित विज्ञानके आगमनसे इसका परित्याग कर दिया गया।

आधारभूत सिद्धान्त

आरोग्य-लाभकी प्राकृतिक प्रणालीका अर्थ भलीभाँति समझनेके लिये इसके आधारभूत सिद्धान्तोंको मनमें अच्छी तरह बैठा लेना आवश्यक है। शरीर अपनी स्वच्छता, पुनर्निर्माण और क्षति-पूर्ति-जैसी कुछ प्रक्रियाओंद्वारा प्राकृतिक रूपमें स्वास्थ्य-प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। घावोंको भरकर और टूटी हुई अस्थिको जोड़कर प्रकृति अपनी क्षति-पूर्तिकी प्रवृत्तिका परिचय स्पष्टरूपसे दे देती है। जिस शक्तिके द्वारा सब पदार्थोंका नियमन होता है, वह सर्वदा कार्यरत रहती है और उसके अभावमें जीवनका अस्तित्व क्षणभर भी स्थिर नहीं रह सकता। यह मानव-शरीरमें ही नहीं, बल्कि पृथ्वीपर विद्यमान हर एक पदार्थ और जीवधारीके अंदर कार्य करती रहती है और हम चाहे जो कुछ करें, सोचें या विश्वास रखें, यह अपना काम बराबर करती जाती है।

यह पद्धति इस बातकी असंदिग्धरूपसे शिक्षा देती है कि शरीरमें जो भी विकार या बीमारी होती है, वह वस्तुत: शरीरके प्राकृतिक रूपमें आत्म-परिष्कारका प्रयत्नमात्र है। यदि जनताका मस्तिष्क तथाकथित विज्ञान और रोगोत्पत्तिके कारणोंके मूलमें कीटाणुओंके होनेके सिद्धान्तसे, जिसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया जाता है और चिकित्सक तथा जनसाधारण भी अनुचितरूपमें समझे हुए हैं, अत्यधिक प्रभावित न हो गया होता तो वह प्राकृतिक प्रणालीको स्वीकार कर इससे अवश्य सहायता लेती।

कीटाणु और रोग

इस स्थलपर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली कीटाणुओंके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं करती; पर इसका कहना यह है कि वे रोगकी उत्पत्तिके कारण ही नहीं होते, जिसके लिये उनको इतना बदनाम किया जाता है। प्राकृतिक प्रणालीके अनुसार रोगके कीटाणु गंदगी और विषाक्त पदार्थके मौजूद होनेपर ही प्रकट होते हैं और बढ़ते हैं। शरीर तबतक किसी संक्रामक रोगसे आक्रान्त नहीं हो सकता, जबतक उस विशेष रोगके कीटाणुओंके बढ़ने योग्य पहलेसे क्षेत्र तैयार न हो। रोगोत्पत्तिके कारणोंके सम्बन्धमें प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीका सिद्धान्त ज्यादा गहराईतक पहुँचता है। यह इस बातकी शिक्षा देता है कि सर्दी, बुखार, सीने या किसी अङ्गमें जकड़न, सूजन अथवा जलन, ग्रन्थिशोथ आदि सभी तीव्र रोग, जिनमेंसे प्रत्येकपर प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीने एक स्वतन्त्र रोग होनेका 'लेबल' लगा रखा है, एक ही-जैसे हैं अर्थात् वे सभी शरीरमें गंदगी एकत्र होने और उसके विषाक्त होनेके स्वाभाविक परिणाम हैं। उसका यह भी कहना है कि तीव्र रोग विषको प्रभावहीन कर उसे बाहर निकालनेके प्रकृतिके प्रयत्नका प्रकट चिह्न है। यदि उसे निकालना सम्भव न हुआ तो प्रकृति उसे एक जगह अलग कर देनेका प्रयत्न करती है, जिससे वह हानिकर न हो।

प्रकृतिको सहायता

प्रकृतिके इस शक्तिके साथ मिलकर कार्य करना या उसके विरुद्ध आचरण करना बहुत कुछ हमारी इच्छापर निर्भर है; पर यदि इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रकृतिके साथ मिलकर काम करना ही हमारे लिये श्रेयस्कर होगा, इसलिये उपचारसम्बन्धी जो प्रणाली काममें लायी जाय उसका शरीर-विज्ञानके सिद्धान्तकी दृढ़ नींवपर टिकना आवश्यक है और जिसे हम शरीरका प्राकृतिक नियम समझ रहे हैं, उसके कार्यान्वित होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आनी चाहिये। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये प्राकृतिक चिकित्सक तीव्र रोगोंमें, जब कि शारीरिक क्रियाकी दृष्टिसे शरीरको पूर्ण विश्रामकी जरूरत मालूम होती है, खानेसे परहेज कराते हैं और जीर्ण रोगोंमें विकारको बाहर निकालनेके लिये प्रकृतिको सहायता देनेके विचारसे आवश्यकताके अनुसार या तो उपवास कराते हैं या केवल फल अथवा शाकका रस देकर आंशिक उपवास कराते हैं।

सबसे बड़ी प्रयोगशाला

हमें यह समझकर कि नीरोग करनेकी शक्ति

उपचारमें है, कभी अपनेको भुलावेमें नहीं रखना चाहिये। आरोग्यतापर हमेशा प्रकृतिका ही विशेषाधिकार रहता है। शरीरकी निर्बलता या विकार दूर करनेमें प्रकृतिको सहायता पहुँचानेके लिये हमें बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें प्रयोगात्मक अनुसंधान-केन्द्रों या दवाएँ तैयार करनेके लिये व्यापारिक ढंगपर चलाये जानेवाले कारखानोंकी जरूरत नहीं प्रतीत होती। प्रकृतिने इस शरीरको सबसे बड़ी प्रयोगशालाके रूपमें तैयार किया है, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाएँ इतने ऊँचे शिखरपर पहुँची हुई हैं कि हमारी दृष्टि वहाँ पहुँचनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाती है और जिसमें रक्षणात्मक क्षमताके साधन सर्वदा उचित नियन्त्रणमें रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली इस मतका प्रचार करती है कि रोगका सिर्फ एक कारण होता है। यह जीवनयापन और आरोग्य-लाभके लिये जिस ढंगका प्रतिपादन करती है, वह वैज्ञानिक होनेके साथ ही विवेकपूर्ण एवं सरल भी है और स्वास्थ्य-लाभके लिये जिसका अर्थ मस्तिष्क तथा शरीरका एक होकर या अखण्डरूपमें रहना है—स्वयं अपनेमें और प्राकृतिक शक्तियोंके साथ सामञ्जस्य होना आवश्यक बतलाती है।

प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्त

(डॉ० श्रीशरदचन्द्रजी त्रिवेदी, एम०डी०)

शरीरमें दूषित, विषाक्त एवं विजातीय पदार्थोंके एकत्र होनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थोंके एकत्र होनेका मुख्य स्थान पेट है। इसलिये यदि पेट स्वस्थ है तो हम भी स्वस्थ हैं और पेट बीमार तो हम बीमार। जो भोजन हम लेते हैं उसमें ७५ प्रतिशत क्षारतत्त्व एवं २५ प्रतिशत अम्लतत्त्व होना चाहिये। यदि भोजनमें २५ प्रतिशतसे अधिक अम्लीय आहार लिया जाता है तो रक्तमें अधिक खटाई हो जाती है, इस कारण वह दूषित हो जाता है। शरीर इस दूषित पदार्थको पसीने एवं मूत्रद्वारा अंदरसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करता है। यदि बाहर नहीं निकलता है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार जो आहार (भोज्य पदार्थ) पच नहीं पाता अर्थात रस-रक्तमें परिवर्तित नहीं हो पाता, वह शरीरके लिये विजातीय पदार्थ है। उसे बाहर निकाल देना चाहिये। उसका कुछ अंश भी यदि शरीरमें रह जाय तो वह रक्त-संचरणके द्वारा समस्त शरीरमें फैलकर दूषित विकार एवं रोग उत्पन्न करता है। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा इन्हीं विजातीय पदार्थोंको हटाकर शरीरको स्वस्थ किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें पञ्चमहाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाशद्वारा चिकित्सा की जाती है। बिना औषधके मिट्टी, पानी, हवा (एनिमा), सूर्य-प्रकाश, उपवास एवं फलों, सब्जियोंद्वारा चिकित्सा की जाती है। आहार, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्यापर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रकृतिके निकट रहनेका अधिकाधिक प्रयास किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टी, जल, धूप एवं उपवासका उपयोग

(१) मिट्टी-चिकित्साका उपयोग—

इस पञ्च-भूतात्मक शरीरमें मिट्टी (पृथ्वीतत्त्व)-की प्रधानता है। मिट्टी हमारे शरीरके विषों, विकारों, विजातीय पदार्थोंको निकाल बाहर करती है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। मिट्टी विश्वकी महानतम औषधि है।

मिट्टी-चिकित्साके प्रकार—(क) मिट्टीयुक्त जमीनपर नंगे पाँव चलना—स्वच्छ धरतीपर, बालू, मिट्टी या हरी दूबपर प्रातः-सायं भ्रमण करनेसे जीवनी-शक्ति बढ़कर अनेक रोगोंसे लड़नेकी क्षमता प्रदान करती है।

(ख) मिट्टीके बिस्तरपर सोना—धरतीपर सीधे लेटकर सोनेसे शरीरपर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति शून्य हो जाती है। स्नायविक दुर्बलता, अवसाद, तनाव, अहंकारकी भावना दूर होकर नयी ऊर्जा एवं प्राण शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके लिये सीधे धरतीपर या पलंगपर आठ इंचसे बारह इंचतक मोटी समतल बालू बिछाकर सोना चाहिये। प्रारम्भमें थोड़ी

कठिनाई होती है, परंतु अभ्यास करनेसे धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है।

(ग) सर्वाङ्गमें गीली मिट्टीका लेप— सर्वप्रथम किसी अच्छे स्थानसे चिकनी मिट्टीको लाकर उसे कंकड़-पत्थररहित करके साफ-स्वच्छ करनेके बाद कूट-पीसकर छानकर शुद्ध जलमें बारह घंटेतक भिगो दे। उसके बाद आटेकी तरह गूँदकर मक्खन सदृश लोई बनाकर समस्त शरीरपर इस मुलायम मिट्टीको आधा सेमी० मोटी परतके रूपमें पेट, पैर, रीढ़, गर्दन, चेहरा, जननाङ्गों और सिरपर लेप करे। इसके बाद पौन घंटासे एक घंटातक धूप-स्नान ले। मिट्टी सूखनेसे त्वचामें खिंचाव होनेसे वहाँका व्यायाम होता है और रक्त-सञ्चार तीव्र होकर पोषण मिलता है। धूप-स्नानसे मिट्टीको पूर्णतः सुखाकर भलीभाँति स्नान करके विश्राम करे।

मिट्टीकी पट्टी तैयार करनेकी विधि— भुरभुरी चिकनी मिट्टी या काली मिट्टी किसी अच्छे स्थानसे लेकर उसे कूटकर एक-दो दिन धूपमें सुखा दे। कंकड़-पत्थर निकालकर साफ कर ले। इसे कूट-पीसकर छानकर बारह घंटेतक शुद्ध पानीमें भिगो दे। बारह घंटेके बाद लकड़ीकी करणी (पलटा)-से अच्छी तरह गूँदकर मक्खनकी तरह मुलायम कर ले। मिट्टीको इतना ही गीला रखे कि वह बहे नहीं (आटेके ढीलेपनसे थोड़ी कड़ी रखनी चाहिये)। मिट्टीकी पट्टीके लिये खादीका मोटा एवं सछिद्र कपड़ा अथवा जूटका टाट (पल्ली) काममें ले। अलग-अलग अङ्गोंके अनुसार बने साँचे (ट्रे)-में लकड़ीके पलटेसे मिट्टीको रखकर आधा इंच मोटी पट्टी बनावे। साँचा नहीं हो तो पत्थरकी शिला या लकड़ीके चौकोर पाटे (चौकी)-पर रखकर पट्टी बनावे।

इस पट्टीको पेट, रीढ़, सिर आदिपर सीधे सम्पर्कमें रखे। जिन रोगियोंको असुविधा हो तो साँचेमें नीचे खादीका सछिद्र कपड़ा या टाटकी एक तह बिछाकर उसपर मिट्टीकी पट्टी बनाकर चारों ओरसे पैक करके रखे। रोगीके अङ्गपर समतल तहवाला हिस्सा रखे। पट्टी रखनेके बाद ऊपरसे ऊनी वस्त्र या मोटे कपड़ेसे ढक दे। प्रत्येक रोगीका मिट्टी-पट्टीवाला वस्त्र अलग-अलग रखे। एक बार काममें ली हुई मिट्टीको दोबारा काममें नहीं ले। ठंडी मिट्टीकी पट्टी देनेसे पूर्व उस अङ्गको सेंकद्वारा किञ्चित् गरम कर ले। दुर्बल रोगी, श्वासरोग, दमा, जुकाम, तीव्र दर्द, साइटिका, आर्थराइटिस, गठिया, आमवात, गर्भावस्था, बच्चोंको यह प्रयोग यदि अरुचिकर एवं असुविधाजनक लगे तो नहीं करावे।

अङ्गोंके अनुसार अलग-अलग पट्टी बनाये

(अ) रीढ़की मिट्टी-पट्टी— डेढ़ फीट लम्बी एवं तीन इंच चौड़ी मिट्टीकी पट्टी बनाकर ग्रीवा-कशेरुकासे कटि-कशेरुकातक रखे।

(ब) सिरकी मिट्टी-पट्टी— ८-१० इंच लम्बी, ४-६ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर सिरपर टोपीकी तरह रखे या कुछ छोटी बनाकर ललाटपर रखे।

(स) आँखकी मिट्टी-पट्टी— १० इंच लम्बी, ४ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी बनाकर आँखोंपर रखे।

(द) कानकी मिट्टी-पट्टी— कानोंमें रूई लगाकर कानपर गोलाकार मिट्टीकी पट्टी या लेप कर सकते हैं।

(य) पेटकी मिट्टी-पट्टी— एक फुट लम्बी, ६-८ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर नाभिसे लेकर नीचेतक, मध्य उदरपर रखनी चाहिये।

रीढ़, सिर तथा पेट तीनोंपर एक साथ मिट्टीकी पट्टी रखनेसे शिरःशूल (सिरदर्द), हाई ब्लडप्रेशर, तेज बुखार, मूर्च्छा, अनिद्रा, नपुंसकता, मस्तिष्क-ज्वर, स्नायु-दौर्बल्य, अवसाद, तनाव, मूत्ररोग इत्यादिमें लाभ होता है। आँखपर मिट्टी-पट्टी रखनेसे आँखोंके समस्त रोग, जलन, सूजन, दृष्टि-दोष दूर होते हैं। गलेकी सूजन, टांसिलाइटिस, स्वरयन्त्रकी सूजन (लैरिंजाइटिस) आदिमें स्थानीय वाष्प देकर गरम मिट्टीकी पुल्टिस बाँधे।

पेट, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, कमर, जननाङ्ग, गुदाद्वार, अग्न्याशय आदि अङ्गोंपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे उनसे सम्बन्धित रोगोंमें लाभ मिलता है। पेटके प्रत्येक रोगमें पेडूपर मिट्टीकी पट्टी अवश्य देनी चाहिये।

(२) जल-चिकित्साके उपयोग

जल-चिकित्साकी विधियाँ— सामान्यतः हमारे शरीरमें ५५ प्रतिशतसे ७५ प्रतिशततक जल होता है। अतः जलका

महत्त्व स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत अधिक है—

(अ) गरम-ठंडा सेंक—सभी तरहके दर्द एवं सूजनमें इसके प्रयोगसे तुरंत लाभ मिलता है। सर्वप्रथम एक पात्रमें खूब गरम पानी तथा दूसरे पात्रमें खूब ठंडा (बर्फीला) पानी ले। तीन रोयेंदार तौलिये ले। गर्म पानीमें एक तौलियेके दोनों किनारे पकड़कर मध्यसे डुबोकर भिगो-निचोड़कर पीडित अङ्गपर रखे। ऊपर सूखा तौलिया ढक दे। तीन मिनटके बाद दूसरे तौलियेको ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर दो मिनटतक पीडित अङ्गपर रखे। यह क्रम कम-से-कम पाँच बार करे। सेंक हमेशा गर्मसे प्रारम्भ करके ठंडेपर समाप्त करना चाहिये। समाप्तिके बाद सूखे तौलियेसे शुष्क घर्षण देकर स्थानीय लपेट बाँधकर आराम कराये। गर्म-ठंडे सेंकसे रक्त-वाहिनियाँ संकुचित प्रसरित होती हैं। विजातीय पदार्थ बाहर निकलते हैं। पेटके रोगोंमें गर्म-ठंडा सेंक एक मुख्य उपचार है। इससे चमत्कारिक लाभ मिलता है।

(ब) मेहन-स्नान (जननेन्द्रिय प्रक्षालन)—इस स्नानके लिये बैठनेके लिये ऐसा स्टूल हो जो सामनेकी ओरसे अर्द्धचन्द्राकारमें कटा हो ताकि उसपर बैठकर जननेन्द्रियपर पानी डालते समय नितम्ब या अन्य अङ्गपर पानीका स्पर्श नहीं हो सके। स्टूलके ठीक सामने उसकी ऊँचाईसे एक इंच नीचे ठंडे पानीसे भरा हुआ बड़ा पात्र (बेसिन) या चौड़े मुँहवाली बालटी रखनी चाहिये।

(स) कटि-स्नान—इसके लिये एक विशेष प्रकारका कुर्सीनुमा टब (लोहा, फाइबर, ग्लास या प्लास्टिक) लेकर उसमें पानी भरकर रोगीको बिठा देते हैं। रोगीके पैर टबसे बाहर एक पट्टेपर रखवा दिये जाते हैं। टबका पानी कमरसे लेकर जाँघोंके बीचवाले भागको डुबोकर रखता है। इस दौरान रोगी रोयेंदार तौलियेसे नाभि, पेड़ू, नितम्ब तथा जाँघोंको पानीके अंदर रगड़ते हुए मालिश करे।

रोगी निर्बल हो तो पैरोंको चौड़े मुँहके गर्म पानीके पात्रमें रखवाये एवं गर्दनतक कम्बल या गर्म कपड़ेसे ढक दे। ठंडे पानीका तापमान ५०° फा० से ८०° फा० तक रखना चाहिये। प्रारम्भमें सहने योग्य पानी रखे। थोड़ी देर बाद बर्फका पानी डालकर पानीका तापमान कम करते जाय। टबमें पानी उतना ही रखे कि उसमें रोगीके बैठनेपर पानी नाभितक आ जाय। कटि-स्नानसे पूर्व तथा कटि-स्नानके दौरान शरीरका कोई अन्य अङ्ग नहीं भीगना चाहिये। भोजन एवं कटि-स्नानके मध्य तथा कटि-स्नान एवं साधारण स्नानके मध्य एक घंटेका अन्तर रखना आवश्यक है। कटि-स्नान रोगीकी सहनशक्ति, स्थितिके अनुसार तीन मिनटसे प्रारम्भ करके बीस मिनटतक देना चाहिये।

कम ठंडे पानीका कटि-स्नान अधिक देरतक देनेकी अपेक्षा अधिक ठंडे पानीका कटि-स्नान थोड़ी देरतक देना ज्यादा लाभदायक होता है। ठंडे कटि-स्नानसे पूर्व तथा बादमें सूखे तौलियेसे घर्षण-स्नान करके शरीरको किञ्चित् गर्म कर लेना चाहिये, जिससे ठंडे पानीका प्रतिकूल असर नहीं पड़े। तीव्र कमर-दर्द, निमोनिया, खाँसी, अस्थमा (दमा), साइटिका, गर्भाशय-मूत्राशय-जननेन्द्रिय तथा आन्त्रकी तीव्र सूजनमें कटि-स्नान वर्जित है।

(द) वाष्प-स्नान—वाष्प-स्नानके लिये आजकल कई तरहके बने-बनाये यन्त्र मिलते हैं। सम्पूर्ण वाष्प-स्नानके लिये केबिननुमा पेटी होती है, जिसमें वाष्प निकलनेके लिये छोटे-छोटे छिद्र तथा ट्यूब लगे होते हैं। इन छिद्रोंका सम्बन्ध ताँबेकी या लोहेकी पतली पाइपद्वारा बॉयलर (वाष्प-उत्पादक यन्त्र)-से होता है। बॉयलर चलानेपर वाष्प केबिनमें या वाष्प-कक्षमें भर जाती है।

विधि—रोगीका सारा शरीर केबिनमें होता है। गर्दनके ऊपरका हिस्सा बाहर होता है। वाष्प-स्नानसे पूर्व सिर, चेहरा तथा गलेको ठंडे पानीसे धोकर सिरपर गीली तौलिया रखे। रोगीको नीबू, पानी, शहद या संतरेका रस १००-२०० मि०ली० तक पिला दे। पंद्रह-पंद्रह मिनटतक वाष्प-स्नान ले। इस दौरान अङ्ग-प्रत्यङ्गकी मालिश करनी चाहिये, जिससे विजातीय तत्त्व घुलकर त्वचासे बाहर निकलते हैं। वाष्प-स्नानके बाद ठंडे पानीसे स्नान करना चाहिये।

घरपर वाष्प-स्नान लेनेके लिये बंद कमरेमें मूँजकी चारपाईपर रोगीको लिटाकर कम्बलसे चारों ओर ढक दे तथा खाटके नीचे दो पतीलोंमें पानी भरकर उबाले। एक पात्र पैरोंकी तरफ और दूसरा पीठके नीचे रखे। रोगी

करवट बदल-बदलकर सारे शरीरपर वाष्प-स्नान ले।

(य) स्थानीय वाष्प-स्नान—आजकल रेडीमेड फेशियल सोना बाथ-जैसे यन्त्र बाजारमें मिलते हैं। इसके अलावा घरपर प्रेशर-कुकरकी सीटी हटाकर उसमें सात-दस फुट लम्बी पारदर्शक रबड़की पाइप लगाये। प्रेशर-कुकरको आधा पानीसे भरकर गर्म करे। भाप बननेपर किसी कपड़ेसे पाइपके दूसरे छोरको पकड़कर अलग-अलग अङ्गोंपर स्थानीय वाष्प दे। १०-१५ मिनटतक ही स्थानीय वाष्प ले। इसके तुरंत बाद ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर तेजीसे घर्षण-स्नान देकर सूती-ऊनी लपेट बाँधे।

(र) गर्म-पाद-स्नान—दो टब या बालटी लें। उनमें गर्म पानी भरे। फिर सिर, चेहरा, गला धोकर सिरपर गीली तौलिया रखकर स्टूलपर बैठ जाय। दोनों पैरोंको बालटीमें रखे। गर्दनसे लेकर टबतकके हिस्सेको गर्म कम्बलसे इस तरह ढक दे कि भाप बाहर नहीं निकले। जबतक रोगीको पसीना नहीं आये, तबतक गर्म-पाद-स्नान दे। पसीना नहीं आये तो गर्म पानी पिलाये। टबमें पानी घुटनोंतक रखे। १०-१५ मिनटमें पसीना आने लगता है। पसीना आनेके बाद ठंडा स्नान, ठंडा घर्षण-स्नान अथवा स्पंज बाथ देकर आराम कराये। गर्म-पाद-स्नानसे रक्तप्रवाह पैरोंकी तरफ नीचे आता है। फलतः यकृत् और गुर्दे सक्रिय होकर दूषित विषोंको तेजीसे निकालने लगते हैं।

(ल) सूखा-घर्षण—एक अच्छी किस्मका रोयेंदार सूखा तौलिया लेकर हल्के हाथसे सर्वप्रथम बायें हाथपर फिर क्रमशः दायें हाथपर, दायें पैरपर, बायें पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब आदि समस्त अङ्गोंका घर्षण करे। इससे रक्त-संचरण तीव्र होकर त्वचा लाल हो जाती है। तत्पश्चात् ठंडे पानीसे स्नान कराये।

(व) ठंडा स्पंज-स्नान—बर्फका सादा पानी, ताजा पानी अथवा नीमके पत्तोंसे युक्त उबला पानी रोगीकी स्थितिके अनुसार तीन रोयेंदार तौलिये पानीमें बारी-बारीसे भिगोकर निचोड़कर घर्षण-स्नान करे। सबसे पहले बायाँ हाथ, दायाँ हाथ, दायाँ पैर, बायाँ पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब, गुदाद्वार, जननेन्द्रिय आदि अङ्गोंपर क्रमशः घर्षण-मालिश करे। पानी गंदला हो जानेपर बदलते रहे। अन्तमें सूखे तौलियेसे सारे शरीरका सूखा घर्षण करके शरीरको गर्म कर दे और विश्राम कराये।

(श) गीली चादरकी लपेट—दो कम्बल, एक सूती सफेद चादर, एक पतला कपड़ेका टुकड़ा, एक प्लास्टिककी चादर तथा दो तौलिये ले। पलंग या जमीनपर दोनों कम्बल बिछा दे। इसके ऊपर सफेद चादरको नीमके पत्तोंसे युक्त उबले पानीमें भिगो-निचोड़कर बिछाये। रोगीका सिर, चेहरा ठंडे पानीसे धो-पोंछकर एक गिलास गर्म पानी पिलाये तथा सिरपर गीली तौलिया बाँधे। लंगोट या कौपीन बाँधकर रोगीको निर्वस्त्र लिटा दे। पहले हाथोंको बाहर निकालकर सूती गीली चादरमें धड़को लपेट दे, फिर दोनों पैरोंको अच्छी तरह लपेटकर हाथों एवं गर्दनको भी लपेट दे ताकि सारा शरीर गीली चादरके सम्पर्कमें ही रहे। ऊपरसे कम्बलको भलीभाँति लपेट दे।

फिर प्लास्टिककी चादर भी लपेटकर ऊपर कम्बल लपेट सकते हैं। (यदि पसीना नहीं आ रहा हो तो) पाँचसे पंद्रह मिनटमें शरीरसे गर्मी निकलकर पसीना आने लगता है। त्वचा सक्रिय होकर रक्त-संचार तीव्र होने लगता है। इस उपचारसे यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय, पीलिया, पेटके रोग ठीक होते हैं। गीली चादरकी लपेट रोगीकी शारीरिक स्थितिके अनुसार १५—३० मिनटतक दे सकते हैं। गीली चादर-लपेटके बाद सामान्य स्नान कराये। लपेटके दौरान सिर-दर्द, चक्कर, मूर्च्छाके लक्षण दिखे तो उपचार बंद कर दे। पाण्डु (रक्ताल्पता), दुर्बलता, हृदय-रोग, अस्थमा, निमोनिया, गठिया आदि स्थितिमें गीली चादर-लपेट नहीं देनी चाहिये।

(ह) पेटकी लपेट—छः फुट लम्बी एवं बारह इंच चौड़ी सूती कपड़े एवं ऊनी कपड़ेकी पट्टी बनाये। ऊनी पट्टीके दूसरे सिरेपर डोरी बँधी हो। सर्वप्रथम पेटपर सेंक या स्थानीय भाप देकर उसे गर्म करे एवं सूती कपड़ेको पानीमें भिगो-निचोड़कर तीन बार पेटपर लपेट दे। सूती कपड़ेको ठंडे पानीमें भिगोये। इसके ऊपर सूखी ऊनी लपेट इस तरहसे बाँधे कि नीचेकी सूती लपेट नहीं दिखे और वायु अवरुद्ध हो जाय। लपेटको इतना ढीला नहीं छोड़े

कि वायु अंदर प्रवेश करके क्रियाहीनता उत्पन्न कर दे। इतनी बाँधें भी नहीं कि रक्तप्रवाह रुककर रोगीको बेचैनी होने लगे। पिण्डलियोंके लिये छ: फुट लम्बी एवं चार इंच चौड़ी लपेट प्रयोगमें लानी चाहिये।

(३) सूर्य-स्नान (धूप-स्नान)-का उपयोग

प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्य-स्नानका विशेष महत्त्व है। इसके सेवनसे शरीरमें विटामिन-'डी' की प्राप्ति होती है।

स्थानका चुनाव—सूर्य-स्नानके लिये एकान्त स्थान होना चाहिये, जैसे—मकानकी छत, दीवारकी ओट आदि।

विधि—सूर्य-स्नानके समय शरीरसे कपड़े हटा देने चाहिये ताकि सूर्यकी किरणें सीधे शरीरपर पड़ें।

सर्वप्रथम धूपमें चित लेट जायँ। बादमें पेटके बल लेटकर सूर्य-स्नान लेना आरामदायक रहता है। सूर्य-स्नानके समय धूप सौम्य होनी चाहिये तथा सिरपर एक सूखा तौलिया रखें। यदि तेज धूप हो तो सिरपर गीला कपड़ा रखना आवश्यक है। धूप-स्नान लेते समय आँखें बंद रखनी चाहिये अन्यथा दृष्टि कमजोर होती है।

अवधि—सूर्य-स्नानकी समय-सीमा रोगीकी अवस्था, रोगकी तीव्रता-जीर्णता तथा ऋतुके अनुसार निश्चित करें। ग्रीष्म-ऋतुमें १०—३० मिनटतक तथा शीत-ऋतुमें २०—६० मिनटतक सूर्य-स्नान लें।

ऋतुकाल—ग्रीष्म-ऋतुमें प्रात: साढ़े सातसे आठ बजेके पूर्व सूर्य-स्नान लें एवं सायंकालमें साढ़े पाँचसे छ: बजेके पश्चात् सूर्य-स्नान लेना उपयुक्त रहता है। शीत-ऋतुमें प्रात: नौसे साढ़े नौके पहले एवं सायंकालमें चार बजेसे पाँच बजेके बाद सूर्य-स्नान लेना चाहिये। इस तरहसे संक्षेपमें प्राकृतिक चिकित्साकी विधियों-प्रविधियोंके बारेमें समझाया गया है।

फिर भी सावधानीपूर्वक रोग एवं रोगीकी स्थिति, अवस्था, देश, काल, बल आदिको ध्यानमें रखते हुए चिकित्सा-लाभ लें अथवा किसी योग्य प्राकृतिक चिकित्सककी देख-रेखमें उपचार कराना चाहिये।

(४) प्राकृतिक चिकित्सामें उपवासका महत्त्व

पेटके रोगोंमें उपवास (आकाश)-चिकित्साका सर्वाधिक महत्त्व है। रोगीकी अवस्थाके अनुसार अर्ध उपवास, एकाहार रसोपवास, फल-उपवास, दुग्ध-उपवास, मट्ठा-उपवास कराया जाता है। पूर्ण उपवासमें सादे जलके अलावा कुछ नहीं दिया जाता है।

उपवास-विधि—मानसिक रूपसे स्वयंको तैयार करें तथा शारीरिक दृष्टिसे प्रारम्भमें दो दिन भोजनकी मात्रा आधी कर दें। सब्जियाँ तथा फल बढ़ा दें। एक-दो दिन एक समय केवल रोटी, सब्जी, सलाद लें तथा दूसरे समय केवल फल लें। एकसे तीन दिन फलाहार, फिर एकसे तीन दिन रसाहार, पुन: एकसे तीन दिन नीबूका पानी, शहदपर रहें। रोगीकी शारीरिक, मानसिक अवस्थाको देखते हुए दो-तीन दिनतक संतरेके रसपर रहकर सीधे उपवासपर आ जाय।

उपवासके दौरान मल सूख जाता है। उपवासके पहले अर्द्धशङ्ख-प्रक्षालन या नाशपाती, आँवला, करेलेके रससे पेटको पूर्ण साफ कर लेना चाहिये। उपवासके दौरान एनिमा, मिट्टी-पट्टी, मालिश, धूप-स्नान, टहलना, आसन, प्राणायाम, कुञ्जल आदि चिकित्सारोगके अनुसार लें। इस दौरान एक घंटेके अन्तरालपर एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर पीते रहें।

उपवास तोड़नेकी विधि—लम्बे उपवासमें एक-दो दिन कुछ परेशानी अवश्य होती है, फिर कोई कठिनाई नहीं होती। लम्बा उपवास करना जितना सरल है, तोड़ना उससे ज्यादा कठिन है। यदि वैज्ञानिक ढंगसे उपवास नहीं तोड़ा जाय तो अनिष्ट होकर मृत्यु भी हो सकती है। उपवास तोड़ते समय शीघ्र पाचक फलोंके रसमें पानी मिलाकर लें, ताकि पाचन-तन्त्र भोजन ग्रहण करनेकी आदत डाल सके। संतरेके १२५ मि०ली० रसमें १०० मि०ली० जल मिलाकर धीरे-धीरे चूसकर पियें। दो-तीन घंटेके अन्तरसे जल-मिश्रित रस लेते रहे। संतरा उपलब्ध नहीं हो तो एक नीबूका रस तथा दो चम्मच शहदमें एक गिलास पानी मिलाकर पियें अथवा बीस-तीस मुनक्का, किशमिश भिगो-मसल-छानकर पानी मिलाकर लें। दूसरे दिनसे रस या सब्जियोंके सूप

(परवल, लौकी, टिण्डा, तोरई, टमाटर आदि)-की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जायँ तथा क्रमशः उबली सब्जी, फल, चपातीकी पपड़ी, पतला दलिया लें। संतरा, पपीता, अंगूर, टमाटर, सेब, केला आदि फल उत्तम हैं। जितने दिन उपवास करें कम-से-कम उतने ही दिन सामान्य आहारपर आनेमें लगना चाहिये। उपवास-काल एवं उपवास तोड़नेके समय पर्याप्त मात्रामें पानी पीना अत्यन्त आवश्यक है। पानी नहीं पीनेसे विजातीय तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते एवं तरह-तरहके उपद्रव होने लगते हैं।

निषेध—गर्भिणी स्त्री, दुग्धावस्था (बच्चा दूध पीता हो ऐसी स्त्री), कमजोर, बालक, हृदय-रोगी, मधुमेह, राजयक्ष्मा (टी०बी०)-का रोगी, कृश व्यक्ति, सुकोमल प्रकृतिके व्यक्तिको लम्बे उपवास नहीं करने चाहिये।

लाभ—पेटके समस्त रोग—दमा, गठिया, आमवात, संधिवात, त्वक्‌विकार, चर्मरोग, मोटापा आदि जीर्ण रोगोंमें उपवास एक सर्वोत्तम निसर्गोपचार है।

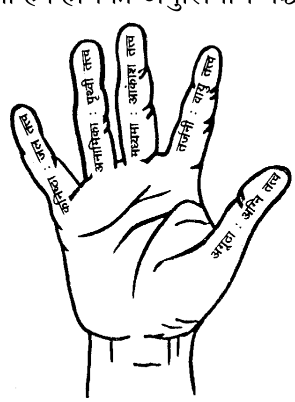
दीर्घ उपवास हमेशा किसी विशेषज्ञके निर्देशनमें ही करना चाहिये।

हस्त-मुद्रा-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मानव-शरीर अनन्त रहस्योंसे भरा हुआ है। शरीरकी अपनी एक मुद्रामयी भाषा है, जिसे करनेसे शारीरिक स्वास्थ्य-लाभमें सहयोग प्राप्त होता है। यह शरीर पञ्चतत्त्वोंके योगसे बना है। पाँच तत्त्व ये हैं—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु एवं (५) आकाश। शरीरमें जब भी इन तत्त्वोंका असंतुलन होता है, रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम इनका संतुलन करना सीख जायँ तो बीमार हो ही नहीं सकते एवं यदि हो भी जायँ तो इन तत्त्वोंको संतुलित करके आरोग्यता वापस ला सकते हैं।

हस्त-मुद्रा-चिकित्साके अनुसार हाथ तथा हाथोंकी अँगुलियों और अँगुलियोंसे बननेवाली मुद्राओंमें आरोग्यका राज छिपा हुआ है। हाथकी अँगुलियोंमें पञ्चतत्त्व प्रतिष्ठित हैं।



ऋषि-मुनियोंने हजारों साल पहले इसकी खोज कर ली थी एवं इसे उपयोगमें बराबर प्रतिदिन लाते रहे, इसीलिये वे लोग स्वस्थ रहते थे। ये शरीरमें चैतन्यको अभिव्यक्ति देनेवाली कुंजियाँ हैं।

मनुष्यका मस्तिष्क विकसित है, उसमें अनन्त क्षमताएँ हैं। ये क्षमताएँ आवृत हैं, उन्हें अनावृत करके हम अपने लक्ष्यको पा सकते हैं।

नृत्य करते समय भी मुद्राएँ बनायी जाती हैं, जो शरीरकी हजारों नसों एवं नाडियोंको प्रभावित करती हैं और उनका प्रभाव भी शरीरपर अच्छा पड़ता है।

हस्त-मुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। जिस हाथमें ये मुद्राएँ बनाते हैं, शरीरके विपरीत भागमें उनका तुरंत असर होना शुरू हो जाता है। इन सब मुद्राओंका प्रयोग करते समय वज्रासन, पद्मासन अथवा सुखासनका प्रयोग करना चाहिये।

इन मुद्राओंको प्रतिदिन तीससे पैंतालीस मिनटतक करनेसे पूर्ण लाभ होता है। एक बारमें न कर सके तो दो-तीन बारमें भी किया जा सकता है।

किसी भी मुद्राको करते समय जिन अँगुलियोंका कोई काम न हो उन्हें सीधी रखे।

वैसे तो मुद्राएँ बहुत हैं पर कुछ मुख्य मुद्राओंका वर्णन यहाँ किया जा रहा है, जैसे—

(१) ज्ञान-मुद्रा

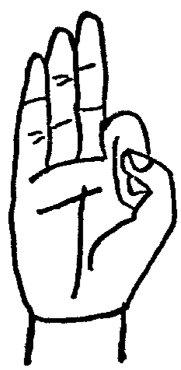


विधि—अँगूठेको तर्जनी अँगुलीके सिरेपर लगा दे। शेष तीनों अँगुलियाँ चित्रके अनुसार सीधी रहेंगी।

लाभ—स्मरण-शक्तिका विकास होता है और ज्ञानकी वृद्धि होती है, पढ़नेमें मन लगता है, मस्तिष्कके स्नायु मजबूत होते हैं, सिर-दर्द दूर होता है तथा अनिद्राका नाश, स्वभावमें परिवर्तन, अध्यात्म-शक्तिका विकास और क्रोधका नाश होता है।

सावधानी—खान-पान सात्त्विक रखना चाहिये, पान-पराग, सुपारी, जर्दा इत्यादिका सेवन न करे। अति उष्ण और अति शीतल पेय पदार्थोंका सेवन न करे।

(२) वायु-मुद्रा



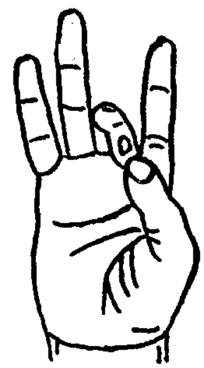
विधि—तर्जनी अँगुलीको मोड़कर अँगूठेके मूलमें लगाकर हलका दबाये। शेष अँगुलियाँ सीधी रखे।

लाभ—वायु शान्त होती है। लकवा, साइटिका, गठिया, संधिवात, घुटनेके दर्द ठीक होते हैं। गर्दनके दर्द, रीढ़के दर्द तथा पारकिंसन्स रोगमें फायदा होता है।

विशेष—इस मुद्रासे लाभ न होनेपर प्राण-मुद्रा (संख्या १०)-के अनुसार प्रयोग करे।

सावधानी—लाभ हो जानेतक ही करे।

(३) आकाश-मुद्रा



विधि—मध्यमा अँगुलीको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये। शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियोंकी कमजोरी तथा हृदय-रोग ठीक होता है।

सावधानी—भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करे। हाथोंको सीधा रखे। लाभ हो जानेतक ही करे।

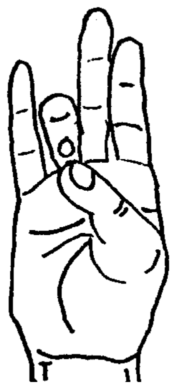
(४) शून्य-मुद्रा



विधि—मध्यमा अँगुलीको मोड़कर अँगुष्ठके मूलमें लगाये एवं अँगूठेसे दबाये।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि दूर होकर शब्द साफ सुनायी देता है, मसूढ़ेकी पकड़ मजबूत होती है तथा गलेके रोग एवं थायरायड-रोगमें फायदा होता है।

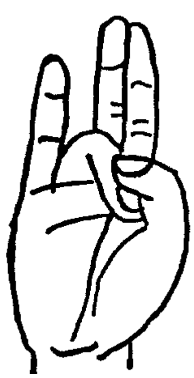
(५) पृथ्वी-मुद्रा



विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर रखे।

लाभ—शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढ़ता है, जीवनी शक्तिका विकास होता है। यह मुद्रा पाचन-क्रिया ठीक करती है, सात्त्विक गुणोंका विकास करती है, दिमागमें शान्ति लाती है तथा विटामिनकी कमीको दूर करती है।

(६) सूर्य-मुद्रा

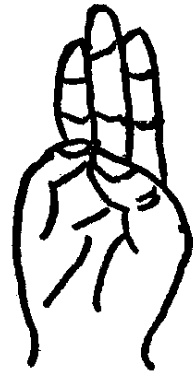


विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेके मूलपर लगाकर अँगूठेसे दबाये।

लाभ—शरीर संतुलित होता है, वजन घटता है, मोटापा कम होता है। शरीरमें उष्णताकी वृद्धि, तनावमें कमी, शक्तिका विकास, खूनका कोलस्ट्रॉल कम होता है। यह मुद्रा मधुमेह, यकृत् (जिगर)-के दोषोंको दूर करती है।

सावधानी—दुर्बल व्यक्ति इसे न करे। गर्मीमें ज्यादा समयतक न करे।

(७) वरुण-मुद्रा

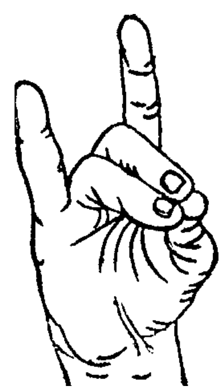


विधि—कनिष्ठा अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शरीरमें रूखापन नष्ट करके चिकनाई बढ़ाती है, चमड़ी चमकीली तथा मुलायम बनाती है। चर्म-रोग, रक्त-विकार एवं जल-तत्त्वकी कमीसे उत्पन्न व्याधियोंको दूर करती है। मुँहासोंको नष्ट करती और चेहरेको सुन्दर बनाती है।

सावधानी—कफ-प्रकृतिवाले इस मुद्राका प्रयोग अधिक न करें।

(८) अपान-मुद्रा



विधि—मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—शरीर और नाडीकी शुद्धि तथा कब्ज दूर होता है। मल-दोष नष्ट होते हैं, बवासीर दूर होता है। वायु-विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दोंके दोष, दाँतोंके दोष दूर होते हैं। पेटके लिये उपयोगी है, हृदय-रोगमें फायदा होता है तथा यह पसीना लाती है।

सावधानी—इस मुद्रासे मूत्र अधिक होगा।

(९) अपान वायु या हृदय-रोग-मुद्रा

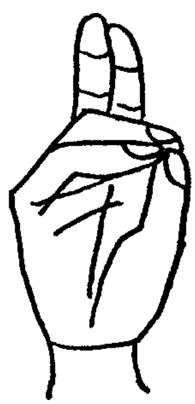


विधि—तर्जनी अँगुलीको अँगूठेके मूलमें लगाये तथा मध्यमा और अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—जिनका दिल कमजोर है, उन्हें इसे प्रतिदिन करना चाहिये। दिलका दौरा पड़ते ही यह मुद्रा करानेपर आराम होता है। पेटमें गैस होनेपर यह उसे निकाल देती है। सिर-दर्द होने तथा दमेकी शिकायत होनेपर लाभ होता है। सीढ़ी चढ़नेसे पाँच-दस मिनट पहले यह मुद्रा करके चढ़े। इससे उच्च रक्तचापमें फायदा होता है।

सावधानी—हृदयका दौरा आते ही इस मुद्राका आकस्मिक तौरपर उपयोग करे।

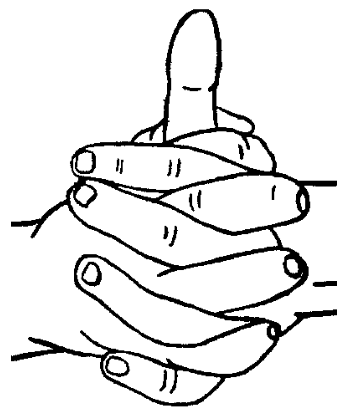
(१०) प्राण-मुद्रा



विधि—कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियोंके अग्रभागको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शारीरिक दुर्बलता दूर करती है, मनको शान्त करती है, आँखोंके दोषोंको दूर करके ज्योति बढ़ाती है, शरीरकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाती है, विटामिनोंकी कमीको दूर करती है तथा थकान दूर करके नवशक्तिका संचार करती है। लंबे उपवास-कालके दौरान भूख-प्यास नहीं सताती तथा चेहरे और आँखों एवं शरीरको चमकदार बनाती है। अनिद्रामें इसे ज्ञान-मुद्रा (संख्या १)-के साथ करे।

(११) लिङ्ग-मुद्रा



विधि—चित्रके अनुसार मुट्ठी बाँधे तथा बायें हाथके अँगूठेको खड़ा रखे, अन्य अँगुलियाँ बँधी हुई रखे।

लाभ—शरीरमें गर्मी बढ़ाती है। सर्दी, जुकाम, दमा, खाँसी, साइनस, लकवा तथा निम्न रक्तचापमें लाभप्रद है, कफको सुखाती है।

सावधानी—इस मुद्राका प्रयोग करनेपर जल, फल, फलोंका रस, घी और दूधका सेवन अधिक मात्रामें करे। इस मुद्राको अधिक लम्बे समयतक न करे।

पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले। दशमूलरसे वाऽपि गुग्गुलः शोथनाशनः॥

(चक्रदत्त)

पुनर्नवा, देवदारु तथा सोंठके काढ़े या केवल गोमूत्र या दशमूलके काढ़ेको गुग्गुल मिलाकर पीनेसे शोथ दूर होता है।

कायोत्सर्ग और स्वास्थ्य

(आचार्य महाप्रज्ञ)

अध्यात्मके क्षेत्रमें अनेक प्रयोग आविष्कृत हुए, उनमें कायोत्सर्ग आधारभूत प्रयोग रहा। कायोत्सर्गके होनेपर दूसरे प्रयोग सहज सिद्ध हो जाते हैं। इसके अभावमें कोई भी प्रयोग पूरा सफल नहीं बनता। इसलिये कायोत्सर्गको अध्यात्म-साधनाकी आधारशिला कहा गया है। ध्यानके सारे प्रयोग कायोत्सर्गसे प्रारम्भ होते हैं।

कायोत्सर्गका प्रयोग बहुत व्यापक है। हठयोगका शब्द है—शवासन अर्थात् मुर्देकी तरह हो जाना। कायोत्सर्ग जैनयोगका शब्द है। इसमें मुर्दा-जैसा नहीं बनना है, बल्कि कायाका उत्सर्ग करना है। कायोत्सर्गमें शारीरिक प्रवृत्तियोंका शिथिलीकरण होता है। केवल यही नहीं, चैतन्यके प्रति जागरूकता भी होती है। कायोत्सर्गका सबसे प्रधान सूत्र है—ममत्वका विसर्जन। जबतक ममत्वकी ग्रन्थि प्रबल रहती है, अध्यात्मकी साधना भी नहीं होती और शारीरिक-मानसिक बीमारियोंके लिये एक पृष्ठभूमि भी तैयार रहती है। कोई भी शरीर या मनकी बीमारी किसी ग्रन्थिकी प्रबलताके कारण ही आ सकती है, पनप सकती है और अपना डेरा जमा सकती है। सबसे बड़ी बात है ममत्वका विसर्जन। शरीरके प्रति हमारी आसक्ति न रहे तो शरीर अधिक काम देता है। उसके प्रति आसक्ति बढ़ती है तो फिर वह भी बीमारियोंका साथ देने लग जाता है।

विकसित होती है अल्फा-तरंग—भगवान् महावीरका एक वचन बहुत महत्त्वपूर्ण है—'कायोत्सर्ग सब दु:खोंका मोक्ष करनेवाला है, सब दु:खोंसे छुटकारा देनेवाला है।' यह एक छोटा-सा सूत्र है, पर इसकी मर्मस्पर्शी व्याख्या करना बड़ी कठिन बात है। कायोत्सर्ग सब दु:खोंसे छुटकारा कैसे दे सकता है? यदि विज्ञानके संदर्भमें इसे हम समझनेका प्रयत्न करें तो बात कुछ समझमें आ सकती है। मस्तिष्ककी कई तरंगें हैं—अल्फा, बीटा, थीटा तथा गामा आदि। जब-जब अल्फा-तरंग संचरित होती है, मानसिक तनावसे मुक्ति मिलती है, शान्ति प्रस्फुटित होती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें अल्फा-तरंगको विकसित होनेका मौका मिलता है। कायोत्सर्ग किया और अल्फा-तरंगें उठने लग जायँगी, मानसिक तनाव घटना आरम्भ हो जायगा। ई०सी०जी० करनेवाला निर्देश देता है कि शरीरको बिलकुल ढीला छोड़कर सो जाओ। दाँत निकालते समय डॉक्टर सुझाव देता है कि जबड़ेको बिलकुल ढीला छोड़ दो। जबड़ा भिंचा रहा तो दाँत नहीं निकल पायेगा और दर्द भी ज्यादा होगा। दर्दको मिटाना है, दर्दको कम करना है तो कायोत्सर्ग अनिवार्य है।

तनाव और दर्द—वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे हम इसकी व्याख्या करते हैं। अभी जो नयी खोज हुई है, वह यह है कि रसायनके द्वारा हम पीडाको दूर कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्कमें, सुषुम्णामें अनेक रसायन पैदा होते हैं जो पीडाको कम कर देते हैं। जब-जब व्यक्ति गहरी भक्तिमें डूबता है, वैराग्य-भावना बढ़ती है; ध्यानकी गहरी स्थिति बनती है तो वह रोगजनित पीडाको भूल जाता है। यही पीडा कायोत्सर्गकी स्थितिमें शामक दशा बनती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें हर पीडा कम हो जायगी। इस संदर्भमें महावीरका यह वचन—'कायोत्सर्ग सब दु:खोंको शान्त करनेवाला है'—कितना मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है! जहाँ भी तनाव आयगा, दर्द बढ़ जायगा। तनाव और दर्दका गहरा सम्बन्ध है। जैसे ही तनाव कम होगा, पीडा कम हो जायगी। शरीरको ढीला करो, शिथिल करो, पीडा विलीन हो जायगी। जो रसायन हमारे शरीरमें पैदा होते हैं, उन्हें पैदा करनेके लिये कायोत्सर्ग सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

संजीवनी बूटी—कायोत्सर्ग-शतक इसपर बहुत अच्छा प्रकाश डालनेवाला ग्रन्थ है। इसमें कायोत्सर्गके विषयमें महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। इससे लाभ क्या है? इस सम्बन्धमें कहा गया है—'इससे देह और मतिकी जडताका शोधन होता है।' आज विज्ञानके युगमें देहयुक्त जडताको शान्त करे तो बहुत सारी नयी बातें आ जाती हैं। कायोत्सर्गके द्वारा रक्त-विकार तथा मोह शान्त हो जाता है। विकारकी जो बीमारी है, कायोत्सर्गमें वह शान्त हो

जायगी। रक्तचापके लिये कायोत्सर्ग संजीवनी बूटीका काम करता है। जिन्हें रक्तचाप था, प्रेक्षाध्यान शिविर-कालमें उनसे कायोत्सर्गका प्रयोग करवाया गया। परिणाम यह हुआ कि जिनका रक्तचाप १७० था, आधे घंटेके कायोत्सर्गमें १४० पर आ गया। आधे घंटेमें इतना अन्तर आ जाता है, यदि दीर्घकालतक करे तो बहुत अन्तर आ सकता है। दीर्घकालतक कायोत्सर्गकी एक पद्धति रही है। गम्भीर मानसिक बीमारीके लिये बताया गया—पहले दिन पूरा कायोत्सर्ग, दिन-रातका कायोत्सर्ग। दूसरे दिन उससे कुछ कम। तीसरे दिन पुनः अहोरात्र कायोत्सर्ग और चौथे दिन कुछ कम। यह क्रम बराबर चले। नौ दिनका यह क्रम होता है। इस क्रमसे प्रयोग करे तो गम्भीर मानसिक बीमारी शान्त हो जायगी।

कायोत्सर्गकी एक लम्बी प्रक्रिया है। एक दिनका, दो दिनका और बारह दिनका कायोत्सर्ग। यह दीर्घकालिक कायोत्सर्ग रक्तचाप और हृदयरोगके लिये बड़ा कल्याणकारी है। हृदय, मस्तिष्क और मेरुदण्डके लिये बहुत उपयोगी है। इन तीनोंको आराम देना कायोत्सर्गका मुख्य प्रयोजन है। ये तीनों स्वस्थ हैं तो सब कुछ ठीक है। मस्तिष्क, हृदय और मेरुदण्ड ठीक काम कर रहा है तो स्वास्थ्यकी काफी सुविधा हो जाती है। मानसिक तनाव और इससे उत्पन्न विकृतिके लिये कायोत्सर्ग-जैसा कोई महत्त्वपूर्ण उपाय या चिकित्साकी दूसरी पद्धति नहीं है। मनश्चिकित्सकके पास रोगी जाता है तो चिकित्सक सबसे पहले सुझाव देता है—'तुम बिलकुल ढीले होकर सो जाओ।' मांसपेशियोंकी, मस्तिष्कीय स्नायुओंकी और पूरे शरीरकी शिथिलताकी स्थितिमें प्राणका संतुलन हो जाता है। प्राणका संतुलन कायोत्सर्गकी मुद्रामें होता है।

प्राण-संतुलनका प्रयोग—असंतुलित प्राण अनेक बीमारियोंके लिये उत्तरदायी है। प्राणके असंतुलनकी बीमारीको अभी मेडिकल साइंसने भी नहीं पकड़ा है। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा अधिक एकत्रित हो गयी, वहाँ कोई-न-कोई गड़बड़ी वह अवश्य पैदा करेगी। शरीरमें प्राण-ऊर्जा संतुलित रहनी चाहिये तथा नाडियोंमें प्राण-ऊर्जाका प्रवाह भी संतुलित होना चाहिये। जहाँ ऊर्जा ज्यादा एकत्रित हुई, वहाँ समस्या पैदा हो गयी। मनुष्यके कामकेन्द्रमें ज्यादा इकट्ठा हुई तो काम-वासना प्रबल हो जायगी और उसे सहन करना कठिन हो जायगा। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा आवश्यकतासे अधिक होगी, वहाँ बीमारी पैदा कर देगी। नाभिमें ज्यादा हो गयी तो क्रोध आने लग जायगा, चिड़चिड़ापन बढ़ जायगा, अनेक विकृतियाँ पैदा हो जायँगी। प्राणका संतुलन रहे तो व्यक्ति अनेक विकृतियोंसे बच सकता है। प्राण-संतुलनका एक सुन्दर उपाय है—कायोत्सर्ग। जहाँ शिथिलता होती है, वहाँ प्राण-ऊर्जाका असंतुलन संतुलनमें बदल जाता है। प्राणका प्रवाह अपने-आप ठीक हो जाता है।

प्राण-संतुलनका एक उपाय है—मन्द श्वास। श्वासको मन्द करना बहुत आवश्यक है। अच्छे स्वास्थ्यके लिये एक बड़ी शर्त यह है कि श्वास कभी तेज न हो। कायोत्सर्ग करे, श्वास अपने-आप मन्द हो जायगा। इसे करनेसे पूर्व श्वासकी संख्याका माप करे और दस मिनटके बाद पुनः श्वासकी संख्याका माप करे तो पायेंगे कि श्वासकी संख्या कम—मन्द हो गयी है। प्राणका संतुलन, श्वासको मन्द करना—यह सब कायोत्सर्गकी अवस्थामें सहज प्राप्त होते हैं।

अनिद्रा, थकान और कायोत्सर्ग—अनिद्रा-रोग आज बहुत व्यापक हो रहा है। नींद नहीं आती, बड़ी समस्या रहती है। कायोत्सर्ग नींदकी सर्वोत्तम गोली है। जिन्होंने ठीकसे कायोत्सर्ग साधा है, अनिद्रा-रोग उन्हें कभी नहीं सतायेगा। थकान भी एक बड़ी समस्या है। बहुत-सी बीमारियाँ थकानके कारण पैदा होती हैं। अधिक मानसिक श्रम किया, मस्तिष्क थक गया। बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम किया, शरीर थक गया। हृदयसे ज्यादा काम लिया, हृदय थक गया। किडनीसे ज्यादा काम लिया, किडनी थक गयी। लीवरसे ज्यादा काम लिया तो वह थक गया। शारीरिक अथवा आङ्गिक जो थकान होती है, वह बीमारीको पैदा करती है। कायोत्सर्ग थकानको मिटानेका बहुत अच्छा उपाय है। यदि आपको थकान है तो पाँच मिनट कायोत्सर्गमें चले जायँ, थकान एकदम मिट जायगी।

खिंचाव और शिथिलीकरण—योगासन-पद्धतिमें विधान किया गया है—आसन करो। आसनका काम है खिंचाव—

तनाव पैदा करना। मांसपेशियोंको तनाव देना बहुत आवश्यक है। किंतु इन्हें तनाव देनेके बाद ढीला छोड़ दो। यह स्वास्थ्यका बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव दो और शिथिलीकरण करो। यह विधान रहा—सर्वाङ्ग-आसन करो, उसके बाद विपरीत-आसन—मत्स्यासन करो। उसके अन्तरालमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। भुजङ्गासन या कोई दूसरा आसन करो तो बीचमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। प्रत्येक आसनके बाद एक मिनटका कायोत्सर्ग। तनाव-ही-तनाव देते रहे तो आसन भी खराबी पैदा करेंगे। हमारा हृदय भी निरन्तर नहीं चलता है। हृदय बहुत अच्छा कायोत्सर्ग करता है। एक क्षण वह चलता है और एक क्षण बाद कायोत्सर्गमें चला जाता है। ऐसा करनेसे ही वह चौबीस घंटे धड़क पाता है। यदि कायोत्सर्ग न करे तो इतना काम नहीं कर सकता।

स्वास्थ्यका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव और शिथिलीकरण। कायोत्सर्ग विश्राम देनेवाला है। यह शरीर और मन—दोनोंको विश्राम देता है। हमारी शारीरिक और मानसिक प्रणालीको स्वस्थ रखनेका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—कायोत्सर्ग। मनपर भी कितना भार होता है! कोई गधा, बैल, ऊँट जितना भार नहीं ढोता, उससे ज्यादा भारवाहक मन है। एक छोटी-सी घटना घटी और चली गयी, किंतु उसका भार मनों-टनोंसे भी ज्यादा हो जाता है। इतना भार हमारा मन और मस्तिष्क ढोता है। वह भार कैसे मिटाया जाय? इसके लिये बहुत सुन्दर प्रयोग है—कायोत्सर्ग।

भार-विशोधन—पूछा गया—'भन्ते! कायोत्सर्गसे क्या होता है?' कहा गया—'जो भार है, उसका विशोधन होता है।' कोई ऐसा आचरण या व्यवहार हो गया, ऐसी कोई घटना हो गयी और उससे मनपर जो बोझ आ गया, उसका विशोधन होता है। प्राचीन कालमें प्रायश्चित्तविधि कायोत्सर्ग ही रही। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, आठ श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग करो। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, पंद्रह श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग, पचीस श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग अथवा क्रमशः हजार श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग एक प्रक्रिया रही है भार-विशोधनकी, प्रायश्चित्तकी। उससे आगे एक और महत्त्वपूर्ण सूचना दी गयी है—जब चित्तकी विशुद्धि हो जाती है, तब वह बोझ उतर जाता है और हृदय पूर्ण शान्त हो जाता है। जैसे अनाजकी बोरी ढोनेवाला उसे ढोते समय बड़े भारका अनुभव करता है, किंतु जब वह उस बोरीको उतारकर विश्राम लेता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है, जैसे वह बिलकुल हलका हो गया हो। हमारे आचरणों, व्यवहारों, घटनाओं, परिस्थितियोंका जो दिमागपर मानसिक बोझ होता है, वह कायोत्सर्ग करते ही एकदम हलका हो जाता है। व्यक्ति असीम सुख-शान्तिका अनुभव करता है। शारीरिक, मानसिक तनावसे मुक्ति तथा स्वास्थ्यकी अमूल्य निष्पत्तियाँ और सूचनाएँ इसके द्वारा दी गयीं।

समाधान है संवर—कायोत्सर्गके बिना न मनकी शुद्धि हो सकती है और न दिमागकी। इसका भी एक आध्यात्मिक, तात्त्विक कारण है। आश्रव और संवर—ये दो बातें हैं। आश्रव मानसिक और भावात्मक विकृतिको भी पैदा करता है। जहाँ आश्रव है, वहाँ विकृति पैदा होगी। डॉक्टर कहते हैं—सामने कोई व्यक्ति खाँसता है तो दूसरे व्यक्तिको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। किसीको इन्फेक्शन है तो सामनेवालेको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। डॉक्टर जब ऑपरेशन करता है, नाकपर वस्त्र बाँध लेता है। कारण यही है कि बीमारीका संक्रमण न हो। नाक खुला हुआ है तो श्वासके साथ रोग-कीटाणु भीतर प्रवेश पा जायँगे। नाक बंद कर लो, संवर हो गया। नाकका संवर करना जरूरी है। आश्रव समस्याका मूल और संवर समाधान है। हमारे शरीरमें आश्रव बहुत हैं। आश्रवद्वार खुला हुआ है। शरीरके सारे दरवाजे बंद हों तो मन कुछ नहीं कर सकता। शरीरका योग न मिले तो कुछ नहीं हो सकता। मनोवर्गणाको और वचनवर्गणाको कौन ग्रहण करता है? शरीर करता है। यदि शरीरका कायोत्सर्ग हो जाय, शरीर शिथिल हो जाय तो मनका दरवाजा तथा बीमारियोंका द्वार भी बंद हो जाय। यह तात्त्विक बात हमारे लिये कितनी व्यावहारिक है! जिन भद्रगणोंने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही—चञ्चलता एक ही है और वह शरीरकी चञ्चलता है। कायाको ठीकसे साध लो तो मन सध जायगा, वाणी और सब बातें सध जायँगी—कितना महत्त्वपूर्ण सूत्र है यह! यदि हम इसका ठीक उपयोग करें, कायाको साध लें, कायसिद्धि कर लें और स्थिर रहना सीख जायँ तो अनेक समस्याओंसे मुक्ति मिल जाय।

रहस्यपूर्ण प्रयोग—कायोत्सर्गका एक प्रकार है ऊर्ध्व

कायोत्सर्ग—खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना। भगवान् महावीरने कायाके उत्सर्गके जो प्रकार बतलाये, उनमें एक है ऊर्ध्व कायोत्सर्ग। इससे एक रहस्य प्रकट होता है। ऊर्ध्व कायोत्सर्गद्वारा प्राण-ऊर्जा संतुलित बन जाती है, कहीं अधिक इकट्ठी नहीं हो पाती। ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका यह रहस्यपूर्ण प्रयोग है। इसका रहस्य यह है कि जिसमें रागात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा बैठना नहीं चाहता। जिसमें द्वेषात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा चलना नहीं चाहता। यह ऑपन साइंसका नियम है। रागात्मक प्रवृत्तिके लिये गमनयोगका संयम अपेक्षित है। कितना रहस्यपूर्ण सूत्र है यह! यह ऊर्ध्व-स्थान ब्रह्मचर्यकी साधनाका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बैठकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता है। खड़े होकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण बहुत कम हो जाता है। जब गुरुत्वाकर्षण बढ़ जाता है, तब गुरुत्वाकर्षण भी भार पैदा करता है। कायोत्सर्गकी अवस्थामें बैठे हैं तो गुरुत्वाकर्षण कम हो जायगा। लेटकर कायोत्सर्ग करें तो भी यही स्थिति बनती है। यह सामान्य प्रकार है। कायोत्सर्गके दो प्रकार और भी हैं—वाम-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग और दक्षिण-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग। बायीं और दायीं करवट लेटकर कायोत्सर्ग करना।

इस प्रकार कायोत्सर्गकी अनेक निष्पत्तियाँ और परिणतियाँ हैं। स्वास्थ्यकी, मनके बोझको उतारनेकी, मानसिक और शारीरिक तनावको कम करनेकी दृष्टिसे विचार करें तो कायोत्सर्गके नये-नये पहलू हमारे सामने आते हैं। यदि पूछा जाय कि प्रेक्षाध्यानकी पद्धतिमें आधारभूत प्रयोग क्या है तो उत्तर होगा—कायोत्सर्ग। प्रेक्षाध्यानका प्रारम्भ-बिन्दु और अन्तिम-बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। आत्माकी साधनाका पहला और अन्तिम बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। इसलिये इसे आत्मिक स्वास्थ्यका अमोघ सूत्र भी कहा जा सकता है। [प्रे०—श्रीरामनिवासजी अग्रवाल]

यज्ञोपवीतसे स्वास्थ्य-लाभ

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृतिका मौलिक सूत्र है। इसका सम्बन्ध हमारे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक जीवनसे है। यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको 'यज्ञसूत्र' तथा 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा जाता है। बायें कन्धेपर स्थित जनेऊ देवभावकी तथा दायें कन्धेपर स्थित पितृभावकी द्योतक है। मनुष्यत्वसे देवत्व प्राप्त करने-हेतु यज्ञोपवीत सशक्त साधन है।

यज्ञोपवीतका हमारे स्वास्थ्यसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। हृदय, आँतों तथा फेफड़ोंकी क्रियाओंपर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। लंदनके 'क्वीन एलिजाबेथ चिल्ड्रेन हॉस्पिटल'के भारतीय मूलके डॉ०एस०आर० सक्सेनाके अनुसार हिन्दुओंद्वारा मल-मूत्र त्यागके समय कानपर जनेऊ लपेटनेका वैज्ञानिक आधार है। ऐसा करनेसे आँतोंकी अपकर्षण गति बढ़ती है, जिससे क़ब्ज़ दूर होती है तथा मूत्राशयकी मांसपेशियोंका संकोच वेगके साथ होता है। कानके पासकी नसें दाबनेसे बढ़े हुए रक्तचापको नियन्त्रित तथा कष्टसे होनेवाली श्वासक्रियाको सामान्य किया जा सकता है।

कानपर लपेटी गयी जनेऊ मल-मूत्र त्यागके बाद अशुद्ध हाथोंको तुरंत साफ करने-हेतु प्रेरित करती है। यज्ञोपवीत धारण करनेके बाद बार-बार हाथ-पैर तथा मुखकी सफाई करते रहनेसे बहुतसे संक्रामक रोग नहीं होते। योगशास्त्रोंमें स्मरणशक्ति तथा नेत्र-ज्योति बढ़ानेके लिये 'कर्णपीडासन' का बहुत महत्त्व है। इस आसनमें घुटनोंद्वारा कानपर दबाव डाला जाता है। कानपर कसकर जनेऊ लपेटनेसे 'कर्णपीडासन'के सभी लाभोंकी प्राप्ति होती है।

इटलीमें 'बारी विश्वविद्यालय'के न्यूरोसर्जन प्रो० एनारीका पिरांजेलीने यह सिद्ध किया है कि कानके मूलमें चारों तरफ दबाव डालनेसे हृदय मजबूत होता है। पिरांजेलीने हिन्दुओंद्वारा कानपर लपेटी गयी जनेऊको हृदयरोगोंसे बचानेवाली ढालकी संज्ञा दी है।

नैसर्गिक चिकित्सा

[रोग ऐसे भी ठीक हो जाते रहे]

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

यह बात अच्छी तरह समझमें आती है कि प्रकृति माता अपनी गोदमें जिन वनस्पतियों, औषधियोंको स्वयं उगाती है, उनका औषधीय गुण स्वाभाविक रूपसे बना रहता है और उनकी गुणवत्ता भी विलक्षण रहती है। इसीलिये उन औषधियोंसे निर्मित औषधोंका प्रभाव भी अक्षुण्ण होता है। अपने भारत देशके लिये प्राकृतिक सम्पदाका आलय—हिमालय वरदानस्वरूप है। उसी हिमालयके एक संक्षिप्त भू-भाग कूर्माचल—कुमाऊँके पर्वतीय देशको यहाँ अध्ययनका विषय बनाया गया है और यहाँकी पुरातन आरोग्य-विधाका किञ्चित् निदर्शन करानेका प्रयास किया गया है। सम्प्रति यह भू-भाग उत्तराञ्चलकी परिसीमामें अन्तर्हित है।

प्रकृतिके सांनिध्यका कुछ ऐसा प्रभाव है कि यहाँ रोग कम पनपते हैं। यहाँका परिवेश शुद्ध एवं सत्त्वसम्पन्न है। यहाँ प्रवहमान वायुके परमाणुओंमें विचित्र स्फूर्ति एवं चैतन्य शक्ति परिव्याप्त है। देवदारु-बनीके सघन प्रदेश स्वयंमें रोगोंके प्राकृतिक निदानस्थल-से हैं। वर्षभरमें प्राय: दस माह शीतका प्रभाव रहता है। एतदर्थ बीमारियाँ कम होती हैं। अभी कुछ ही समय पहलेकी बात है, लोगोंका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था। आहार-विहार अत्यन्त संयमित था, दिनचर्या नियमोंमें बँधी थी, कठोर परिश्रम होनेसे शारीरिक व्यायाम स्वत: सम्पन्न हो जाता था—*'भूख मीठी कि भोजन मीठा'*—यह कहावत चरितार्थ होती दिखती थी। लोग प्रकृतिके अनुकूल चलते थे, शुद्ध जल एवं शुद्ध वायु उपलब्ध थी। घरोंको गोबरसे लीपा-पोता जाता था। आचार-विचार, खान-पानपर लोग बड़ा ध्यान देते थे, वे सदाचारपरायण थे, तो फिर रोगोंको पनपनेका मौका कैसे मिलता? जन्मान्तरीय कर्मज व्याधियोंके लिये दैवव्यपाश्रय-चिकित्साका अवलम्बन बहुतायतसे होता रहा, लोग सुखी थे, सम्पन्न थे, नीरोग थे, स्वस्थ थे एवं बलिष्ठ थे। लोगोंकी इतनी आवश्यकताएँ नहीं थीं। अत: अमन-चैन अधिक था।

यदि कुछ आधि-व्याधि आ भी गयी तो उसका भी उपाय कर लिया जाता था। घरेलू औषधोंका बोलबाला था। आजके जैसे रोग सुने नहीं जाते थे। न कहीं अस्पताल, न कहीं डॉक्टर। घरेलू इलाज काफी था। घरकी बड़ी-बूढ़ी माताएँ सब जानती थीं। खास-खास लोगोंको जड़ी-बूटियोंका ज्ञान था। जंगलमें गये, जड़ी खोद लाये, घिसकर पिला दिया, बस रोग भाग गया। यह आश्चर्य नहीं, सत्य बात है। आज भी घरके सयाने ये सब बातें बताते हैं। वे सच्चे और सीधे-साधे होते हैं, झूठ नहीं बोलेंगे।

पेट-दर्द हुआ, अजीर्ण हुआ तो लंघन कराना मुख्य कार्य था। गाँवोंमें कुछ सयाने—बूढ़े लोग थे, जो चूल्हेकी हलकी गर्म-गर्म राखको लेकर नाभिके चारों ओर धीरे-धीरे इस प्रकार मलते थे कि दर्दमें शीघ्र ही आराम मिल जाता था और अपानवायु तथा आँतोंमें जमे मलका भी नि:सारण हो जाया करता था। पथ्यमें दही या मट्ठेका 'बाँट्' पिलाया जाता था। दही या मट्ठेको थोड़े पानीमें उबालकर हींग या मेथीसे छौंककर हल्दी-नमकसे युक्त बना पेय पदार्थ 'बाँट्' कहलाता है।

यहाँ सिंसुण नामक एक जहरीला काँटेदार पौधा होता है, यूँ ही छू जाय तो फफोले उठ जाते हैं, भयंकर खुजली और दर्द होता है, पर यह लाभकारी औषधि है। यह स्नायु-सम्बन्धी दोषों तथा नसोंके दर्द, कमरदर्द आदिमें उपयोगी है। जैसे कमरमें दर्द हो तो धूपमें रोगीको पेटके बल लिटाकर, किसी मोटे कपड़ेसे इस पौधेको पकड़कर, हलके कपड़ेसे ढकी कमरपर धीरे-धीरे इससे आघात किया जाता है, इसके काँटोंका असर अंदर प्रविष्ट होता है। हलकी चुभन तथा झनझनाहट मालूम पड़ती है, थोड़ी देरमें स्वत: ठीक हो जाती है, ऐसा तीन-चार दिन करनेसे दर्द जाता रहता है। यह सिंसुण गायोंके दूध बढ़ानेमें भी उपयोगी है।

अभी कुछ दिनों पहलेतक हिमालयके भोटदेशसे भोटिया तथा शौक लोग जाड़ोंकी ठंडसे बचनेके लिये नीचे उतर आते थे और अपने साथ हिमालयकी जड़ी-बूटियाँ—अतीस, कटकी, गन्ध्रायण, शिलाजीत, जम्मू आदि लाया करते थे, जो अनेक रोगोंके निवारणके लिये पर्याप्त होती थीं। यहाँका शिलाजीत बड़ा ही गुणकारी होता है। जाड़ोंमें दूधके साथ इसका सेवन आम बात थी।

शहदको यहाँकी भाषामें 'मौ' कहा जाता है, यह नाम शहदकी मक्खी 'मौन' के आधारपर पड़ा है। पहले खूब

होता रहा। शुद्ध ही होता था; मिलावट होती है, ऐसा लोग जानते भी नहीं थे। 'मौ' की कई कोटियाँ सुनी जाती हैं, जिनमें 'च्यूरिया मौ' सर्वोत्तम होता था। 'च्यूरा' के वृक्षमें छोटे-छोटे भीनी गन्धवाले सफेद-पीले फूल लगते हैं, उन्हींका रस लेकर मधुमक्खियाँ यह शहद बनाती रहीं।

शक्तिवर्धन तथा मस्तिष्कविकार दूर करनेके लिये 'दूर्वा' का रस पीना आम बात थी। माताएँ बच्चोंको गोष्ठमें ले जाकर धारोष्ण दूध पिलाया करती थीं। प्राय: हर घरमें गायें थीं। दो लोगोंके मिलनेपर कुशल-क्षेम-समाचारके मध्य 'धिनालि कतुक् छ' अर्थात् 'दूध देनेवाली गायें घरमें कितनी हैं'—यह अवश्य पूछा जाता था। दूध-घीका चलन था। घरोंमें छाँस् (मट्ठा) बाँटनेका रिवाज था। जले-कटे, घाव, फोड़े-फुंसी, दाद-खाजके लिये गायका घी चुपड़ना (मलना) पर्याप्त होता था। छोटे बच्चोंको मिट्टीसे ज्यादे परहेज नहीं कराया जाता था, अत: वे सुडौल रहते थे। गर्भवती स्त्रीका विशेष ख्याल रखा जाता था। गाँवकी बड़ी-बूढ़ी औरतें उसे रहनी-करनी सिखाती थीं। टीके-इंजेक्शनोंकी तब पैदाइश ही नहीं थी। नवप्रसूताके लिये गोमूत्रका पान तथा आगका सेंक करना मुख्य दवा थी। हाँ, गर्म दूधमें घी डालकर जरूर पिलाया जाता था। हल्दी, अजवाइन घीमें भूनकर, पानीमें उबालकर, गुड़ मिलाकर दिया जाता था। इससे प्रदर-सम्बन्धी कोई विकार नहीं होता था। शिशुके लिये माँका दूध ही सर्वोत्तम आहार रहा। दूधकी बोतलोंका जमाना तो अब आया है। जानकार माताएँ तो इन सबसे अब भी परहेज रखती हैं। आँखें लाल होने, उनसे पानी आने तथा बाहरी चोट लगनेमें माताका दूध आँखोंमें डालना अचूक औषध थी। हड्डी बिठानेवाले, नसोंका ज्ञान रखनेवाले तथा नाभिका उपचार करनेवाले आस-पासके गाँवोंसे बुला लिये जाते थे। एरंडकी पत्तियोंका सेंक दर्दनिवारक तथा शीतनिवारक होता था।

मालतीवसन्त, अभ्रक, रससिन्दूर, वंशलोचन आदिका प्रयोग होता था। दालचीनीके जंगल-के-जंगल अभी हालहीतक देखे गये हैं। ठंडके दिनोंमें इसकी मुलायम पत्तियाँ चायमें डाली जाती थीं। ठंडके दिनों कुल्थ (गहत)-से बना रस बड़े शौकसे लोग पीते थे। जाड़ा भी दूर और पथरीसे भी बचाव। वैद्यकीका भी खूब प्रचार था। कई गाँवोंमें औषधनिर्माण होता था। दाँतोंकी सफाई, पायरिया आदिके लिये 'तिमूर' नामक एक काष्ठौषधिका प्रयोग होता था। दाँतोंमें कीड़ा लगा तो कण्टकारीकी डंठलको आगमें जलाकर वह भस्म दाँतके खोहमें डाल दी, बस दर्दसे छुटकारा मिल गया। सिरमें तेल ठोंकना और शरीरमें तेल मलना अच्छा माना जाता था। ज्वर आदिमें लंघन तथा स्वेदन खूब कराया जाता था। ज्वर उतर जानेपर भी विशेष देखभाल होती थी। खुली हवा तथा ठंडसे परहेज कराया जाता था। पथ्यके रूपमें दही-चावल और पानीके संयोगसे बने तथा हलके नमक एवं हल्दीसे युक्त घी, हींग-मेथीसे छौंक लगे पक्व पदार्थ जो 'जौल्' कहलाता है, खिलाया जाता था। अड़ूसा (वासा) यहाँ खूब होता है। श्वास-कास, क्षय तथा खाँसी आदिमें इसके क्वाथके गुणोंसे लोग परिचित थे। ऐसी अनेक औषधियाँ यहाँ होती रही हैं, जिनसे सहजमें उपचार हो जाता रहा।

तब आजके जैसे इतने भयंकर रोग पैदा ही नहीं हुए थे। इन्फेक्शनसे भी लोग परिचित नहीं थे। दवा अपने प्राकृतिक रूपमें होती थी। इसलिये साइड इफेक्टकी कोई बात ही नहीं थी। दवा जाननेवालोंमें सेवाका भाव था, लोग भी उनका खूब आदर करते थे, परस्पर सद्भाव था। सब कामोंमें भगवान्‌को साक्षी रखा जाता था, अत: फायदा ही होता था। लोगोंकी आवश्यकताएँ कम थीं, मौजसे गुजारा होता था, आजके जैसी हाय-हाय न थी। अमन-चैन था, खुशहाली थी।

नये जमानेकी हवा क्या लगी कि सब उलटा-पुलटा हो गया। अब तो गाँव-गाँव स्वास्थ्य-केन्द्र खुल गये हैं, हॉस्पिटल खुलने लगे हैं, प्राईवेट क्लिनिक खुल रहे हैं, परामर्शकेन्द्रोंकी प्रतिष्ठा भी हो रही हैं, तथाकथित प्रैक्टिस चल पड़ी है, लोग भी अप-टू-डेट हो गये हैं, तो बेचारे रोग पीछे क्यों रहें? विकासकी बात है, रोगोंने भी पाँव फैलाने शुरू कर दिये हैं, वे भी विकासकी सोच रहे हैं। किसीको क्या फर्क पड़ेगा? पर गाँवकी बची-खुची वे बड़ी-बूढ़ी माताएँ और वे सयाने लोग, जो चुटकीमें सब ठीक कर दिया करते थे, यह सब देख-सुनकर बेहद परेशान हैं और बोल उठते हैं—'अभी ये हाल है, आगे क्या होगा, भगवान् ही जाने। अरे सपूतो! कुछ ऐसी रहनी-करनी बनाओ कि इन दवाओंसे पाला ही न पड़े।'